वैदिक मन्त्र विद्या

(प्रभावशाली वैदिक साधनाओं का अपूर्व संग्रह)

★

सम्पादक :

डा० चमनलाल गौतम

पूर्व सम्पादक:—"युग-संस्कृति" व "जीवन यज्ञ"

रचयिता:—मन्त्र महाविज्ञान, तन्त्र महाविज्ञान, उपासना महाविज्ञान, देववाद का वैज्ञानिक स्वरूप, पशुबलि हिन्दू धर्म पर कलंक है आदि।

★

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, वेदनगर, बरेली (उ०प्र०)

प्रकाशक :

डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान,
ख्वाजा कुतुब (वेदनगर),
बरेली (उ. प्र.)

*

सम्पादक :

डा० चमनलाल गौतम

*

*

प्रथम संस्करण
१९७२

*

मुद्रक :

विनोदकुमार मिश्र
राजेश्वरी प्रिंटिंग प्रेस,
आर्यसमाज रोड, मथुरा.

*

मूल्य :
छः रुपये मात्र

भूमिका

प्राचीन शास्त्रों में जल की वर्षा करने वाले वरुणास्त्र, भयंकर अग्नि उगलने वाले आग्नेयास्त्र, संज्ञा शून्य बनाने बाले सम्मोहनास्त्र, लकवे की तरह जकड़ने वाले नागपाश, इञ्जिन, भाप, पेट्रोल के बिना आकाश, भूमि और जल में चलने वाले रथ, सुरसा की तरह शरीर को बड़ा आकार देना, हनुमान की तरह मच्छर की तरह अति लघु रूप धारण करना, समुद्र लांघना, पर्वत उठाना, नल की तरह पानी पर तैरने वाले पत्थरों का पुल बनाना, रावण, अहिरावण की तरह बिना किसी स्थूल यन्त्र के अमरीका और लङ्का के बीच बातचीत करना, अदृश्य हो जाना आदि अनेकों अद्भुत कार्य मन्त्र शक्ति से ही सम्पन्न बताये जाते हैं जिन पर सहज विश्वास नहीं होता। आज भी रोग निवारण, धन प्राप्ति, पुत्र प्राप्ति, मुकदमे में विजय, वर्षा रोकने व अन्य अनेकों चमत्कार मन्त्र विशेषज्ञों द्वारा यत्र तत्र दिखाये जाने के समाचार सुनने में आते हैं।

मन्त्र विद्या केवल श्रद्धा और विश्वास का विषय नहीं है, न ही यह किसी देवी देवता की कृपा का प्रसाद है वरन् यह ठोस वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है। यह किन्हीं विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विशिष्ट शब्दों के विधिवत् प्रयोगों का फल है। पंच तत्वों में आकाश सबसे अधिक शक्तिशाली है। आकाश का ही गुण शब्द है। इसलिये उसका शक्ति सम्पन्न होना स्वाभाविक है। आधुनिक भौतिक विज्ञान ने ध्वनि कम्पनों के सहयोग से औद्योगिक क्षेत्र में क्रान्ति मचा कर

मन्त्र शक्ति की सत्यता सिद्ध कर दी है। रोग निवारण, इस्पात की चादरों को काटने, शहर की आवाज से शहर के लिए बिजली उत्पन्न कर लेने, लाण्ड्री, सिंचाई के साधनों में उस शक्ति का प्रयोग विद्युत की तरह होने लगा है। चिकित्सा जगत में "अल्ट्रा-साउण्ड" अब एक चमत्कार दिखाई देने लगा है। रोगों के उपचार में विज्ञान ने शब्द शक्ति का सफल उपयोग किया है। आधुनिक विज्ञान की सफलताओं को देखकर लोग यह विश्वास करने लगे हैं कि शब्द ने प्रकृति पर विजय प्राप्त करली है। विदेशों में इस विज्ञान को और विकसित करने के लिये खोजें तीव्रगति से चल रही हैं जिससे चिकित्सा के अतिरिक्त खगोल विज्ञान में भी नए प्रयोग किये जाने की सम्भावना है। भौतिक उपकरणों से जब इतनी प्रगति की जा सकती है तो सूक्ष्म उपायों से तो इससे भी अधिक लाभों की आशा करनी चाहिये क्योंकि स्थूल से सूक्ष्म की शक्ति सदैव अधिक होती है।

यह निश्चित है कि अटूट श्रद्धा, सुदृढ़ विश्वास और पवित्र भावना से प्राणायाम, ध्यान, मनन, चिंतन जैसी सहयोगी क्रियाओं के साथ एकाग्रता पूर्वक किया गया दीर्घकाल तक मन्त्र जप सफलता प्रदान करता है।

इस पुस्तक में केवल वैदिक मन्त्रों की साधनाओं के विधान दिये गये हैं। ओंकार, गायत्री व महामृत्युञ्जय मन्त्र की साधनाएं प्रमुख रूप से दी गई हैं। इनकी साधना बहुत लोग करते हैं। इसलिए इनके सुनिश्चित लाभों से भली भाँति परचित हैं। यजुर्वेद के यज्ञीय अनुष्ठान, अथर्ववेद के चमत्कारी प्रयोग और वैदिक सूक्तों की साधनाओं के जो प्रभाव वर्णित किए गये हैं, नियमों का पूर्णतः पालन करने से उन्हें कोई भी साधक प्रत्यक्ष देख सकता है।

—चमनलाल गौतम

वैदिक मन्त्र विद्या की—

विषय-सूची

वैदिक मंत्र विद्या

★

ज्ञान-विज्ञान के भंडार--वेद

वेद ईश्वरीय ज्ञान के भण्डार हैं। संसार में जितना भी ज्ञान, विज्ञान, कलाएँ, विद्याएँ दिखाई दे रही हैं, उन सबका मूल वेद में ही है। वेद हमारी संस्कृति के मूल स्रोत हैं, वैदिक सभ्यता को उच्च शिखर तक पहुँचाने वाले ग्रन्थ रत्न हैं। यह विश्व के आदि ग्रन्थ, भारतीय धर्म के कमनीय कल्पद्रुम और आर्य संस्कृति के प्राणदाता हैं। भारतीय संस्कृति का इतिहास वेदों से गौरवान्वित है। भारतीय सभ्यता के विशाल और सुन्दरतम प्रासाद का आधार मूल-तत्व श्रुतियोंमें निहित है। वेद की हिन्दू धर्म में इतनी प्रतिष्ठा है, कि आस्तिकता और नास्तिकता का मापदण्ड इन्हें ही माना जाता है। वेद के मानने वाले को आस्तिक और वेद की निन्दा करने वाले को नास्तिक कहते हैं। वेद अनन्त हैं। वेद गम्भीर हैं।

वेद भारतीय संस्कृति का आदि स्रोत हैं। इनमें मानव मात्र की पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान किया गया है। वेद व्यक्तिगत कठिनाइयों को हल करने की कुन्जी हैं। इनमें शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व आत्मिक सभी प्रकार की उन्नति की प्रेरणाएँ, शिक्षाएँ व उपाय मिलते हैं। संसार भर के धर्म शास्त्रों की विचार सामग्री का मूल वेद ही हैं। वेद सारे संसार के लिए ज्योति के

पुञ्ज रहे हैं। इसी केन्द्र से सभी ओर प्रकाश की किरणें प्रस्फुटित होती रही हैं।

वेद का अर्थ ज्ञान है अथवा ज्ञान के कोष, खजाने और भण्डार को ही वेद कहते हैं। अमर कोष के टीकाकार वीर गोस्वामी के अनुसार "जिससे धर्म को जाना जाए, वही वेद है अर्थात् धर्म की वास्तविकता को जानने का वैज्ञानिक मार्ग वेद है, यही उसकी कसौटी है। धर्म और अधर्म के निर्णायक वेद ही हैं। ऋक् प्रातिशाख्य के वृत्तिकार देव मित्र के पुत्र के अनुसार "जिससे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी पुरुषार्थ चतुष्टय जाना व प्राप्त किया जाता है, उसे वेद कहते हैं।" सायणाचार्य के अनुसार इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट की निवृत्ति के अलौकिक उपाय जिस ग्रन्थ में बताए गए हैं, उसका नाम वेद है।" स्वामी दयानन्द ने अपनी 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' में लिखा है। "सत्य विद्याओं को जिनसे जाना जाय, प्राप्त किया जाय, अथवा विचार किया जाय, उसे वेद कहते हैं।" वेद के प्रकाण्ड पण्डितों द्वारा की गई परिभाषाओं से विदित होता है कि वेद में अनन्त सामर्थ्य है। वह मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व आत्मिक कायाकल्प कर देते हैं। उसे उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचा देते हैं। यही कारण है कि वेद के ज्ञान को प्राप्त करके भारतीय मनीषियों और तत्व वेत्ताओं ने भारत को विश्व में उच्चतम स्थान पर अवस्थित कर दिया था, तभी भारत को जगद्-गुरु कहा जाता था। यह संसार का मार्ग दर्शक था। जिस तत्वज्ञान का साक्षात्कार कर ऋषियों ने सब कुछ पाया था और संसार भर में सुख शान्ति की स्थापना की थी, इस भारत भूमि को "स्वर्गादपि गरीयसी" बनाया था, वह सारी ज्ञान सम्पदा वेदों में सन्निहित है।

वेद समस्त धर्मों का मूल हैं। यह घोषणा हजारों वर्ष पहले ऋषि मुनियों ने की थी। वह उसी प्रकार से आज भी सत्य है। वेद ज्ञान किसी जाति या वर्ग विशेष के लिये नहीं था, वरन् समस्त प्राणी

मात्र के लिये था। 'अमृतस्य पुत्रः' (ऋग्वेद १०।१३।१) "परमात्मा की सृष्टि में पृथिवी के सभी मनुष्य उसकी अमर सन्तान भाई-भाई हैं।" में वेद ने मनुष्यता की सुन्दरतम झाँकी प्रस्तुत की है। वह मानवता के धर्म-ग्रन्थ हैं। वेद की संस्कृति मानव की संस्कृति है। वेदों में मानव बनने की सच्ची विद्या है। वेदों में आचरण, विचार व व्यवहार शास्त्र के सिद्धान्त सत्य पर आधारित हैं। वह अपरिवर्तनीय हैं। उनके मूल तत्व शाश्वत हैं। वह स्वाभाविक व प्राकृतिक हैं। जब-जब मनुष्य इनके विपरीत आचरण करता है, तभी वह कष्ट पाता है।

वेद में ज्ञान, कर्म, उपासना और आत्म ज्ञान इन विषयों का विस्तार है। इन सबको मिलाकर ही वैदिक धर्म या मानव धर्म बना है। विचार करने पर प्रतीत होता है कि मानवता के पूर्ण बिकास के लिये इन चारों विषयों की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। इन्हीं से वह लोक में अभ्युदय और परलोक में शान्ति प्राप्त कर सकता है। सार यह है कि भारतीय संस्कृति में जो कुछ भी श्रेष्ठ और उच्च है, उसका मूल वेद ही हैं। वेद भारत की आत्मा हैं। वह यहाँ के जीवन में ओत-प्रोत हैं।

जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त सभी संस्कार वेद मन्त्रों से ही सम्पन्न होते हैं। भारतीयों की पूजा पद्धति, यज्ञोत्सव आदि इन्हीं पर आधारित हैं। सभी प्रकार के शुभ कार्यों का आरम्भ वेद मन्त्रों के उच्चारण से ही होता है। यह मांगलिक हैं, शक्ति और ज्ञान के पुञ्ज हैं। वेद की प्रत्येक ऋचा में एक विलक्षण रत्न भण्डार भरा हुआ है। उनमें शिक्षा और विज्ञान परिपूर्ण मात्रा में विद्यमान हैं। वेद के प्रत्येक मन्त्र में एक अनुपम अमृत सागर लहलहा रहा है। उसके कुछ कण, कुछ बिन्दु जिन्हें प्राप्त हो जाते हैं उनका जीवन सफल एवं धन्य हो जाता है। इन्हीं विशेषताओं के कारण वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना सुनाना प्रत्येक हिन्दू धर्माभिमानी का परम पवित्र आवश्यक कर्तव्य माना गया है। प्राचीन काल में घर-घर में वेद पाठ होते थे, वेद की

कथायें होती थीं, वेद से विहीन कोई धर्म प्रेमी न होता था। फलस्वरूप उन्हें लोक और परलोक के सुख, शान्ति, सफलता औरसमृद्धि के सभी सत्परिणाम भी सहज ही प्राप्त हो जाते थे।

ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, स्मृतियों, रामायण, महाभारत और हिन्दू धर्म के ग्रन्थों का निर्माण वेदों से ही हुआ है। स्थान-स्थान पर उनमें वेदों का गुणगान किया गया है।

भारतीय मनीषियों की दृष्टि में वेद क्या हैं, इसका संक्षिप्त दिग्दर्शन नीचे करा रहे हैं।

लोकमान्य तिलक ने अपनी पुस्तक "वेदों में आर्यों का उत्तरीय ध्रुव का घर" में ऋग्वेद को आर्य लोगों का सबसे पुराना ग्रन्थ कहा है।

जगद्विख्यात् योगीराज श्री अरविन्द, जो योग सम्बन्धी अनेकों ग्रन्थों के रचयिता हैं, अपनी 'वेद रहस्य' पुस्तक में लिखते हैं—"वेद न केवल विश्व के सर्वोत्तम और गम्भीरतम धर्मों के बल्कि सूक्ष्मतल पराभौतिक दर्शनों के भी प्रसिद्ध आदि स्रोत के रूप में स्वीकार किये जाते रहे हैं। वेद उस सबसे ऊंचे आध्यात्मिक सत्य का स्वीकृत नाम है, जहाँ तक कि मनुष्य का मन पहुँचता है। पूर्णता की ओर जाने के लिए वेद मन्त्र संघर्ष के लिए शस्त्र का काम देता था। वेद असभ्य, जङ्गली और आदिम निर्माण कर्ताओं की बनाई हुई वस्तु नहीं है। वरन् वे एक उत्कृष्ट कला सजीवता के प्रत्यक्ष विश्वास हैं। वेद का प्रतीकवाद इस तथ्य पर आधारित है कि मनुष्य का जीवन यज्ञ रूप है, एक यात्रा और संग्राम भूमि है। इस तरह से माना हुआ ऋग्वेद एक न समझ में आने वाला, गड़बड़युक्त, जङ्गली लोगों के गीतों का संग्रहमात्र नहीं रह जाता, बल्कि मानव जाति की श्रेष्ठ अभीप्सा से सम्पन्न गीतों का पाठ बनता है। वेद में और जो कुछ प्राचीन विज्ञान, गुह्य विद्या,

पुरानी मनोभौतिक परम्परा आदि हों, वह अभी खोजना शेष ही है।"

द्वैत मत के प्रतिपादक श्री माधवाचार्य ने ऋग्वेद के कुछ सूक्तों का भाष्य लिखते हुये वेदों का ज्ञान देने वाला भगवान विष्णु को कहा है।

मुनिस्तु सर्व विद्यानां, भगवान पुरुषोत्तमः।
विशेष तथ्य वेदानां, यो ब्रह्माणमिति श्रुतिः॥

उन्होंने पुराणों का आधारभूत भी वेदों को ही माना है।

बंगाल के प्रतिष्ठित विद्वान पं० सत्यव्रत जी सामश्रमी जिन्होंने संस्कृत में अनेकों ग्रन्थ लिखे हैं, अपनी सम्मति व्यक्त करके हुए कहते हैं "चारों वेद- धर्म, व्यवहार, विज्ञान, कर्तव्य और समाज शास्त्र के ज्ञान के स्रोत हैं। हमारी राय है कि प्राचीन वैदिक काल में हमारे देश में पर्याप्त उन्नति हुई थी। उस समय आधिवैदिक विद्या के अन्तर्गत् भूगर्भ विद्या, ज्योतिष व रसायन शास्त्र आते थे और अध्यात्म विद्या में शरीर विज्ञान, मनोविज्ञान और धर्म विज्ञान समझे जाते थे। यद्यपि विज्ञान सम्बन्धी जानकारी देने वाली पुस्तकें बिल्कुल लुप्त हो चुकी हैं, तो भी वैदिक साहित्य में इनके पर्याप्त संकेत मिलते हैं। वेदों के कुछ भागों से ऐसा लगता है कि कुछ वैज्ञानिक अनुसंधान इतनी पूर्णता तक सफल हो चुके थे, जहां तक अमेरिका और योरुप के वैज्ञानिक भी अभी तक नहीं पहुंच सके हैं।"

पूना के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ विद्वान पावगी ने अपनी पुस्तक "वैदिक भारत—'पार्लियामैण्टो' की जननी है।" में लिखा है कि "वेद ज्ञान के आदि स्रोत और प्रेरणा के उद्गम हैं, यही नहीं बल्कि दैवी ज्ञान और शाश्वत सत्यों से भरे हुए ज्ञान की निधि हैं। वेद स्वतन्त्रता की भावना और ज्ञान के भण्डार हैं। वेदों में राजनीतिक विषयों का भी ऊँचा ज्ञान है।"

उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मुख्य मन्त्री डा० सम्पूर्णानन्द जी ने बीकानेर में हुए गीता जयन्ती के उत्सव पर प्रवचन देते हुए कहा था, "जिसने संस्कृत पढ़कर वेद नहीं पढ़े, उसका संस्कृत पढ़ना व्यर्थ है।"

वेद विद्या के प्रकाण्ड पण्डित और स्वाध्यायशील काशी विश्व विद्यालय के अध्यापक श्री वासुदेव शरण अग्रवाल अपनी पुस्तक 'वेद विद्या में लिखते हैं''वेद विद्या का लक्ष्य मानव जीवन की रचना की व्याख्या करना है। सृष्टि विद्या ही वेद विद्या है। सृष्टि विद्या अनन्त है। वेद विद्या भी उसी प्रकार अन्तहीन है। जिस भूत के कार्य को देखें उसी में पूरा एक विश्व समाया हुआ है ......वेद विद्या बुद्धि का कुतूहल नहीं। वह पाण्डित्य का विलास भी नहीं है। वेद विद्या का लक्ष्य प्राण या चैतन्य अमृत तत्व का साक्षात्कार है।"

✓ महर्षि दयानन्द ने लिखा है "वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है।" अपनी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में वह लिखते हैं "जो कुछ भूगोल, पुस्तकों और हृदयों में सत्य विद्या व विज्ञान था और है वह सब वेद से ही प्रसारित हुआ है, यह निश्चय जनना चाहिये।',

✓ डा० एस० राधाकृष्णन का वचन है कि "वेद मानव मस्तिष्क से निकले हुए सब से पुराने लिपिबद्ध ग्रन्थ हैं, जो हमारे पास हैं।"

महात्मा गौतम बुद्ध के सम्बन्ध में बड़ी गलत धारण फैली हुई है कि वह यज्ञ, वेद और वेदज्ञों के घोर विरोधी थे परन्तु उनके ग्रन्थ सुत्तनिपात से प्रतीत होता है कि वह वेदों, यज्ञों और वेदज्ञ बाह्मणों का बड़ा आदर करते थे। बौद्धों के इस महान् ग्रन्थ में बुद्ध ने कहा है "वेदों के द्वारा धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाले विद्वानों की ऐसी डाँवाडोल स्थिति नहीं रहती... ......यज्ञ के पुण्य की कामना करने वाला व्यक्ति उसी ब्राह्मण को भोजन कराए जो वेदज्ञ, ध्यान परा-

यण और उत्तम स्मृति वाला, दूसरों को शरण देने वाला हो........
वेदज्ञ विद्वान इस संसार में जन्म या मृत्यु में अनासक्त रह कर, तृष्णा का त्याग करके और पाप रहित रहकर जन्म और वृद्धावस्था से छूट जाता है–ऐसा मेरा विचार है.........वेदज्ञ विद्वान जिस व्यक्ति की आहुतियों को स्वीकार करता, है, उसका यज्ञ सफल होता है।"

वेद जैसे ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तक के अध्ययन से हम वंचित रहे तो हमारे लिए अत्यन्त दुर्भाग्य की बात होगी।

हिन्दू धर्मशास्त्रों में वेदों का गुणगान

वेद भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम धर्म-ग्रन्थ हैं। उनमें भौतिक व आध्यात्मिक सभी प्रकार की उपयोगी विद्याओं का उल्लेख है। शेष सभी धर्म शास्त्र वेदों के विभिन्न विषयों की व्याख्या मात्र हैं। उनमें वेदों की प्रशंसा स्वाभाविक है। कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं :—

ब्राह्मण ग्रन्थ :—

वेदों के बाद ब्राह्मण ग्रन्थों का स्थान आता है। कतिपय विद्वान तो उन्हें वेदों का अति प्राचीन भाष्य मानते हैं। इन के निर्माण का उद्देश्य कर्मकांड के जिन तथ्यों को समझना कठिन था, उनको विस्तार पूर्वक अलङ्कारिक शैली में लिखा गया है। अतः यूँ कहना चाहिये कि ब्राह्मण ग्रन्थों का उद्देश्य वेद की गुत्थियों को सुलझाना ही था। इसलिये इन्हें हिन्दू धर्म-शास्त्रों में एक महत्वपूर्ण स्थानः प्राप्त है। इन में वर्णित वेद विषयक जानकारी भी महत्वपूर्ण है :—

यावन्नं ह वै ईमा पृथिवीं वित्रेन पूर्णा ददत् लोकं जयति त्रिभिस्तावन्नं जयति, भूयासं च अक्षय्य च य एवं विद्वान अहरहः स्वाध्यायअधीने तस्मात् स्वाध्यायऽध्येतव्यः।

(शतपथ ११ । ५ । ६ । ११)

"धन सम्पत्ति से भरी पृथ्वी को दान करने से जिस लोक को मनुष्य विजय करता है, उससे भी बढ़ कर तीन वेदों के स्वाध्याय से नाशरहित अक्षय लोक को प्राप्त किया जा सकता है।"

स ऐतन प्रजापतिः । त्रय्यां वाव विद्यायां सर्वाणि भूतानि ।
हन्न त्रयीदेव विद्यामात्मानपमिसंस्करवै इति ।
(शतपथ १० । ४ । २ । २२)

"प्रजापति ने सब भूतों को देखा तो उन्हें त्रयी विद्या में पाया । त्रयी विद्या में ही सब ज्ञान को पाया, इसलिये उन्होंने कहा—आत्मा के उत्थान के लिये त्रयी विद्या को देता हूँ ।"

३—तद्यत्सत्यम त्रयी सा विद्या (श० ६ । ५ । १ । १८)

"संसार में जो कुछ सत्य है, वह सब त्रयी विद्या है।"

एवं अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितम् ।
एतत् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरसः ॥
(श० १४ । ५ । ४ । १०)

"जिस तरह श्वास प्रश्वास की क्रिया अपने आप सम्भव होती रहती है, उसी तरह से ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, और सामवेद को परमात्मा ने उत्पन्न किया है।"

४—स (प्रजापतिः) श्रान्तस्तेपीनो ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयीमेव विद्याम् । (श० ६ । १ । १ । ८)

"संसार की सृष्टि करने वाले प्रजापति ने श्रम और तप किया और उस के फलस्वरूप सबसे पहले त्रयी विद्या का सृजन किया ।"

५—अन्नं वै त्रयी विद्या । (श० ६ । ६ । ३ । १४)

"त्रयी विद्या ही अन्न है अर्थात् आन्तरिक उत्थान के लिये श्रेष्ठ भोजन है ।"

६—छन्द शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है—

यदेभिरात्मान माच्छादयन् देवा मृत्योबिभ्यतः तच्छन्दसां छन्दस्त्वम् ॥

देवता मृत्यु से भयभीत हुये और उन्होंने वेदों से अपने को ढक लिया । इस लिये वेदों को छन्द कहते हैं । यहाँ यह भाव प्रकट किये हैं कि वेद ज्ञान के द्वारा मृत्यु से छुटकारा मिल सकता है ।

७—ऐतरेय ब्राह्मण में भी वेदों को ईश्वरीय ज्ञान माना गया है।

प्रजापतिर्वा इमान् वेदानसृजन ।

"प्रजापति ने प्रजा के कल्याण के लिये वेदों का सृजन किया है।"

तैत्तरीय ब्राह्मण में वेदों के महत्व पर एक आख्यायिका इस प्रकार आती है कि भारद्वाज ऋषि ने ३०० वर्ष तक वेदों का अध्ययन किया। अध्ययन करते २ वह वृद्ध होगये तो इन्द्र उनके पास गये और पूछा यदि तुम्हें आयु प्राप्त हो जाए तो तुम क्या करोगे ? उन्होंने उत्तर दिया कि वेदों का अध्ययन करूंगा। इन्द्र ने उन्हें ज्ञान की राशि वेदों को पहाड़ की तरह दिखाया और उनमें से एक एक मुट्ठी भर कर दिखाया कि यह ज्ञान अनन्त है। तुम ३०० वर्षों से इनमें लगे हो परन्तु फिर भी तुम्हें इनकी थाह नहीं मिली।

९—तैतिरीय ब्राह्मण (१।४।४।९) में ऋग्वेद और सामवेद को सरस्वती के झरने कहा गया है।

इसमें यह भाव है कि वेदों के अध्ययन और अनुशीलन से उच्च आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति होती है।

१०—त्राक्सामे वै सारस्वतावुत्सा।

इसमें यह भाव है कि वेदों के अध्ययन और अनुशीलन से उच्च आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति होती है।

११—इसी ब्राह्मण में (३।१२।९।७) ऊँचे अध्यातम ज्ञान की विद्यमानता को सिद्ध करने के लिए कहा गया है।

नावेदविक्तनुन तं वृहन्तम्।

जो वेद को नहीं जानता, वह परमात्मा को भी नहीं जान सकता। इसमें यह भाव ओत-प्रोत हैं कि परमात्मा प्राप्ति के लिये वेदों का अध्ययन और मनन आवश्यक है।

उपनिषद्

उपनिषद् अध्यात्म विद्या और ब्रह्म विद्या के ग्रन्थ हैं। इनमें वेद का ज्ञान काण्ड और अन्तिम अध्याय है। यह ज्ञान का अक्षय भंडार और ज्ञान का आदि स्रोत हैं। इन में अध्यात्म विद्या कूट-कूट कर भरी हुई है। यह भारत की वह अध्यात्म निधि है जिस पर वह गर्व कर सकता है और जिनके सम्मुख संसार का प्रत्येक स्वाभिमानी सभ्य राष्ट्र श्रद्धा से झुकता रहा है और रहेगा।

मुगल सम्राट दाराशिकोह की उपनिषद् प्रियता प्रसिद्ध है। उसने इनका फारसी में अनुवाद किया था। इससे फ्रांसीसी में अनुवाद हुआ। इस अनुवाद को देखकर जर्मन का प्रसिद्ध विद्वान शोपेनहर कह उठा कि सम्पूर्ण विश्व में जीवन को ऊँचा उठाने वाला कोई दूसरा अध्ययन का विषय नहीं है। उनसे मेरे जीवन को शान्ति मिली है और मृत्यु समय भी इससे मिलेगी। मैक्समूलर ने उसका समर्थन किया था।

उपनिषद् हिन्दुओं के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ हैं। प्रत्येक हिन्दू चाहे वह शैव, शाक्त, वैष्णव या किसी भी सम्प्रदाय का हो, उपनिषदों के सम्बन्ध में उस की हिन्दू धर्म शास्त्रों के प्रमाणिक ग्रन्थों के रूप में आस्था है। इससे इनमें वेद विषयक वर्णन का मूल्य भी बढ़ जाता है। नीचे भिन्न २ उपनिषदों में आये वेद सम्बन्धी कुछ उदाहरण देते हैं—

१—वेदाः सर्वाङ्गाणि सत्यमायतनम्

(केनोपनिषद् ४।३३।)

"अर्थात् अङ्ग-उपाङ्ग सहित सारे वेद सत्य के खजाने हैं।"

२–सर्वे वेदा यत्पादमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्या चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।

(कठोपनिषद् १।२।१५)

चारों वेद बार-बार जिस परम पद का दिग्दर्शन कराते हैं और सारे तपों का जिस पद की ओर लक्ष्य होता है, जिसकी इच्छा करने वाले साधक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वह पद संक्षेप से बताता हूँ। वह है 'ॐ' एक अक्षर।

इसका अभिप्राय यह है कि वेद परम पद तक पहुँचने के लिए एक उत्तम सीढ़ी हैं, सहायक हैं और इन में उच्च आध्यात्मिक ज्ञान भरा हुआ है।

३—अग्निर्मूर्धा चक्षुर्षा चन्द्रसूर्यो दिशा श्रोत्रे।
वाग्विवृताश्च वेदाः (मुण्डक २। १। ४।)

इन विराट रूप परमेश्वर का अग्नि अर्थात् द्युलोक मस्तक है। चन्द्र और सूर्य दोनों आँखें हैं, सारी दिशायें कान हैं। चारों वेद उसकी वाणी हैं, इस का अभिप्राय यह है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है।

४—इसी तथ्य को वृहदारण्यकोपनिषद् में दूसरों शब्दों में कहा गया है।

एतस्य वा महतो भूतस्य निश्वसितमेतद।
ऋग्वेदो यजुर्वेदो मवेदो ऽथर्ववेदः॥
(वृ. ४। ५। ११)

उस महान परमात्मा से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद सहज ही उनके श्वास से प्रादुर्भूत हुए हैं!

स्मृतियाँः—

भारतीय धार्मिक साहित्य में स्मृतियों का एक विशिष्ट स्थान है। धार्मिक बातों में स्मृतियों से अधिक मान्य कोई ग्रन्थ नहीं है। इनमें वेद में वर्णित धार्मिक विषयों को अधिक विकसित रूप दिया गया है। स्मृतियों को धर्म का कानून कह सकते हैं। मनु कृत मनुस्मृति सबसे अधिक प्रमाणिक मानी जाती है। इस की उपयोगिता को देखते हुए छान्दोग्य ब्राह्मण ने लिखा है 'मनुर्वै यत्किञ्चिदवदत् तद्भेषजं

भेषजतायाः" अर्थात् मनुजी जो कह गये हैं, वह औषधियों की औषधि है। औस्पैंस्की जैसे स्वतन्त्र विचार के रूसी लेखक ने अपनी पुस्तक "संसार का एक नया आदर्श" में मनुस्मृति की बहुत प्रशंसा की है।

स्मृतियों में आए वेदों की महत्ता प्रतिपादन करने वाले कुछ उदाहरण नीचे देते हैं :—

१—न वेद शास्त्रादन्यतु, किञ्चिच्छास्त्रं हि विद्यते।
निस्सृतं सर्वंशास्त्रं तु, वेद शास्त्रात् सनातनात्॥
(याज्ञवल्क्य स्मृति)

"वेद शास्त्र से श्रेष्ठ कोई शास्त्र नहीं है। दूसरे सभी शास्त्रों सनातन व नित्य का अविर्भाव वेद से ही हुआ है।"

२—यज्ञानां तपसां चैव, शुभानः चैव कर्मणाम।
वेद एव द्विजातीनां, निःश्रेयस्करः परः॥
(याज्ञ० १। ४०)

"वेद ही यज्ञ, तप और शुभ कर्मों का सबका मूल और मुक्ति-दाता है।"

३—नास्ति वेदात्परं शास्त्रं, नास्ति मातुः समा गुरुः॥
(अत्रि स्मृति)

"वेद से श्रेष्ठ कोई शास्त्र नहीं है। माता के समान कोई गुरू नहीं है।"

४—वेदाभ्यासो ह विप्राणां परमं तप उच्यते।
ब्रह्म यज्ञः स विज्ञेयः, षडंगसहितस्तु यः॥
(दक्ष स्मृति २। ३०)

"वेद अभ्यास ब्राह्मणों का श्रेष्ठ तप है। छः अंगों सहित वेदों के स्वाध्याय को ब्रह्म-यज्ञ कहते हैं।"

५—ऋग्वेदमभ्यसेद् यस्तु, यजुः शाखा मयापि वा।

सामानि सरहस्यानि, सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।

(संवर्त स्मृति २२८)

"ऋग्वेद, यजुर्वेद, उनकी शाखाओं और रहस्य से भरे सामवेद का अभ्यास करने वाला व्यक्ति समस्त पापों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है ।"

६—वेदोऽखिलो धर्म मूलम् (मनु० २। ६)

"धर्म के तत्व के जिज्ञासुओं के लिए वेद ही परम प्रमाण है ।"

७—धर्म जिज्ञासमानाना, प्रमाणं परम श्रुति ।।

(मनु० २। १३)

"सब वेद धर्म का प्रधान कारण हैं ।"

८—पितृ देव मनुष्याणां वेद श्चक्षुः सनातनम् ।
अशक्यं चाप्रमेयं च सर्व वेद शास्त्रमिति स्थिति ।।

(मनु० १२। ६४)

"वेद पितरों, देवताओं और मनुष्यों के सनातन चक्षु हैं । उनका निर्माण व उनमें भरे ज्ञान की नाप की सामर्थ्य किसी मनुष्य में नहीं है ।"

६—चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चस्वास्वाश्रमाः पृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्व वेदात्प्रसिध्यति ।।

(मनु० १२। ६७)

"चारों वर्ण, तीनों लोक, चारों आश्रम, भूत, भविष्य और वर्तमान में सब कुछ होने वाला वेद से ही सिद्ध होता है ।"

१०—शब्दः स्पर्शश्च, रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
वेदादेव प्रसूयन्तं प्रसूतिगुणकर्मतः (मनु० १२। ६८)

"वेद से ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इन गुणों की उत्पत्ति होती है ।"

११—विभर्ति सर्व भूतानि वेदशास्त्र सनातनम् ।
तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ।।

(मनु० १२। ६७)

"सनातन वेद शास्त्र मनुष्यों का श्रेष्ठ साधन हैं, क्योंकि सभी मनुष्यों का पालन पोषण (ज्ञान का) इन्हीं से होता है।"

१२—सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥
(मनु० १२ । १००)

"वेद शास्त्रों के ज्ञाता को ही सेना, राज्य, दण्ड नेतृत्व व सर्वाधिपत्व देना चाहिये।"

१३—वेद शास्त्रार्थं तत्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन्।
इहैव लोके तिष्ठन्स ब्रह्मभूयाय कल्पते॥
(मनु० १२ । १०२)

"वेद शास्त्रों के तत्व को जानने वाला व्यक्ति किसी भी आश्रम में और इसी लोक में ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त कर लेता है।"

१४—एकोऽपि वेदविद्धर्मं व व्यवस्येद् द्विजोत्तमः।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानानुदितोऽयुतैः॥
(मनु० १२ । ११३)

"एक वेद का विद्वान जो धर्म का निर्णय दे, उसी को परम-धर्म मानना चाहिये, किन्तु दस सहस्र अवेदज्ञ ब्राह्मणों का नहीं।"

१५—वेदाभ्यासस्तपोज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः।
अहिंसा गुरु सेवा च निःश्रेयसकरं परम्॥
(मनु० १२ । ८३)

"वेदाभ्यास, तप, ज्ञान, इन्द्रिय सयम, अहिंसा व गुरू सेवा, यह परम निःश्रेयसकर सिद्ध होते हैं।"

१६—वेदानधीत्य वेदौ व वेदं वादि यथाक्रमम्।
अविरकुतब्रह्मचर्यो गृहास्थाश्रममावसेत्॥
(मनु० २ । ३)

"अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता हुआ ब्रह्मचारी तीन वेद

अथवा एक वेद के पूर्ण अध्ययन के पश्चात् गुरु आज्ञा से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे।"

१७—अभ्यासेन तु वेदानां ब्रह्मचर्यस्य पालनात्।
युक्ताहारविहाराभ्यां मृत्युं विप्रो जिघासति॥

"वेद अभ्यास, ब्रह्मचर्य पालन उचित आहार-विहार मृत्यु को भी जीता जा सकता है।"

१८—सर्वेषां तु स नामनि कर्माणि च पृथक पृथक।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्चनिश्चये (मनु० १।२१)

"सृष्टि के आरम्भ में वेद के शस्त्रों से ही परमात्मा ने वस्तुओं, प्राणियों कर्तव्य कर्मों और जीविका सम्बन्धी व्यवस्थाओं की रचना की।"

१९—वेद स्मृतिः सदाचारः स्वस्थ च प्रियमात्मना।
एतञ्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।म. २।१२

"वेद, स्मृति, सदाचार और आत्मा को प्रिय लगे, यही साक्षात् धर्म के लक्षण हैं।"

वेदों की अत्यन्त महत्ता और उपयोगिता को अनुभव करते हुए वेदों के अध्ययन की प्रेरणा दी है।

२०—तपोविशेषैर्विविधैव्रतैश्च विधि चोदितैः।
वेदकृत्सनोऽधिगन्तव्य सहस्यो द्विजन्मना॥ म. २।१६५

"विशेष प्रकार के तप और विधि विधान सहित व्रतों का पालन करते हुए वेद को साङ्गोपाङ्ग सहित पढ़ना चाहिए।"

मनु भगवान ने वेदों की उपेक्षा व उनका यथाविधि अध्ययन न करने वालों की निन्दा की है।

२१—योऽवमन्यते वे मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्विजः।
स साधुभिर्वहिष्कार्यो नास्तिको वेद निन्दकः॥
(मनु० २।११)

"तर्क शास्त्र के आधार पर जो ब्राह्मण वेद का अपमान करता

है, वह वेद निन्दक नास्तिक है। उसे द्विजोचित कार्यों-वेदाध्ययनादि के अयोग्य समझा जाता है।"

२२—अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आवस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रान जिघांसति ॥ (मनु०)

"वेद अभ्यास न करने, आधारहीन होने, आलस्य में रत रहने और दूषित आहार के ग्रहण करने से मृत्यु आ घेरती है।"

२३—यऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वआशु गच्छति सान्वयः ॥
(मनु० २। १६८)

'जो द्विज वेद को न पढ़कर अन्य शास्त्र में व्यर्थ परिश्रम करता है, वह इसी जन्म में अपने स्वजनों सहित शूद्र हो जाता है।'

षट् दर्शन—

न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त और मीमांसा यह छः दर्शन माने जाते हैं, जिनकी गौतम, कणाद, कपिल पतञ्जलि, वेद व्यास और जैमिनि ने रचना की। भारतीय विचार जगत में इन दर्शनों को बहुत ही उच्च और महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इन तत्व वेत्ताओं की वेद विषयक सम्मति को भी उतना ही मूल्यवान समझना चाहिए। दर्शनों शास्त्रों के उदाहरण नीचे देते हैं:—

१—महर्षि पतञ्जलि ने वेद के अध्ययन की प्रेरणा देते हुये कहा है।

ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मो षडंगो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।

"प्रत्येक ब्राह्मण का षडङ्ग वेद का अध्ययन और ज्ञान सहज कर्म होना चाहिये।"

२—चोदनालक्षणोऽयो धर्म [मीमांसादर्शन १। १। २]

वेद की प्रेरणाओं और आज्ञाओं में जो अर्थ और कर्तव्य भरे

हैं, उन्हें ही धर्म कहते हैं उच्च कोटि के तार्किक महर्षि जैमिनि ने वेदों को परम प्रमाण माना है ।

३—वेदान्त दर्शन में भी वेदों को अपौरुषेय माना है । जगत्गुरु शंकराचार्य वेदान्त दर्शनपर भाष्य करते हुये लिखते हैं, ऋग्वेदादि वेद शास्त्र, भिन्न २ प्रकार विद्याओं से ओत-प्रोत हैं । दीपक के प्रकाश की तरह सभी वस्तुओं का उनसे बोध होता है । ज्ञान की इतनी अधिकता है कि उन्हें सर्वज्ञ मानना पड़ता है । इनका निर्माणकर्ता ब्रह्म ही सम्भव हो सकता है । ऋग्वेदादि शास्त्रों का निर्माण उस सर्वज्ञ के सिवा और कोई नहीं कर सकता ऋग्वेदादि तो ज्ञान के समुद्र हैं । वेदों का निर्माण पुरुष के श्वास प्रश्वास की तरह सहज ही में ब्रह्म से हुआ है ।

४ -- साख्यकार ने भी वेदों की महत्ता को स्वीकार किया है ।

सिद्धरूपवोद्धृत्वाद् वाह्यार्थोपदेश [सां० १ । ६८]

वेद के अध्ययन से ही सिद्ध रूप परमात्मा की प्राप्ति होती है । वेद वाक्यों और अर्थों के उपदेश देने का यही कारण हे ।

५—साँख्यकार के मन में वेदों के प्रति इतनी श्रद्धा है कि उन्होंने यहाँ तक लिख दिया कि जो व्यक्ति कुतर्क से वेदों का विरोध करता है, उस आत्म-ज्ञान व आत्म ध्यान होना सम्भव नहीं ।

श्रुतिविरोधान्न कुतर्कापसदस्यात्मलाभ (सां ६ ३४)

६—वैशेषिक दर्शन के कर्ता महर्षि कणाद वेदों के स्वानुशीलन के आधार पर लिखते हैं कि वेदों के हर एक वाक्य की रचना बुद्धि पूर्वक हुई है ।

बुद्धि पूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे । (वैं० ६।१।१)

निरुक्त—

वेदों के अध्ययन सम्बन्धी नियमों अर्थात् उन के अध्ययन की कुन्जी के निर्माता महर्षि यास्क का ग्रन्थ निरुक्त संस्कृत साहित्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि उस के बिना वेद

रूपी समुद्र में गहन प्रवेश ही सम्भव नहीं है। भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत वेद को समझाने के लिए मार्ग खोलने वाले महर्षि की बुद्धि की उत्कृष्टता कल्पनातीत है। उन्होंने महर्षि वेद व्यास की तरह वेद पढ़ने वालों को प्रेरित किया है कि जो व्यक्ति वेद तो पढ़ता है, परन्तु उनके अर्थों को नहीं समझता, वह ठूंठे वृक्ष की भाँति केवल भार ही ढोता है। इस के विपरीत जो अर्थ को समझता है, वह समस्त कल्याण का भागी होता है और उनके द्वारा ज्ञान प्राप्त करके, पाप-रहित हो कर स्वर्ग को पाता है।

स्थाणुरयं भारहारः किवाभूत,
अधीत्य वेदं न विजानानि योऽर्थम्।
योऽर्थत इत सकलं भद्रमश्नुते,
नाकमेति ज्ञानविधुतपाप्मा ॥

आगे वह मन्त्रों का साक्षात्कार करके का उपाय बताते हैं कि वेद विद्या पर अधिकार करने कीं इच्छा करने के लिए तप करना चाहिये।

तस्यास्तपसा पारमीप्सितव्यम (निरु० १३।१३)

तप की अग्नि में तपने के पश्चात् यास्क उस के फल का भी संकेत करते हैं कि वेद मन्त्रों की सहायता से अनेक प्रकार के कर्मों की सिद्धि होती है।

कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे (निरु० १।३)

उन्होंने मन्त्र शब्द की व्याख्या भी यही की है कि जिस के मनन से ज्ञान लाभ होता है।

इस प्रकार से महर्षि यास्क वेद मन्त्रों के पढ़ने का ढङ्ग, उनके साक्षात्कार करने का उपाय और उस का फल बताते हैं। उनकी दृष्टि में वेद परमात्मा द्वारा निर्मित वह श्रेष्ठतम ग्रन्थ है जिससे सब प्रकार के ज्ञान और सुख की प्राप्ति होती है।

महाभाष्य व्याकरण–

व्याकरण महाभाष्य जैसे अलौकिक ग्रन्थ के रचयिता महर्षि पतञ्जलि को वेदों पर इतनी श्रद्धा और निष्ठा थी कि वह वेदों के प्रत्येक वाक्य को अत्यन्त मूल्यवान समझते थे। यही कारण है कि उन्होंने वेद मन्त्रों के सम्बन्ध में अपनी सम्मति देते हुए कहा है कि वेदों का यदि एक वाक्य भी भली प्रकार समझ लिया जाए, उसे समझ कर आचरण में लाया जाए तो मनुष्य इस लोक में ही स्वर्गीय वातावरण का निर्माण कर सकता है और वह स्वर्ग भी वैसा जो हमारी सभी इच्छाओंको कामधेनु गाय की तरह पूर्ण करने वाला हो।

एक:शब्द: सम्यग् ज्ञान: सुप्रयुक्त स्वर्गे लोके कामधुक भवति। (व्याकरण महाभाष्य ।।)

महाभारत—

महाभारत की गणना उच्च कोटि के धर्म ग्रन्थों में होती है। उसकी महत्ता इसी से प्रकट होती है कि उसे पांचवाँ वेद कहा जाता है। इसमें लोक-धर्म, राजनीति, समाज नीति, तत्व व ज्ञान, आचार व्यवहार आदि महत्व-पूर्ण विषयों का सुन्दर विवेचन है। धर्म और नीति के उपदेश इस में भरे पड़े हैं। इसको प्राचीन भारतवर्ष का विश्व-कोष कहा जाता है। यह प्राचीन भूगोल, समाज शास्त्र, शासन पद्धति नीति और धर्म के आदर्श की खान है।

महाभारतकार ने वेद जैसे महत्वपूर्ण विषय को भी अधूरा नहीं छोड़ा है। उस पर अपनी स्वतन्त्र राय दी है। महाभारत ने (शान्ति पर्व. अ. २ । २ । २४) वेदों को परमात्मा द्वारा निर्मित बताया है और मनुष्य की समस्त प्रवृत्तियों का केन्द्र वेदों को ही माना है। महाभारत ने तो वेद की प्रशंसा में बहुत आगे बढ़कर कहा है (शांतिपर्व २३१।२५।२७) कि वस्तुओं के नाम और कर्म परमात्मा ने वेद के शब्दों से ही बनाए हैं! उन्होंने ऋषियों के नाम और ज्ञान

को भी वेद से सम्बद्ध किया है, इनक मूल वेद को माना है। वेद पर इतनी निष्ठा का ही कारण है कि उन्होंने महर्षि कपिल के द्वारा (शान्ति पर्व अ. २०१ १०१ । १०) वेद को सब लोगों के लिए परम प्रमाण माना है। इसी लिए वेद व्यास जी (शान्ति पर्व मोक्ष अ० ३०५ । १३ । १९) चेतावनी देते हैं कि वेद का स्वाध्याय उनके अर्थों को भली प्रकार से समझकर करना चाहिये । जो वेद मन्त्रों में निहित तत्वज्ञान पर ध्यान न देकर केवल पाठ भाग पर जोर देते हैं, उनकी प्रवृत्ति को उन्होंने भार रूप और इस तरह के सारे परिश्रम को निष्फल माना है ।

गीता महाभारत का एक अङ्ग है। इसमें भगवान कृष्ण ने अर्जुन को तत्वज्ञान की शिक्षा दी है । इसमें (गीता ९ । १७) भगवान कृष्ण ने अपने को ही ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद कहा है। उन्होंने आगे (गीता १५ । २५) वेदों का निर्माता अपने को बताया है और अपने को (परमात्मा को) प्राप्त करने का साधन भी वेद को ही दर्शाया है ।

रामायण—

आदि कवि महर्षि बाल्मीकि एक स्वतन्त्र विचारक थे। उन्होंने रामायण में अपने मुख्य नायकों को वेदों का ज्ञाता माना है। अमर काव्यकी रचना करने के लिए किसी आदर्श महापुरुष के सम्बन्ध में जब बाल्मीकि ऋषि ने नारद मुनि से पूछा तो उन्होंने रामचन्द्रजी की ओर संकेत किया और अनेकों गुणों का वर्णन करते हुए कहा "वेदाङ्ग तत्त-वज्ञो" (वा. राम. बालकण्ड १।१४।१५) वह वेद वेदाङ्गों के तत्व को समझने वाले हैं, फिर राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुहन चारों भाइयों के बारे में लिखा है कि "सर्ववेदविद्" (बा. रा. बालकाण्ड १८ । १५) सारे भाई वेदों के जानने वाले थे। राम, लक्ष्मण का जब सर्व प्रथम हनुमान से साक्षात्कार होता है तो हनुमान की बातें सुन कर राम लक्ष्मण से कहते हैं "नाऋग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेद धारणाः । ना सामवेद विदुषः शक्यमेव विभाषितुम ।।" (बा. रा. किष्किन्धा काण्ड ३ । २८) इसका अर्थ यह है कि रामायणकार योग्यताओं का मापदण्ड वेद को ही मानते थे ।

अन्य धर्मावलम्बियों की दृष्टि में—वेद

मुसलिम जगत में वैदिक साहित्य का प्रभाव

औरंगजेब के बड़े भाई दाराशिकोह को वेदों और उपनिषदों से बड़ा प्रेम था। उसने इनका अध्ययन करने के लिये संस्कृत भाषा सीखी और उस समय के पण्डितों की सहायता से उपनिषदों का फारसी भाषा में अनुवाद किया। उन्होंने लिखा है कि "खोज करने पर ज्ञात हुआ कि प्राचीन हिन्दू जाति में समस्त "ईश्वरीय पुस्तकों" (जैसे कि कुरान, तौरेत तथा जबूर आदि) के पहले चार ईश्वरीय पुस्तकें जिनके नाम ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्व वेद हैं, उस समय के ऋषियों पर समस्त आज्ञाओं के साथ ईश्वर की ओर से प्रकट हुई थीं। यजुर्वेद के ४० वें अध्याय ईशोपषिद् के बारे में उन्होंने लिखा है कि "यह पुस्तक अनादि है ओर निःसन्देह समस्त ईश्वरीय पुस्तकों में प्राचीनतम है। यह परम सत्य का स्रोत तथा ब्रह्मज्ञान का समुद्र है।

अरब के प्रसिद्ध कवि लाबी ने अपनी एक कविता में वेदों का गुणगान करते हुए लिखा है "ईश्वरीय ज्ञान की यह चार पुस्तकें—वेद, हमारे मन के नेत्रों के लिए कितनी आकर्षक और शीतल ऊषा का प्रकाश देने वाले हैं। परमात्मा ने भारत में अपने ऋषियों के हृदयों में इन चारों वेदों को प्रकाशित किया।" लाबी अपने पाठकों को प्रेरणा देते हैं कि 'हे मेरे भाइयो! साम और यजुर्वेद का तुम सम्मान करो। यह मुक्ति पथ की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं। ऋग्वेद और अथर्ववेद हमें प्राणी मात्र के प्रति भ्रातृभाव रखने की शिक्षा देते हैं।

यह वह प्रकाश स्तम्भ हैं जो हमें विश्व भ्रातृत्व की ओर चलने को प्रेरित करते हैं।"

पारसियों की दृष्टि में वेद

सुप्रसिद्ध पारसी विद्वान फर्दून दादाचान अपनी पुस्तक "पारसी धर्म का दर्शन और धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन" में वेद पर अपने स्वतन्त्र विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं:—"वेद ज्ञान और बुद्धि की पुस्तक हैं जिस में प्रकृति, धर्म, प्रार्थना और चरित्र का वर्णन है। वेद शब्द का अर्थ बुद्धि, विवेक और ज्ञान है, वास्तव में वेद बुद्धि, विवेक और ज्ञान का संगठन है।"

बुद्ध व जैन धर्म में वेदों का सम्मान

महात्मा गौतम बुद्ध में सम्बन्ध में अनेकों प्रकार की भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं कि वह वेदों के घोर विरोधी थे और उन्होने वैदिकधर्म की जड़ों को खोखला करने के लिए, बहुत प्रचार किया था। वास्तविकता का अध्ययन करने से प्रतीत होता है न तो वह नास्तिक थे और न वेदों के घोर विरोधी। बुद्ध के समय में यज्ञों में पशु आदि हिंसात्मक कुरीतियां फैली हुई थीं और पण्डित लोग उन्हें वेद सम्मत बताते थे। पण्डितों की इस घोषणा पर कि पशु हिंसा की वेदों में आज्ञा है, यदि उन्होंने यह कह दिया हो कि यह वेदों को नहीं मानते, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि वह स्वयं वेदों के धुरन्धर विद्वान नहीं थे।'ललित विस्तर' नामक बुद्ध के जीवन चरित्र से पता चलता है कि उन्होंने गुरुकुल में निवास करके वेदों का अध्ययन किया था, परन्तु उनमें वेदों के सम्बन्ध में शास्त्रार्थ करने की क्षमता न थी। वैसे वह वेदों और उनमें भरी शिक्षाओं का बहुत आदर व सम्मान करते थे। इन भावों का स्पष्टीकरण बौद्ध धर्म ग्रन्थों से होता है। सुत्तनिपात् नाम के ग्रन्थ में वेद की शिक्षाओं के अनुसार आचरण करने वाले विद्वानों की बहुत

प्रशंसा की गई है। इस ग्रन्थ में एक स्थान पर बड़े आत्म विश्वास के साथ कहा गया है कि 'वेद की शिक्षाओं को समझने वाला विद्वान, उन पर आचरण करके जब आसक्ति और तृष्णा का त्याग कर देता है और पापों से रहित हो जाता है तो वह वेदज्ञ जन्म और वृद्धावस्था से रहित हो जाता है।' एक दूसरे स्थान पर वेदज्ञ ब्राह्मण को ही यज्ञ शेष ग्रहण करने का अधिकारी बताया है। इसका अभिप्राय यह है कि बुद्ध यज्ञों और वेदों के विरोधी नहीं थे, बल्कि पशु हिंसा के विरोधी थे और इसी लिए यह भ्रान्ति फैल गई है। अन्यथा वह तो वेदों को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

जैन मतावलम्बी आचार्य कुमुदेन्दु ने अपने ग्रन्थ भुवलय में लिखा है कि ऋग्वेद ही अनादि और आदिम भगवदवाणी है।

सिक्ख धर्म में वेदों का गुणगान

(१) चार वेद चार खाणी—(राज मारू महला ५ शब्द १७) चार वेद चार खानों के समान हैं अर्थात् वेद ज्ञान और विज्ञान के भण्डार हैं।

(२) सामवेद, ऋग्वेद, यजुर, अथवण। ब्रह्मे सुख पाइया है त्रै गुण। ताकी कीमत कति कह न सकें कोतिउ बोलै जिस बोलाइदा—(मारू खोलहे १ शब्द १७) सामवेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद ब्रह्मा के मुख से निकले हैं। इनका मूल्य बतलाया नहीं जा सकता।

(३) वेद बखान कहहि इक कहिए। ओह बेअन्त-अन्त किन लहिये—(बसन्त अष्टपादियां महलो १ अ० ३)

इसमें वेद की महिमा का गान करते हुए उसके ज्ञान को अनन्त कहा गया है।

(४) वेद पुराण सासग विचारं, एकं कार जान अधारं।
कुलह संमूह सगल उधारं, बढ़भागी नानक कोतारं।

— गाथा महलो ५.२०

" गुरु नानक देव कहते हैं कि वेद, पुराण और शास्त्रों के विचार करने से परमात्मा की स्मृति बनी रहती है। इससे सारे कुल का उद्धार हो जाता है।"

(५) वेद कतेब कहहु मत झूठे झूठा जो न विचारे ।।

—राग प्रभाती कबीर जी शब्द ३

"वेदों को झूठा नहीं कहना चाहिये। झूठा तो वह मनुष्य होता है जो उनके वचनों पर विचार नहीं करता।"

(६) ओंकार वेद निरमाह—राग रामकली महला १

ओंकार शब्द १

"ओंकार रूपी परमात्मा ने वेदों का निर्माण किया।"

(७) स्मृति सासग वेद पुराण पुराण। पारब्रह्म का करहि बखियाण!

—गोंड महला ५ शब्द १७

"वेद पुराण और स्मृति शास्त्र से भी परब्रह्म परमात्मा की महिमा का बखान करते हैं।"

(८) वेद बखियान करत साधुजन, भागहीन समझत नाहीं ।।

टोडी महला ५ शब्द २६

पाश्चात्य विचारकों का वेद अध्ययन

अंग्रेज भारत में व्यापारी के रूप में आये परन्तु यहाँ के राजाओं की आपकी फूट से लाभ उठाकर वह स्वयं राजा बन बैठे। अपनी सत्ता का स्थायित्व बनाये रखने के लिए लार्ड मैकाले की प्रेरणा से यहाँ की संस्कृति पर आघात करना आरम्भ किया। अनेकों वृहद् ग्रन्थों का निर्माण किया गया। 'ऋग्वेद में वरुण देवता का स्थान' ऋग्वेद और वैदिक धर्म ?' आदि निन्दा सूचक पुस्तकें इसी कोटि में आती हैं। परन्तु जब विदेशी विद्वानों ने भारतीय साहित्य का गम्भीरतापूर्वक अनुशीलन किया तो उनका विवेक जागृत हुआ और वह राजनीतिक हथकण्डों को भूल गये। अब वह वैदिक साहित्य पर टिप्पणी करने के बजाय उसके अध्ययन और शोध में लग गये, परिणामस्वरूप इतने साहित्य का प्रकाशन किया गया जो भारतीय विद्वानों के लिए असम्भव था। वैदिक साहित्य पर उनकी श्रद्धा फूट-फूट कर उनके विचारों में प्रकट होने लगी। अँग्रेजी, जर्मन, और फ्रेंच आदि अनेकों भाषाओं में वेदों के अनुवाद हुए। कुछ पद्य में, कुछ गद्य में। विदेशों में वेदों के अध्ययन को सुलभ बनाने के लिए अनेकों विद्वानों ने व्याकरण लिखे, वैदिक ग्रन्थों का आलोचनात्मक अध्ययन किया, वेदार्थ की नवीन विधियों का आविष्कार किया, उनका अनुवाद और प्रकाशन किया। उनके कार्य से ही वेदों की महत्ता स्वयं परिलक्षित होती है।

प्रो. मैक्समूलर ने तो अपना सारा जीवन वेदाध्ययन में लगा दिया था और ऋग्वेद के सम्पादन में बीस वर्ष व्यय किए। ऋग्वेद का

सबसे पहला अँग्रेजी अनुवाद सायण भाष्य के आधार पर एच० विल्सन द्वारा हुआ था। ग्रिफिथ ने पद्य में अँग्रेजी अनुवाद किया। अथर्व वेद का अंग्रेजी अनुवाद ह्विटनी ने, सामवेद का ग्रिथ ने, कृष्ण यजुर्वेद का प्रो. कीथ ने और शुक्ल यजुर्वेद का ग्रिफिथ ने किया था। ऋग्वेद की गवेषणापूर्ण व्याख्या प्रो. जोल्डेन वर्ग द्वारा की गई। डा. मैक्डानल, ह्विटनी और डा. वाक्टनागेल ने वैदिक व्याकरण पर अनेक, ग्रन्थों की रचना की। प्रो. अर्नाल्ड ने "वैदिक मीटर" ग्रन्थ द्वारा वैदिक छन्दों पर आलोचनात्मक अध्ययन किया।

वैदिक साहित्य पर विदेशी विद्वानों ने अनेकों जगत प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे। डा० मैकडानल का "वैदिक माइथालोजी" सब से श्रेष्ठ है। यह ग्रन्थ प्रामाणिक माना जाता है। "दि रिलीजन एण्ड फिलासफी आफ दि वेदाज़ एण्ड उपनिषदाज़" भी अपने ढङ्ग का अनोखा ग्रन्थ है। डा० मैक्डानल ने "वैदिक ग्रामर की रचना कर एक नए अध्याय का सूत्रपात किया था। रूडाल्फ राॅथ ने सायण का अनुवाद न करके वेदार्थ के लिए हिस्टोरीकल "मैथड" का आविष्कार किया और वेदाध्ययन को सुलभ बनाने के लिए 'सेन्ट पीटर्स वर्ग संस्कृत जर्मन महाकोष' का निर्माण किया। ए-वेवर के "भारतवर्षीय साहित्य के इतिहास पर यूनिवर्सिटी व्याख्यान" को भी उच्च स्थान प्राप्त है। 'वैदिक इण्डैक्स' जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना कीथ और मैक्डानल ने मिल कर की।

इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि विदेशी विचारकों ने वैदिक साहित्य के अनुशीलन में कितनी रुचि दिखाई और वह वेदाध्ययन को कितना महत्व देते थे। विदेशी विद्वानों ने अपनी पुस्तकों में वेदों के सम्बन्ध में सम्मतियाँ प्रकट की हैं जिनमें से कुछ नीचे दी जा रही हैं :—

श्री ब्राऊन नामक एक अंग्रेज विद्वान ने अपनी 'वैदिक धर्म की श्रेष्ठता' पुस्तक में वेद की महत्ता दर्शाते हुए लिखा है वैदिक धर्म एक

वैज्ञानिक धर्म है, जहाँ धर्म और विज्ञान साथ-साथ चलते हैं। इसमें धर्म—विज्ञान और दर्शन पर आधारित है।'

फ्रांस के एक प्रसिद्ध विद्वान जैकोलियट ने अपनी पुस्तक 'भारत में बाइबल' में अपने स्वतन्त्र विचार व्यक्त करते हुये लिखा 'बड़े आश्चर्य की बात है कि हिन्दुओं का ईश्वरीय ज्ञान-वेद संसार के ईश्वरीय ज्ञानों की पुस्तकों में से एक ऐसा है जिसके विचार वर्तमान विज्ञान से मिलते जुलते हैं।

'अथर्ववेद के सूक्त' नामक पुस्तक पर अथर्ववेद की उपयोगिता पर विचार करते हुए श्री ब्लूमफील्ड ने कहा है 'अनेक प्रकार से अथर्व वेद एक पवित्र पुस्तक है। अथर्ववेद में ऋग्वेद और यजुर्वेद के समान जो मन्त्र आते हैं, उन्हें छोड़कर उसके बहुत से सूक्त और क्रियाएँ लाभप्रद हैं। इनका लोग सम्मान करते हैं। अर्थवेद के बहुत से सूक्त ब्रह्मविचार का प्रतिपादन करते हैं।

महान दार्शनिक मैटरलिंक ने वेदों की प्रशंसा में लिखा है 'वेद ही एक मात्र ज्ञान के खजाने हैं, जिनकी समता हो ही नहीं सकती। वेदों में बीज रूप से विश्व की सारी विद्याओं का ज्ञान छिपा है।"

"सामाजिक वातावरण और चारित्रिक उन्नति" नामक ग्रन्थ के रचयिता डा० रसेल ने बड़े साहसपूर्ण शब्दों में कहा है कि "आश्चर्य कि सूक्तों का संग्रह, जिसे वेद कहते हैं, से जो धार्मिक शिक्षाएँ हैं वह पवित्रता और उच्चता में बाइबिल में किसी तरह भी कम नहीं है। सुन्दर कविताओं में प्रकाशित विश्व और ईश्वर विषयक विचारों में इनके रचयिता पूर्णतया हमारे समान थे। इनमें अत्यधिक प्रगतिशील विचारकों की आवश्यक शिक्षायें पाई जाती हैं। हमें मानना होगा कि वैदिक सूक्तों में रचित भाषा में व्यक्त विचारों को जिस मन ने अनुभव किया, हमारे अच्छे से अच्छे धार्मिक शिक्षकों और मिलटन, शैक्सपियर और टैनीसन जैसे कवियों से किसी तरह भी कम न थे।

प्रो० मैक्समूलर जिसने सबसे पहले वेदों का मुद्रण करवाया था और जिसने वेदों के सम्बन्ध में निन्दा सूचक शब्दों का प्रयोग किया था और वेदों को गडरियों की बिलबिलाहट बतलाया था, बाद में इनकी उत्कृष्टता पर इतना मुग्ध हुआ कि वह वेदों को ज्ञान का कोष और संसार भर की पुस्तकों में सबसे पुरानी पुस्तक मानने पर बाध्य हुआ। उन्होंने अपने ग्रन्थ "भारतीय षड्दर्शन" में ऋग्वेद के कुछ सूक्तों का संकेत करते हुये लिखा है, "इन सूक्तों में पाए जाने वाले ईश्वर और सृष्टि रचना के सम्बन्ध में सूक्ष्म विचार इतने उच्च हैं कि उन्हें देखकर यह लगता है कि इन सूक्तों के मन्त्र इन ऋषियों से अलग किसी और शक्ति द्वारा प्रेरित किये गये हैं।

सर एडवर्ड कारपेन्टर ने अपनी पुस्तक 'आर्ट आफ क्रिश्चियन' में कहा गया है "अब तक के विचारों और दर्शनों में एक भी नहीं जिसे हम नए की संज्ञा दे सकें, परन्तु वैदिक ऋषियों के मौलिक विचार आदि काल से लेकर शोपनहार तथा मिल्टन जैसे दार्शनिकों तक के समय तक एक के पश्चात् दूसरे दर्शन और एक के पश्चात् दूसरे धर्म को प्रेरित करते आ रहे हैं।

पादरी मोरिस फिलिप ने अपनी पुस्तक "वेदों की शिक्षाओं" में निःसंकोच भाव से ईसाई होते हुए वेदों की प्रशंसा की है। "इतिहास और पुस्तकों के निर्माण कालादि विषयक अनुसन्धान के अनुसार हम ऋग्वेद को आर्यों की ही नहीं बल्कि संसार भर की सबसे पुरानी पुस्तक आसानी से कह सकते हैं।"

अमेरिका के महान विचारक थोरियो की सम्मति है कि "वेदों के जो भाग मैंने पढ़े हैं, उनका मुझ पर एक उच्च और पवित्र ज्योतिर्मय प्रकाश की तरह प्रभाव पड़ा है। इनमें उच्चतम मार्ग का वर्णन है।

प्रो. हीरेन 'ऐतिहासिक अनुसन्धान' में लिखते हैं 'निःसन्देह वे

संस्कृत की सब से पुरानी पुस्तक हैं। बहुत पुराने संस्कृत साहित्य में भी इनकी विद्यमानता पाई जाती है। वेद मनुष्य मात्र की प्रगति में प्रकाश स्तम्भ का काम देते हैं और इनका इस अद्भुत शान में कोई भी इनकी समता नहीं कर सकता।

अमेरिकन बिदुषी महिला मिसेज ह्वीलर गिल्लोक्स ने वेद विषयक अपने अनुभव इस प्रकार व्यक्त किये हैं। "हमने भारत के प्राचीन धर्म के सम्बन्ध में सुना और पढ़ा है। यह उन महान वेदों की भूमि है जिसमें न केवल पूर्ण जीवन के लिये धार्मिक विचार हैं अपितु यह उन सत्यों से परिपूर्ण हैं, जिनको विज्ञान ने प्रमाणित किया है। वेदों के दृष्टा ऋषियों को बिजली, रेडियम, एलेक्ट्रन्स, विमान आदि की जानकारी ज्ञात प्रतीत होती थी।

लौकिक और पारलौकिक विद्याओं के मूलस्रोत-वेद

वेद सर्व विद्याओं के भण्डार हैं। उनमें केवल अध्यात्म ज्ञान, धर्म, सदाचार, स्वर्ग, मुक्ति आदि के सम्बन्ध में ही महत्वपूर्ण ज्ञान नहीं दिया गया है वरन् हर प्रकार के लौकिक विषय पर भी विस्तार से प्रकाश डाला गया है, जीवन में मनुष्य को जिन संघर्षों से जूझना पड़ता है, उनके प्रतिकार के उपाय भी बताए हैं, लौकिक सिद्धियों की प्राप्ति का ज्ञान दिया है, शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सब दृष्टियों से स्वस्थ रहने के साधन दिए हैं, समाज को दुष्टों और पापियों से बचाने के भी उपाय लिखे हैं। संक्षिप्त में वेद मानव जीवन को सुचारु रूप से सञ्चालित करने तथा सांसारिक विघ्न बाधाओं को दूर करने का प्रवेष द्वार हैं, स्थाई सुख शान्ति प्राप्त करने के उत्तम साधन हैं।

वेदों में जिन विद्याओं का विवेचन है, उनमें से कुछ का संक्षित विवरण नीचे दिया जा रहा है:—

(१) अन्न सिद्धि—शास्त्रकारों ने अन्न को देवता कहा है। तैत्तरोयीपनिषद् २।२ में आया है "इस अन्न के रसमय शरीर के भीतर जो प्राणमय पुरुष है, वह अन्न से व्याप्त है। यह प्राणमय पुरुष ही आत्मा है।" आगे कहा है "अन्न की निन्दा न करे, यह व्रत है। प्राण

ही अन्न है।" आत्म-कल्याण के पथ पर चलने के लिए अन्न-शुद्धि आवश्यक है, क्योंकि छांदोग्य उपनिषद् में कहा है: "जब आहार शुद्ध होती है, तब सत्व अर्थात् अन्त:करण शुद्ध होता है। अन्त:करण शुद्ध होने पर बुद्धि ठीक काम करती है। उस विवेक से अज्ञानजन्य बन्धन ग्रन्थियाँ खुलती हैं। फिर परम तत्व का साक्षात्कार हो जाता है। अथर्ववेद में अनुपयुक्त अन्न को त्याज्य माना गया है। प्राचीनकाल में केवल पुण्यात्माओं का अन्न ही ग्रहण किया जाता था। तब श्रेष्ठ पुरुष की यही कसौटी थी कि लोग उसका अन्न ग्रहण करते हैं या नहीं (अथर्व ६।६।२५)। वेदों में शुद्ध अन्न ग्रहण करने और अशुद्ध को त्याग देने का आदेश दिया है।

(२) बुद्धि की वृद्धि करने के उपाय—बुद्धि संसार की सबसे बड़ी सम्पत्ति है। आचार्य चाणक्य ने एक बार कहा था कि मेरा मकान जला डालो, सम्पत्ति छीन लो और सब कुछ जो मेरे पास है, ले लो, परन्तु मेरे पास केवल बुद्धि रहने दो। इससे मैं सब कुछ फिर प्राप्त कर लूंगा।" यही पशु को मनुष्य और देवता बनाती है, लौकिक और पारलौकिक सिद्धियों का आधार यही है। वेद में इसके विकास के उपायों का होना मानव-कल्याण का ही द्योतक है।

(३) ग्राम, नगर, किले, राज्य आदि की प्राप्ति और उनका संवर्धन (४) शत्रु को कष्ट देने और नष्ट करने के उपाय (५) युद्ध में विजय सम्पादन करना (६) शत्रुओं के शस्त्रों, आक्रमणों का निवारण करना, (७) शत्रु सेना में मोह, भ्रम उत्पन्न करना, उनमें उद्वेग भाव उत्पन्न करना, उनकी हलचल को रोकना, उनको उखाड़ देना आदि के साधन (८) अपनी सेना का उत्साह बढ़ाना और उसको निर्भय करना' (९) युद्ध में जय होगी या पराजय, इसका पहले से विचार कर लेना (१०) सेना पति, मंत्री, आमात्य आदि प्रधान राज्यधिकारियों को नियन्त्रण में रखना (११) शत्रु की सेना में गुप्त रीति से संचार करके

उसका सब भेद जान लेना और वहाँ से अपने ऊपर आने वाले अनिष्टों के प्रतिकार की व्यवस्था करना (१२) शत्रु द्वारा उखाड़े गए अपने राजा को पुन स्वराष्ट्र में स्थापन करने की योजना (१३) शत्रु पर चढ़ाई करना (१४) शत्रु के नाश का उपाय करना आदि।

महाभारत में अनेको प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन है। शत्रु सेना में ज्वर, शरीर में जकडन व अन्य अनेकों प्रकार के रोग उत्पन्न करना, अग्नि व जल की वर्षा मंत्रों द्वारा होती थी। ब्रह्मास्त्र आदि अनेकों एटमबम की तरह विध्वंसक अस्त्रों का वर्णन है। वेद में शत्रु से रक्षा, अपनी सेना की कुशल व्यवस्था, शत्रु सेना में मोह भ्रम उत्पन्न करना और युद्ध में विजय प्राप्त करने आदि पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

(१५) पुत्र, पशु, धन, धान्य, प्रजा, स्त्री, हाथी, घोड़े, रथ, पालकी आदि ऐश्वर्य साधनों की सिद्धि के उपाय। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि वेद केवल मुक्ति का ही साधन नहीं बताते वरन् वह साधक को भौतिक जीवन में भी सुखी देखना चाहते हैं।

(१६) जनता में ऐक्य, मिलाप, प्रेम, सहयोग आदि की स्थापना के उपाय, (१७) राजा के कर्तव्य और आवश्यक कर्म। वेदमें राजनीति विशारद बनने के लिए भी पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। कुशल और लोकप्रिय प्रशासक बनने के उपायों का उनमें सुन्दर दिग्दर्शन है। जनता में राज्य के प्रति विश्वास की भावना उत्पन करने के साधनों का सविस्तार वर्णन है।

(१८) पतन के कारणों को दूर करना—यदि समाज का नैतिक स्तर गिर रहा है तो उसके मूल कारणों पर विचार करना और उसके निवारण की व्यवस्था करना।

(१९) गौ, बैल आदि का सम्बर्धन और कृषि कार्य को विकसित करना। भारत कृषि प्रधान देश हैं। अतः कृषि साधनों के विकास पर

विचार करना वेद जैसे कल्याणकारी ग्रन्थ के लिए स्वाभाविक ही है।

(२०) घर की शोभा और वैभव बढ़ाने के भेद।

(२१) रोग निवारक औषधियों का ज्ञान—भारतीय चिकित्सा शास्त्र सबसे प्राचीन है। अरबों ने भारतीयों से यह ज्ञान सीखा। अरबों के द्वारा योरोप में यह विद्या फैली। अभी तक जितनी भी चिकित्सा पद्धतियाँ प्रचलित हुई हैं, उनका मूल उद्गम भारतीय आयुर्वेद है, जिसका आरम्भ वेद से हुआ है।

(२२) गर्भाधान से लेकर समस्त आवश्यक संस्कार—जिस तरह खान से निकले हुए पत्थर को तराश कर हीरा बनाया जाता है, उसी तरह पशु वृत्तियों से ओत-प्रोत मनुष्य को संस्कारित करके मनुष्य बनाया जाता है। यह षोडश संस्कार मानव निर्माण की भट्टी है।

(२३) सभा में, विवाद में जय प्राप्त करने और कलह शान्ति के उपाय।

(२४) योग्य समय पर वृष्टि करने के उपाय—प्राचीन काल में यज्ञों के माध्यम से इच्छानुसार वर्षा कराई जाती थी और अधिक वर्षा होने पर उसे बन्द भी करवा दिया जाता था। तभी तो यहां कभी खाद्य समस्या उत्पन नहीं हुई।

(२४) कुशल पूर्वक देश देशान्तरों का भ्रमण करना। (२६) देश विदेश में व्यापार की वृद्धि करके लाभ उठाना, इतिहास शास्त्रों में वायुयान और जलयान के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। भारतीय व्यापारी अन्य देशों का भ्रमण करते थे। वहाँ अपने व्यापार को बढ़ाते थे। अपार विदेशी मुद्रा का अर्जन करते थे। अनेकों स्थानों पर उन्होंने भारतीय राज्यों की भी स्थापना की थी।

(२७) व्यक्तिगत अथवा सामाजिक शत्रुओं की नाशकारी विधियों से बचाव करना।

(२८) दीर्घायु और सुदृढ़ स्वास्थ्य की प्राप्ति के साधन (२९]

वीर्य रक्षा, ब्रह्मचर्य व्रत आदि। क्या खाएँ–क्यों खाएँ और कैसे खाएँ के प्रश्नों का समुचित उत्तर वेद में है। स्वास्थ्य संवर्धन और संरक्षण के उपायों पर गंभीरता पूर्वक विचार किया गया है।

[३०] मानव कल्याणकारी यज्ञों की क्रियाएँ यज्ञ केवल घी, चावल, तिल, जौ आदि सामग्री की आहुतियाँ देने को ही नहीं कहते वरन् पशु वृत्तियों का त्याग, मानव कल्याण, निःस्वार्थता और देवत्व का विकास, परमार्थ की वृद्धि और समस्त प्राणियों में साम्य भाव का आवतरण ही वास्तविक यज्ञ है स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ना क्षणभंगुर वस्तुओं की अपेक्षा आत्म-विकास को अधिक महत्व देना ही श्रेष्ठ याज्ञिक बनाता है

इस प्रकार से वेद में लौकिक व पारलौकिक सभी प्रकार की उन्नति के साधनों पर प्रकाश डाला गया है।

नैतिक, चारित्रिक व आत्मिक उत्थान के सूत्रधार-वेद

वेद का अर्थ है ज्ञान। जहां ज्ञान है वहां अज्ञान अन्धकार रह नहीं सकता। अन्धकार में भटकने वाले व्यक्ति ही दोषों और दुर्गुणों के शिकार होते हैं। जहां वेद-ज्ञान की पवित्र ज्योति जलती है, वहां सत्य, प्रेम, न्याय, दया, सहानुभूति, सज्जनता, सद्व्यवहार, मधुरता, दिव्यता व निःस्वार्थता की गङ्गधारा प्रवाहित होती है। वेद भगवान की इच्छा है कि मानव पशुत्व से ऊंचा उठकर मनुष्यत्व और फिर देवत्व की भूमिका में प्रविष्ट हो, उसका गृहस्थ जीवन सुख और सौभाग्य से परिपूर्ण हो, वह पापों और कुकर्मों की दुर्गन्ध से मुक्त रहकर सदाचारीव व संयमी रहें, ईर्ष्या द्वेष, छल, कपट, वेईमानी जैसी दुर्वृतियाँ उनके पास फटक न सकें, चरित्र की सम्पत्ति का वह खजाना हो, वह शरीर की पूजा की अपेक्षा आत्मिक उत्थान की ओर अधिक ध्यान दे, निरन्तर आगे बढ़ने, कर्म करने, स्वाव लम्बी बनने और आत्म-विश्वास की तरंगें उनके मन में हिलोरें खाती रहें, समाज में अधिकार और सम्पत्ति का समवितरण हो, ऊंच-नीच का भेद भाव न हो, सब ओर प्रेम का सरोवर छलकता हो आदि।

जब भारत के घर-घर में वेद के पवित्र ज्ञान का प्रचार था, हर व्यक्ति इन सदगुणों से ओत-प्रोत दिखाई देता था और मनुष्य नहीं वरन् देवता के शुभ नाम से सम्बोधित किया जाता था। ३३ कोटि

देवताओं की कल्पना भी उसी समय की है । वेद ज्ञान के प्रचार के अभाव में आज सब ओर अनैतिकता और चरित्र-हीनता के दर्शन होते हैं जिससे चारो ओर का वातावरण दूषित हो रहा है । सभी विचार-शील व्यक्ति इससे क्षुब्ध हैं और चाहते हैं कि नैतिक उत्थान का प्रवाह फिर से भारत भूमि में बहे । परन्तु वह वेद प्रचार के बिना कैसे सम्भव हो सकता है । इस लिए हर भारतीय को वेदों का अध्ययन करना चाहिए और उनकी महत्वपूर्ण शिक्षाओं को अपने जीवन व्यव-हार में लाना चाहिए । जब हर घर में वेद का अध्ययन होगा, तब स्वर्ग भी पृथ्वी पर आने के लिए उत्सुक होगा ।

उत्तम प्रेरणाओं के स्रोत

वेदों में जीवन निर्माण सम्बन्धी किस प्रकार की शिक्षाएं उप-लब्ध होती हैं, उसके कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत किए जाते हैं ताकि पाठकों को उनकी श्रेष्ठता का अनुमान हो सके:—

यह सम्पूर्ण विश्व परमात्मा का ही रूप है (ऋग० १०।९०। २) । आत्मा न कभी मरती है, न उसकी कभी क्षति होती है (यजु० २३।१३) जो अमर बनकर मरता है,वही धन्य है (ऋगवेद १।९०।३७) मनुष्य अपनी परिस्थितियों का निर्माता आप है [ऋग० १।२।५७] । धर्म कर्तव्यों का पालन करने वाले ही देव हैं । [ऋग० १०।६५।११] देवता सदा आत्मबलिदान से प्रसन होते हैं [अथर्व १०।७।३९] जो जागता है, उसे ही परमात्मा ढूंढ़ता फिरता है[ऋग्वेद, प्रातः सायं आत्मचिन्तन करना चाहिए । (अथर्व ६।३०।७) ।

सद्बुद्धि ही संसार में सर्वश्रेष्ठ वस्तु है (अथर्व० ६।१०८।१) । असत्य नहीं, सत्य ही बोलिये । (अथर्व० ४।९।७) । सत्य मार्ग पर चलने वालों का जीवन सरल हो जाता है (ऋग० १।४१।१४) कानों से अच्छे विचार ही सुनो । (यजु० ३०) । अन्धेरे में मत पड़े रहो (अथर्व० ८।२।२) हंस की तरह गुण ग्राहक बनो । (ऋग० १।६५।९६) जो श्रद्धा को छोड़कर तृष्णा में फँसे हैं वे नाश की तैयारी कर रहे हैं ।

(अथर्व १२।२।५१) उस मार्ग पर मत चलो जिस पर अज्ञानी चलते हैं। (ऋग० ७।४।७) गुजरे हुओं के लिए शोक मत करो । (अथर्व० ८।१।८) क्रोध मत करो। (अथर्व ११।२।२०) चिन्ता करना व्यर्थ है। (अथर्व० ८।१९) ।

वही ऋषि और ब्राह्मण है जो अपने ज्ञान से दूसरों को सन्मार्ग पर लगाता है (ऋग० १०।१०७।६) । ऊँचा वह उठता है जो तप करता है (अथर्व १३।२।२२ । जहाँ ब्राह्मण हारते हैं, वह देश खोखला हो जाता है। (अथर्व ५।१९।६) अज्ञानियों को ज्ञानवान बनाओ। (ऋग० १।२।६)। हे देवो ! गिरे हुओं को फिर उठाओ (ऋग० १०।१३७।१)। सद्बुद्धि से ही स्वर्ग प्राप्त होता है (यजु) वह प्रशंसनीय है जो घूम घूमकर धर्मोपदेश करते हैं (ऋग० ६।११२) । सच्चा ज्ञान ब्रह्मचारी को प्राप्त होता है (अथर्व० ११।५।५४ ।

हम सब परस्पर सज्जनता का व्यवहार करें (यजु० ३३।८६) धृत सी लाभदायक और शहद सी मीठी वाणी बोलो (अथर्व २०।६५। २)। सब प्राणियों को मित्रता की दृष्टि से दे ना चाहिए (यजु० ३६। १८) मनुष्यों में कोई ऊंच नीच नहीं, सब भाई-भाई हैं (ऋग० ५।६०। ५) एक ही परम पिता के पुत्र हम सब भाई-भाई हैं (ऋग० ११३७।७)

मनुष्य जीवन श्रेष्ठ और बड़ा बनने के लिए है (ऋग० १।२।५) उन्नति उसी की होती है जो प्रयत्नशील है (अथर्व १३।३।२६) । धर्मात्मा में दस हजार मनुष्यों के बराबर बल होता है (अथर्व १९।५१।१) जिन्दगी हँसते खेलते जीने के लिए है (अथर्व० १२।२।२२) । जो गुणवान हैं, उनकी प्रशंसा होती है (ऋग० १०।६।७) । जो अनुशासन पालता है वही शासन करता है (ऋग० १।५४।१) । तेजस्वी दूसरों का मुँह नहीं ताकते (यजु० ३०) । ऐश्वर्य उत्साही के पैर चूमता है। (अथर्व० ७।७३।१०) । पराधीनता के बन्धन में मत बँधो (अथर्व० ७ ११७।१) ऊँचे उठो, नीचे मत गिरो (अथर्व० ८।१।४) ।

दिव्य मन को लड़ाई झगड़ों में न फसाओ (अथर्व० ७।५२।२)। फूट मत फैलाओ (अथर्व० २।३०।५) किसी से भी हमारी शत्रुता न हो (अथर्व० १२ १।१८) संसार में किसी से द्वेष मत करो (यजु० २१।३)। एक दूसरे से प्यार करो (अथर्व० ३।३०।१)। साथ साथ बढ़ो, मिलकर बोलो, हृदय में एकता रक्खो (ऋग० १०।१९१।२)। एक प्रकार के विचार रखो, एक समिति में सङ्गठित रहो (ऋग० १०। १९१।२)। एक ही यज्ञ में सब हवन किया करो (ऋग० १०।१९१। २)। सब परस्पर मिलकर खान-पानक्रिया करो (अथर्व० १।३०।३)। सङ्गठन करो, उसी से तुम्हारी रक्षा होगी (अथर्व० १९।५८।४)। परस्पर मित्रों की तरह रहो (अथर्व० ६।४२।१)।

क्या उचित है क्या अनुचित, यह निरन्तर विचारते रहो (यजु० १।१०५।५)। धर्म की मर्यादाओं का पालन करो (यजु० १।५)। जो श्रेष्ठ है, उसी को ग्रहण करो (यजु० ३०)। पवित्र कर्म करो और शुभ कर्म करो (यजु० २।२३। बुजुर्गों से शिष्टाचार बरतो (अथर्व० १२। २।३४)। आदरणीय सज्जनों का सम्मान करो [ऋग० ३।३०।५७]। अपनी देह से किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचाओ [यजु० ३०)। सत्कर्म ही किया करो (यजु० ३०]। दुष्कर्मों से दूर रहो [यजु० ३०] मित्र वह है जो मित्र की भलाई करे (अथर्व० ७।५६।२)। विद्या से मनुष्य पवित्र बनते हैं (ऋग० १।३।१०।१२)। सूर्योदय तक भी जो नहीं जागते, उनका तेज नष्ट हो जाता है (अथर्व० ७।५६।२) गायें सताई न जायें (अथर्व० २०।१७२।१३)। देवता और मनुष्य दोनों गौ के आश्रित जीते हैं (अथर्व १०।११।६४)

संयमी मनुष्य स्वर्ग को भी जीत लेते हैं ऋग० १।६८।१०)। तुम्हें प्राणियों की सेवा के लिये पैदा किया है, दुःख देने के लिये नहीं (यजु० १।११)। अन्दर के सब दुर्भावों को निकाल कर बाहर करो (अथर्व० ३।७।७)। मानसिक पापों का परित्याग करो (अथर्व० २०।

६६ । २४) । किसी का दिल न दुखाओ (अथर्व० १२ । १ । ३५) । ईर्षालु का अन्तःकरण मृतप्राय हो जाता है (अथर्व० ६।१८।६२) । ईमानदारी से कमाया हुआ धन ही ठहरता है (अथर्व० ७।११५।४) । दान देने के लिए धन कमाओ (अथर्व० ३।२०।५) । किसी के ऋणी मत रहो (अथर्व० ६।११७।१) । पाप की कमाई छोड़ दो (अथर्व० ७।११५।१) । नाप तौल में गड़बड़ी न करो (अथर्व० १२।२।३८) । जो अकेला खाता है, वह पाप खाता है (ऋग० १९ । ११७ । ६) । चोरी का धन मत खाओ (अथर्व० १४।१।५७) । ऐश्वर्य पाकर इतराओ मत (अथर्व० १४।२।३६) । धन किसी व्यक्ति का नहीं, सम्पूर्ण राष्ट्र का है (यजु० ४०।१) कञ्जूसों को दान करने की प्रेरणा करो (अथर्व० ३।२०।८) सत्पात्रों को ही दान करो (अथर्व० १२।३।४३) ।

माता-पिता के आज्ञाकारी तथा प्रिय बनो (अथर्व ३।३०।२) । पत्नी पति के प्यार की सामाग्री है (अथर्व० १४।१।४३) । पति-पत्नी अविछिन्न प्रेम सूत्र में बँधे रहें (अथर्व० १४।१।२२) । अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य नारी का स्मरण न करो (अथर्व० ७।३२।४) । जो बहुत पत्नी रखते हैं, वह दुःख पाते हैं (ऋग० १।१०५।८) । सुयोग्य सन्तान ही पैदा करो (अथर्व०३।२३।२) ।

वह अन्न खाओ जो पाप की कमाई का न हो (ऋग०१२।११८)। चटोरे लोग वे मौत मरते हैं (ऋग० १।८६।१०) । सर्वभक्षी लोग रोगों की अग्नि में जलते हैं (ऋग० ११३७।२।१४) । जैसा अन्न खाते हैं, वैसा मन बनता है (ऋग० १।८११४) । सौ वर्ष तक उन्नतिशील जिओ (अथर्व० ३।११।४) । शरीर को शुद्ध बनाओ (अथर्व ११।२।२) ।

अनीति के आगे सिर न झुकाओ (अथर्व० २०।१२७।१४) । दुष्टों को आगे मत बढ़ने दो (ऋग० १।१०५।६) । दुष्टों की सेवा सहायता मत करो । (यजु० १।२३) ।

जो यज्ञ को त्यागता है, उसे परमात्मा त्याग देता है (यजु०)। प्रत्येक शुभ कार्य यज्ञ के साथ आरम्भ करो (ऋग० १०।१०१।२)।

आशा और विश्वास की स्वर लहरी :

इस देवताओं के प्यारे लोक में पराजय नहीं होती, यहाँ तो विजय ही विजय के दर्शन होते हैं (अथर्व ७।३७।१७)। मेरे दक्षिण हाथ में कृत (पुरुषार्थ) है और वाम हस्त में विजय है। (अथर्व ७।५०।८)। मुझमें इतना बल है कि अकेला दस हजार के बराबर हूँ। मेरी आत्मा भी दस हजार के समान है। (अथर्व (१६।५१।१)। निःसन्देह रूप से हम विजयी होंगे, हमारा उत्थान होगा। (अथर्व १०।५।३६)। हे प्राण ! तुझे किसी से भी नहीं डरना चाहिए (अथर्व २।१५।१)। मेरी आत्मा मेरे लोहे के कवच के समान कार्य करती है। (अ०२।१५।१)। मैं इन्द्र हूँ। इसलिये मेरे धन को कोई ले नहीं सकता (अ० १०।४८।५) मेरे अन्दर साहस है। पृथ्वी पर मेरी श्रेष्ठता की बहुत ख्याति है (अ० ११।१।५४)। सूर्य की तरह तुम महान हो। सचमुच तुम्हारी महिमा भी महान है (अ० १३।१।२६)। तू ऊँचा उठने वाला है,अपने तेजसे आकाश पर चढ़ जा (अ० १६।६५।१) तेरी आत्मा महान् है (यजु० १७।७२)। अपनी ज्योति से आकाश में चमक पैदा कर दें। अपनी सामर्थ्य से स्वर्ग को ऊँचा स्थिर करो (अथर्व) तू तलवार की तलवार और वज्र का वज्र है (अथर्व २।११।१) तुम्हारी ज्योति सूर्य के सदृश है (ऋग्वेद ७।८३।८) तुम्हारे अन्दर इतना बल है कि पृथ्वी और आकाश भी मिलकर तुम्हें पराजित नहीं कर सकते (ऋ० २।१६।३)। तू महान है, तेरा मुकाबला करने वाला कोई नहीं है (ऋ० ८।६४।२)। मैं पृथ्वी से अन्तरिक्ष तक पहुँच गया हूँ, (यजु० १७।३।७) मैं अन्तरिक्ष से द्युलोक तक पहुँच गया हूँ (यजु०) मैं अग्नि की तरह चमकने वाला हूँ। जन्म से ही जागरुक रहने का मेरा स्वभाव है (यजु० ११६६)। मेरे चक्षु पुञ्ज के समान हैं और मेरे मुख में अमृत है (यजु०) हमने अमृता प्राप्त करली

है। हमें ज्ञान रूपी प्रकाश मिल गया है। (ऋ० ८।४८।३)। मैंने अपनी शक्ति से द्युलोक पर विजय पाली है (ऋ० १०।११४।८)।

उन्नतिशील जीवन :

उद्दानं ते पुरुष नावयानम्। (अथर्व ८।१।६)

उन्नति करो—अवनति मत होने दो।

उत्क्रामानः पुरुष मावयत्था। (अथर्व ८।१।४)

ऊँचे उठो, नीचे मत गिरो।

शतं जीव शरदो वर्धमानः। (अथर्व ६।११।४)

सौ वर्ष तक उन्नतिशील जीवन जीओ।

वर्च आधेहि क्त तन्वां सह ओजो वयोबलम्।

(अथर्व० १९।३७।२)

शरीर में तेज, साहस, ओज, आयुष्य और वय की वृद्धि करो।

इन्द्र वर्धन्तो अप्तुरः। (ऋग्वेद ९।६३।५)

जीवन में स्फूर्ति, उत्साह और साहस बढ़ता रहे।

असमं क्षत्रं असमं मनीषा। (यजु० ३०)

अतुलित शौर्य और असीम बुद्धि धारण करो।

माग तिष्ठः पराङ्मनाः। (अथर्व. ७।१।९)

शिथिलता और अनुत्साह ठीक नहीं।

आप्नुहि श्रेयांसमति रूपं क्राम। (अथर्व)

बराबर वालों से आगे बढ़ो, श्रेष्ठों तक पहुँचो।

आञ्चो अगाम। (ऋग्वेद १०।१८।३)

आओ और आगे बढ़ें।

उग्राय तवसे सुवृक्ति प्रेरय। (यजु० ३०)

शक्तिशाली बनना हो तो वक्ता और कर्मवीर बनो।

दृक्षसे संजग्मानो अविभ्युषा (ऋ० १।२।७)

उनके साथ रहो जो निडर और वीर हों।

तमो व्यस्य (अथर्व० १२।३।१२)

अन्धेरे में मत पड़े रहो।

प्रेता जयता नर (ऋ० १६।५०३।१३)

वीरों को चाहिए कि वह आगे बढ़ें और विजयी हों।

उच्च निष्ठ महते सौभागाय (अथर्व २।६।२)

सौभाग्य वृद्धि के लिए ऊँचे चढ़ो।

त्वमेकवृषो भवं (अथर्व ६।८६।१)

तुम सबसे श्रेष्ठ बनो।

आरोह तपसो ज्योतिः (अथर्व ८।१।८)

अन्धकार से प्रकाश की ओर चलो।

तमो मोपगाः (अथर्व ८।५।१)

निराश मत हो।

ज्योतिः शूर पुरस्कृधि (अथर्व ८।५।१७)

हे वीर ! प्रकाश तेरा आदर्श हो।

इतो जयेतो विजय संजय जय (अथर्व ८।८।६४)

यहाँ वहाँ सब जगह तू विजय प्राप्तकर।

सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहि (अथर्व १३।१।२०)

शत्रुओं का संहार करते हुए आगे बढ़ो।

दिव च रोह पृथवीं च रोह (अथर्व १३।१।३४)

पृथ्वी और आकाश में सबसे श्रेष्ठ बनो।

राष्ट्र च रोह द्रविणं च रोह।

राष्ट्रीयता और ऐश्वर्य में सबसे आगे बढ़ो।

शयो हन इव (अथर्व २०।१३१।१६)

तुम मुर्दे की तरह क्यों हो रहे हो, उठो, जागो।

पापों से दूर रहने की आकांक्षा :

अपेहि मनसस्पनेऽपक्राम परश्चर (अथर्व २०।६६।२४)

मानसिक पापों का परित्याग करो ।

व्यहं सर्वेण पाप्मना । (अथर्व ३।३१।१)

सब प्रकार के पाप कर्मों से मैं दूर रहूँ ।

विश्वा ह्यग्ने दुरिता नर त्वम् (अथर्व २।६।५)

सब पापों से हम अलग रहें ।

परेहि न त्वा कामये । (अथर्व ६।४५।१)

मुझे मानसिक पाप की कामना नहीं है, वह मुझसे अलग हो ।

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शङ्कसि ।

यह बुरी प्रेरणा देने वाला मानसिक पाप मुझसे पृथक हो ।

स्रव मा पाप्मन् स्रज । (अथर्व ६।१६।१)

पाप से मैं मुक्त हो जाऊँ ।

अप न शोशुचरधम् । (अथर्व ४।३३।१)

मेरा पाप नष्ट हो जाये ।

अपतस्य हतं तमो व्यावृत्तः स पाप्मना । (यजु० ३२)

जिसका अज्ञान दूर होगा, वही पाप से छूटेगा ।

विश्वे शम्भन्तु मैनसः (अथर्व ६।११५।३)

हे देव ! मुझे पाप से मुक्त करो, मेरे मन को पवित्र करो ।

मा नो विद्दू वृजिना द्वेष्या या । (अथर्व १।२०।१)

यह द्वेष करने योग्य पाप मेरे निकट न आवे ।

उत्तागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ।

(ऋग्वेद १० । १३७ । १)

हे देवो ! यदि किसी व्यक्ति ने अपराध कर लिया तो क्या हुआ उसे सुमार्ग पर लाने के लिए उसमें नया जीवन भरो ।

प्रचेता न आङ्गिरसो दुरितात् पात्वहंसः ।

(अथर्व० ६ । ४५ । ३)

परमात्मा हमें पापों से दूर रखे ।

न यत् पुरा चक्रमा क्रुद्ध नूनम् (अथर्व १८।१।४)

हम उस बुरे काम को अब कैसे करें जो हमने पहले कभी नहीं किये ।

जीवन जीने की कला :

आश्चा अगाम नृतये हसाय । (अथर्व १२।२।२२)

जिन्दगी हँसने खेलने जीने के लिए है।

अनुहूनः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः (अथर्व ५।३०।६)

तुम अवनति की ओर क्यों जाते हो, मैं तुम्हें इधर बुलाता हूँ। जीवन जीने की कला को जानो ।

धातरायूँषि कल्पयैषाम् । (ऋग्वेद १०।१८।५)

अपने मनुष्य जीवन को सफल बनाओ ।

उतिष्ठत प्रतरता सखायः । (यजु० ३५।१०)

इस संसार रूपी नदी से तरने का यत्न करो ।

उद्दानं ते पुरुष नावयानं । (अथर्व ८।१।६)

हे पुरुष ! तुझे अपने जीवन को गिराना नहीं है, ऊँचा उठाना है ।

तस्मिन् मां धेहि पवमानामृतंते लोके अक्षित ।

(ऋग्वेद ९ । ११३ । ७)

हे प्रभु ! हम उस अमृत लोक में जरारहित अवस्था में जायें ।

यो जागार तमृचः कामयन्ते । (ऋग्वेद २।४४।१४)

जो देवता सदा जागते हैं, ऋचायें उनको चाहती हैं ।

मातृ देवो भव । पितृ देवो भव । आचार्य देवो भव ।

(तैत्तरीय १ । १०)

माता-पिता और आचार्य को देव मानो ।

अनुव्रतः पितु पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।

(अथर्व० ३ । ३० । २)

माता-पिता के आज्ञाकारी तथा प्रिय बनो।

मा भ्राता भ्रातरं द्विजन्मा स्वसार मुनास्वसा।

(अथर्व० ३ । २० । ३)

भाई बहिन आपस में द्वेष न करें।

वैदिक साम्यवाद :

संगच्छध्वं संवो मनांसि जानताम्।

(ऋग्वेद १० । १९१ । २)

साथ-साथ बढ़ो, मिलकर बोलो, हृदयों में एकता रखो।

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः (अथर्व ३।३०।६)

मैं तुम्हें समान मन वाले बनाकर एक से कार्य में प्रवृत्त करता हूँ।

सायं प्रातः सोमनसो वो अस्तु।

प्रातः सायं हर समय तुम्हारा मन एक हो।

सं जानीध्वं सं प्रच्यध्वं सां वो मनांसि जानताम्।

(अथर्व० ६ । ६४ । १)

हे समान मन वालो ! तुम्हारे ज्ञान भी समान हों। फिर एक कार्य में जुट जाओ।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं व्रतं चित्तमेषाम्।

(अथर्व० ६ । १४ । २)

इन पुरुषों का कार्य अकाय सम्बन्धी ज्ञान समान हो।

समानं चेतो अभिसंविशध्वम्।

तुम एकचित्तता को प्राप्त करने वाले होओ।

समानी वा आकूतिः समाना हृदयानि वः।

(अथर्व ६।६४।३)

है समानता चाहने वालो ! तुम्हारा अन्तःकरण और संकल्प एक से ही हों।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासनि ।

तुम्हारा मन एक रूप हो जिससे तुम्हारा सब कार्य सुन्दर रीति से सम्पन्न हो । उसके लिये मैं यह समानात्मक कर्म कर रहा हूँ ।

सहभक्षाः स्याम (अथर्व ६।४७।१)

हम सबके साथ भोजन करने वाले हों ।

न वै त्वा द्विष्य (अथर्व ६।४२।३)

तुम मेरे अनुकूल हो जाओ, एक मन हो जाओ ।

यहाँ वेदों की थोड़ी-सी शिक्षाओं का संग्रह दिया गया है । वैसे वेद का प्रत्येक मन्त्र एक महत्वपूर्ण शिक्षा और प्रेरणा लिये हुए है । हर मन्त्र में जीवन-उत्थान की शक्ति है, महानता के पथ पर अग्रसर करने की क्षमता है । वेदों का अध्ययन करने वाला राष्ट्र का श्रेष्ठ नागरिक बनता है, यह निश्चित है । अतः हमें वेदाध्ययन और प्रचार की ओर प्रवृत्त होना चाहिये ।

मन्त्र शक्ति के विभिन्न रूप

मन्त्रों में अद्‌भुत शक्ति और सामर्थ्य होती है। मन्त्र विद्या का आविष्कार सर्वप्रथम भारत में ही हुआ। इन पर हिन्दुओं की अटूट श्रद्धा और विश्वास है क्योंकि इनको मङ्गल करने वाले कहा जाता है। यही कारण है कि ऋषियों ने हिन्दू धर्म के प्रत्येक कर्मकाण्ड में इनका उपयोग अनिवार्य माना है। आज कल तो इसकी लकीर सी पीटी जा रही है परन्तु प्राचीन काल में इनके विशेषज्ञ होते थे जो इनका अभ्यास करके बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त करते थे, जो साधारण मनुष्यों को चमत्कार दिखाई देती थीं। इस गये गुजरे समय में भी लोग झाड़ फूंक करते हैं और प्रायः उनमें सफल देखे जाते हैं।

वैदिक धर्म में ही नहीं, भारत के अन्य धर्मों ने भी इनकी महत्ता को स्वीकार किया है। जैन धर्म में मन्त्रों के द्वारा अभिषेक किया जाता है। बुद्ध धर्म में मन्त्रों के द्वारा तारा की पूजा होती है। इसी प्रकार से मुसलमान लोगों के अनुसार नमाज में भी मन्त्र होते हैं और वह कुरान की भाषा के स्वरों को महत्वपूर्ण मानते हैं। गिरजाघरों में भी मन्त्रों की ध्वनि सुनाई देती है। ईसाई धर्म के मन्त्र विशेषज्ञ रोगी के पास बैठकर रोगोपचार करते हैं। उनके उपचार का माध्यम कुछ मन्त्र पाठ सा होता है। प्रायः वह इसमें सफल ही होते हैं। मन्त्रों का उपयोग कुछ अंशों में सभी धर्मों में होता है परन्तु उसका आरम्भ भारत से ही हुआ था क्योंकि वेद संसार की सबसे प्राचीनतम

पुस्तक मानी जाती है और इनमें मन्त्रों का संग्रह है। योग दर्शन (४।१) में मन्त्र, तप और समाधि से सिद्धि बताई गई है। महाभाष्य के स्पर्शान्हिक में कहा गया है कि वेद मन्त्रों के नियमित जप से फल प्रदायिनी शक्ति सिद्ध होती है। बीज मन्त्रों का कुछ विशेष अर्थ नहीं होता वरन् उनमें शक्ति होती है। इसे अमेरिकन वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है।

भारतीय मन्त्र विद्या विशेषज्ञों के अनुसार वेद मन्त्रों में चार प्रकार की शक्तियाँ होती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—१. प्रामाण्य शक्ति, २. फलिनी शक्ति, ३. बहुली शक्ति, ४. अन्तर्ग्राही शक्ति।

प्रामाण्य शक्ति के अनुसार मन्त्र के अक्षर मानव जीवन को श्रेष्ठ बनाने, पापों से दूर करने, सद्‌गुणों को ग्रहण करने, सदाचार, संयम, त्याग, परमार्थ, सन्तोष, सेवा, सत्य आदि की शिक्षा देते हैं। यह शिक्षायें मनुष्य के लिए एक प्रकाशस्तम्भ का काम देती हैं। उनसे साधक को वह मार्ग मिलता है जिस पर चलना सफल हो जाये तो वह एक असाधारण और महान गुण सम्पन्न व्यक्ति लगने लगता है। वेद मन्त्रों की उत्तम शिक्षायें हमारा मार्ग दर्शन करती हुई हमें सफलता और समृद्धि दिलाती हैं।

फलिनी शक्ति के आधार पर कुशा, हवि, चरु, कुण्ड, समिधा, पात्र को अभिमन्त्रित करके उनको सूक्ष्म प्राणवान करने का विधान, मन्त्रोपचार एवं विविध क्रिया पद्धतियों द्वारा अनेकों आयोजनों का विधि विधान मन्त्र की फल दायिनी शक्ति से सम्बन्धित है। यज्ञों में यह क्रिया प्रधान रहती है। सन्तान लाभ, विजय प्राप्ति, रोग व विष का निवारण और अनेकों सकाम योजनायें इसी शक्ति के द्वारा सफल होती हैं।

मन्त्रों की 'बहुली शक्ति' के आधार पर थोड़ी और छोटी वस्तुओं को अन्यत्र विशद और व्यापक बनाकर भारी लाभ उठाया

जाता है । हवन यज्ञों में थोड़ी सी सामग्री द्वारा आहुतियां दी जाती हैं परन्तु स्थूल से सूक्ष्म बनने पर उनकी शक्ति बढ़ जाती है । वह आकाश में जाकर मूल द्रव्य की अपेक्षा अनेकों गुना अधिक परिमाण में विस्तृत हो जाते हैं । जिस प्रकार से छोटे से परमाणु का विधि विधान से विस्फोट करने पर प्रचण्ड विद्युत शक्ति का उद्‌भव होता है, उसी प्रकार से विधि विधान से दी गई थोड़ी सी वस्तु की आहुति भी सूक्ष्म जगत में बहुत बड़ी बन जाती हैं । एक छटांक घी खाने से एक व्यक्ति विशेष को ही लाभ होता है परन्तु उसे हवन कुण्ड में छोड़ने से सैकड़ों और हजारों मनुष्यों को लाभ पहुँचता है ।

अंतर्ग्राही शक्ति वह है जो किसी विशेष व्यक्ति द्वारा, विशेष स्थान पर, विशेष उपकरणों से उत्पन्न होती है । गायत्री मन्त्र का कठोरतम तप करने के कारण विश्वामित्र उसके मन्त्रदृष्टा बने । वशिष्ठ जैसे विद्वान गुरु के होते हुये भी शृंङ्गी ऋषि को ही राजा दशरथ द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ के लिए बुलाया गया । सिद्ध पीठ, शक्ति पीठ, और तीर्थों की महत्ता का कारण भी यही है कि उस भूमि पर किसी विशेष मन्त्र का अनुष्ठान हुआ होता है और वह भूमि उससे प्रभावित हो चुकी होती है । वहाँ पर वह साधना करने से शीघ्र फल मिलता है ।

उपरोक्त शक्तियां किसी देवी देवता की कृपा से प्राप्त नहीं होतीं वरन् उनके द्वारा जो वैज्ञानिक प्रक्रिया अपने आप मन्त्रवत् होती है, उससे लाभ होता है । मन्त्रों में शिक्षायें भी होती हैं परन्तु उनसे भी महत्वपूर्ण उनमें भरी शक्तियाँ हैं, क्योंकि वेदों के प्रत्येक मन्त्र का गठन कुछ इस ढंग से किया गया है कि उनका प्रभाव हमारी मानसिक व आत्मिक शक्तियों और सूक्ष्म जगत पर पड़ता है । हमारे सूक्ष्म शरीर में जो विभिन्न शक्तियों के केन्द्र हैं, उन यौगिक ग्रन्थियों को वह शब्द गुदगुदाते हैं, उनकी सोई हुई शक्तियों को जगाते हैं उनमें स्फूर्ति आने से वह क्रियाशील हो जाते हैं । जिस प्रयोजन के लिए जो मंत्र होते हैं, वह उसी प्रकार की ग्रन्थियों को जगाते हैं, उन्हीं पर शब्द

आघात करते हैं। शब्द-विज्ञान एक स्वतन्त्र विज्ञान है, इसमें महान् शक्ति है। इसी लिए इसे ब्रह्म भी कहा जाता है। इसका कभी नाश नहीं होता। वैज्ञानिकों ने भी सिद्ध कर दिया है कि हमारे द्वारा उच्चारित शब्द आकाश में घूमते रहते हैं और अपनी जाति के शब्दों के साथ मिलकर सुसङ्गठित शक्ति द्वारा अन्य व्यक्तियों को प्रभावित करते रहते हैं। फ्राँस की प्रसिद्ध वैज्ञानिक महिला मैडम फिनोलिङ्ग ने सिद्ध किया है कि शब्द के साथ मन और हृदय का सम्बन्ध है।

मन्त्रों की महान शक्तियों के चमत्कार प्रायः देखे और सुने जाते हैं। हमें भी एक सिद्ध महात्मा के दर्शन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। उनका कहना था कि वेद मन्त्रों में इतनी शक्ति है कि वह एटम बम की संहार शक्ति की रोक थाम कर सकें। उन्होंने बताया कि जिस समय अमेरिका ने बैकेनी का एटम बम का परीक्षण किया था, उस समय उन्होंने कुछ कुमारी कन्याओं द्वारा मन्त्र अनुष्ठान भी करवाया था। सम्भव है उसके परिणाम स्वरूप ही वह परीक्षण असफल रहा हो। बरेली के एक ७५ वर्षीय वेदों के विद्वान ने जो एक रियासत में उच्च अधिकारी रह चुके थे, हमें बताया है कि लगभग २५ वर्ष पहले की बात है, समाचार पत्रों में एक समाचार छपा था कि इङ्गलैंड में एक भारतीय पण्डित ने एक कैंसर के रोगी की असहय पीड़ा का निवारण मंत्र शक्ति से किया था। इस प्रयोग की उन दिनों खूब चर्चा हुई थी।

वेद मन्त्रों का विधिवत् उच्चारण करने वाले जानते हैं कि उनके पाठ में किस प्रकार की प्रसन्नता, उल्लास, स्फूर्ति, आनन्द, मस्ती का प्रस्फुरण होता है। भिन्न भिन्न मन्त्रों से भिन्न प्रयोजन सिद्ध होते हैं। वेदों में ऐसे सूक्त आते हैं जिनके अनुष्ठान करने से अदभुत कार्य होते हैं, यदि उन्हें पूरे विधि विज्ञान से किया जाय तो। श्री सूक्त से लक्ष्मी की प्राप्ति, सरस्वती सूक्त से बुद्धि की वृद्धि, सूर्य सूक्त से आरोग्य

लाभ, दुर्गा सूक्त से विपत्ति निवारण, नवग्रह सूक्त से पाप वृत्ति की निवृत्ति, गणपति सूक्त से ऋद्धि सिद्धि सफलता, यज्ञ सूक्त से परमार्थ त्याग सेवा की भावनाओं का जाग्रत होना, अन्त: शान्ति सूक्त से शांति सन्तोष और प्रसन्नता की उपलब्धि, इन्द्र सूक्त से उत्तम वर्षा, आयुष्य सूक्त से दीर्घ जीवन, आयु वृद्धि, विजय सूक्त से पराजय के स्थान पर विजय का उद्भव, अश्विन सूक्त से रोगों की निवृत्ति, गर्भ सूक्त से गर्भ रक्षा व उसका समुचित विकास, सोम सूक्त से चन्द्रमा जैसी शान्ति, अग्नि सूक्त से अशान्ति, जड़ता, मंदता, अकर्मण्यता की प्रवृत्ति का निवारण, सविता सूक्त से ज्ञान, मेधा की प्राप्ति आदि के लाभ होते है।

मन्त्रों से लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार के लाभ होने के कारण ही हमारे पूर्वजों ने वेदों का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना सुनाना, प्रत्येक हिन्दू का अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य निर्धारित किया था। इसे वह इतना आवश्यक समझते थे कि बालक के कुछ समझदार होते ही उसे वेदारम्भ कराया जाता था। इसकी महत्ता को बालक के कोमल मस्तिष्क पर स्थापित करने के लिए इसे एक अलग संस्कार का रूप ही दे दिया था ताकि वेद को वह अपने जीवन का एक आवश्यक अङ्ग माने, क्योंकि बालकपन के संस्कार जीवन पर्यन्त स्थिर रहते हैं। परन्तु आज खेद से कहना पड़ता है कि पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में आकर हमने उनकी उपेक्षा की और इन्हें भुला दिया। वास्तविक दृष्टि से देखा जाये तो हमें लोक और परलोक की सिद्धि के लिए वेद की ओर लौटना होगा। उनका घर घर प्रचार करना होगा। इस गुप्त विद्या की खोज करनी होंगी। विद्या के समुचित प्रसार प्रचार के लिये अनुसन्धानशालायें खोलनी होंगी, वैदिक चिकित्सालय खोलने होंगे और इनका प्रचार करना होगा। इस योजना पर विचार करना और उसे कार्यान्वित करने का प्रयत्न करना प्रत्येक हिन्दू का धर्म है।

इतिहास साक्षी है कि जब घर घर वेद मन्त्रों की गूँज होती थी, हवन और यज्ञ होते थे तो यहाँ सुख शान्ति का साम्राज्य था। भारतवर्ष का प्रत्येक नागरिक देवता नाम से सम्बोधित किया जाता था। तेंतीस कोटि देवताओं का अर्थ यहां के निवासियों से ही सम्बन्ध रखता है। यदि उस युग को फिर वापिस लाना चाहते हैं तो उन प्राचीन मान्यताओं के प्रति निष्ठा को दृढ़ करना होगा, उनका घर-घर प्रचार करना होगा।

मन्त्र शक्ति का वैज्ञानिक आधार

मन्त्रों का अद्भुत गठन :

मन्त्रों के निर्माण का भी एक स्वतन्त्र विज्ञान है। मन्त्र अर्थपूर्ण तो होते ही हैं और वह उत्तम शिक्षाओं के साथ ही मानवोपयोगी सिद्धान्तों से ओत-प्रोत भी रहते हैं, परन्तु उनसे भी महत्वपूर्ण उनमें भरी शक्तियाँ हैं, क्योंकि वेदों के प्रत्येक मन्त्र का गठन कुछ ऐसे चमत्कारी ढङ्ग से किया गया है कि उनका सीधा प्रभाव हमारी सूक्ष्म ग्रन्थियों, षट्चक्रों और शक्ति-केन्द्रों पर पड़ता है जिससे सूक्ष्म जगत् के शक्ति-केन्द्र जाग्रत होते हैं। मन्त्रों के विधिपूर्वक गठन से वह शब्द उनसे सम्बन्धित यौगिक ग्रन्थियों को गुदगुदाते हैं। उनकी सोई हुई शक्तियों को जगाते हैं। उन ग्रन्थियों में स्फूर्ति आने से वह क्रियाशील हो जाती हैं। जिस प्रयोजन के लिए जो मन्त्र होते हैं, वह उसी प्रकार की ग्रन्थियों को जगाते हैं, उन्हीं पर वह शब्द आघात करते हैं। इन ग्रन्थियों की क्रियाशीलता से ही साधक को विभिन्न प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, जो दूसरों को चमत्कार दिखाई देती हैं। परन्तु वास्तव में वह शब्दों की वैज्ञानिक प्रक्रिया का परिणाम है। विदेशी विचारक 'आर्टी मे ब्लैकबर्न' ने इस तथ्य की पुष्टि करते हुए लिखा है कि 'संस्कृत भाषा के अक्षरों में भाव और अर्थ दोनों होते हैं। इन अक्षरों के युक्तिपूर्ण गठन से अनेक बार जादू का सा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।''

मन्त्र की सफलता उसके शुद्ध उच्चारण में है। तभी उनमें गुथे शब्दों का प्रभाव विभिन्न शक्ति केन्द्रों पर पड़ना सम्भव होता है। मन्त्र की सफलता में भावना का भी महत्वपूर्ण स्थान है। श्रद्धा और विश्वास इसके मेरुदण्ड हैं।

सूक्ष्म तत्व की असाधारण शक्ति :

मन्त्रों से होने वाले लाभ व सिद्धियाँ, शक्तियाँ किसी देवी-देवता की कृपा से अकस्मात ही प्राप्त नहीं हो जातीं वरन् उनके द्वारा जो वैज्ञानिक प्रक्रिया अपने आप मन्त्रवत् होती है,उससे लाभ होता है। मंत्रों का एक स्वतन्त्र विज्ञान है, जिसका आधार ठोस वैज्ञानिक तथ्य है। साधारण रूप से इसे यूँ समझा जा सकता है कि जड़ और चेतन दो प्रकार का संसार होता है। यह जगत् स्थूल और सूक्ष्म दो भागों में बँटा हुआ है। हमारे स्थूल नेत्रों से जो कुछ दिखाई देता है, वह स्थूल है। जो वस्तु स्थान चाहती है, जिसका वजन और नाप-तोल होती है, उसे विज्ञान की भाषा में स्थूल कहते हैं। जिसको हम स्थूल नेत्रों से देख नहीं सकते, जिसका नाप-तौल और वजन नहीं होता और जिसे स्थान की अपेक्षा नहीं रहती, वह सूक्ष्म कहलाता है। शरीर स्थूल है और मन सूक्ष्म है। मन में हजारों-लाखों तरह के भिन्न-भिन्न विचार भरे रहते हैं और असंख्य और भरे जाने की गुंजायश रहती है परन्तु स्थान का अभाव नहीं खटकता। स्थूल वस्तुओं की शक्तियाँ सीमित होती हैं, सूक्ष्म की असीम। स्थूल की गति का कारण ही सूक्ष्म होता है अन्यथा वह तो जड़ है। शरीर मे सूक्ष्म प्राण रहने के कारण उसमें नाना प्रकार की गतिविधियाँ होती रहती हैं। जब प्राण इससे अलग हो जाता है या शरीर उसे अपने साथ रखने के सर्वथा अयोग्य हो जाता है तो वह अपने सर्वव्यापी प्राण-तत्व में मिल जाता है और शरीर सड़ने लगता है। स्थूल से सूक्ष्म शक्तिशाली होता है। जितनी कोई वस्तु स्थूल से सूक्ष्म बनती जाती है, उतनी ही वह शक्ति का विकास करती है। जल

से अधिक जल की वाष्प में शक्ति होती है जिससे सैकड़ों मनके रेलगाड़ी के डिब्बे खींचे जाते हैं। अग्नि का सूक्ष्म रूप विद्युत है, जिससे बड़े-बड़े कारखाने और मिलें चलाई जाती हैं और अन्धकार को प्रकाश में परिवर्तित करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है।

हमारे स्थूल शरीर में कुछ भी शक्ति नहीं हैं। सूक्ष्म शक्तियों की प्रक्रिया का इसमें प्रदर्शन-मात्र होता है। हमारे सूक्ष्म शरीर में अनेकों प्रकार की शक्तियाँ विद्यमान हैं। उनको जगाकर ही हम असाधारण कार्यों के सम्पादन की क्षमता वाले हो पाते हैं। यह प्रत्यक्ष नियम है, सूक्ष्म जगत् तक सूक्ष्म की ही पहुँच सम्भव हो सकती है, स्थूल वस्तुओं का वहाँ प्रवेश निषिद्ध है। मन्त्र में शब्द होते हैं, जो सूक्ष्म होते हैं। पाँच तत्वों में आकाश-तत्व सबसे सूक्ष्म और शक्तिशाली है। अतः इससे सम्बन्धित शब्द का प्रभाव सूक्ष्म शरीर स्थित शक्ति-केन्द्रों पर पड़ता है, वह जाग्रत होते हैं और साधक को नाना प्रकार की शक्तियों से विभूषित करते हैं। यदि किसी स्थूल शक्ति को इनके जागरूक होने का माध्यम बनाया जाय तो लक्ष्य में असफलता ही होती है।

शब्दों के चमत्कारी प्रभाव :

मन्त्र का आधार शब्द इसलिए माना है कि यह अन्य तत्वों की अपेक्षा शक्तिशाली है। शास्त्रों ने इसकी शक्ति और सामर्थ्य को देखकर इसे ब्रह्म ही कह डाला। वास्तव में शब्द में अपार सामर्थ्य है। जब शब्दों का उच्चारण होता है, तो उनसे कम्पन उत्पन्न होते हैं, वह कम्पन्न विश्व यात्रा की तैयारी करते हैं और ईथर-तत्व के माध्यम से परिभ्रमण करके कुछ ही क्षणों में इस परिक्रमा को समाप्त कर लेते हैं। इस यात्रा में अनुकूल कम्पनों से मिलन होता है। अनुकूलता में एकता का सिद्धांत प्राकृतिक है। इन कम्पनों का एक पुञ्ज-सा बन जाता है और अपने केन्द्र तक लौटते-लौटते वह अपनी शक्ति को काफी बढ़ा

लेते हैं। यह कार्य इतनी तीव्रगति से हो जाता है कि साधक को इसका अनुभव भी नहीं हो पाता कि शब्दों के उच्चारण मात्र से यह चमत्कार कैसे उत्पन्न हो रहे हैं।

लोक में भी शब्द के अनेकों चमत्कार प्रत्यक्ष रूप में हम देखते हैं। बीन बजाने से सर्प को मोहित किया जाता है। शब्दों के प्रभाव से हाथी जैसे विशालकाय पशुओं को वश में किया जा सकता है, सङ्गीत से मृग तन्मय हो जाते हैं, गायों का दूध बढ़ाया जाता है। मेघ-मल्हार से वर्षा की जाती है, दीपक राग से बुझे हुये दीपक जलाये जाते हैं। थाली बजाकर सर्प, विच्छू आदि के विष उतारे जाते हैं और भूतोन्माद व कण्ठमाला जैसे रोगों का शमन किया जाता है। सैनिकों को पुल पर से पग मिलाकर चलने का निषेध रहता है क्योंकि इससे पुल के गिरने की सम्भावना होती है। आधुनिक विज्ञान ने भी सङ्गीत के प्रभाव की अनेकों प्रकार से परीक्षा की है।

ग्राहम और नील नाम के दो वैज्ञानिकों ने आस्ट्रेलिया के मेलवोर्न नगर की एक भारी भीड़ वाली सड़क पर शब्द शक्ति का वैज्ञानिक परीक्षण किया और वह सार्वजनिक प्रदर्शन में सफल रहे। परीक्षण की माध्यम थी एक निर्जीव कार जिसे अपने इशारों पर वह नचाना चाहते थे और यह सिद्ध करना चाहते थे कि शब्द शक्ति की सहायता से बिना किसी ड्राईवर के वह कार चल सकती है। हजारों की भीड़ ने आश्चर्य चकित नेत्रों से देखा कि सञ्चालक के 'स्टार्ट' कहते ही वह कार चलनी आरम्भ होगई और 'गो' के सुनते ही उसने गति पकड़ ली। लोग देख रहे थे कि क्या निर्जीव वस्तुओं में भी कान होते हैं और सुनकर वह उस कार्य का सम्पादन भी कर सकती हैं। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने यह देखा कि सामने से एक मार्ग आता देखकर जब सञ्चालक ने 'हाल्ट' का आदेश दिया तो वह वहीं तुरन्त रुक गई।

यह कोई जादू या हाथ की सफाई का काम नही था वरन इसके पीछे विज्ञान का एक सिद्धान्त काम कर रहा था। यह स्पष्ट रूप से शब्द शक्ति का एक वैज्ञानिक प्रयोग था। ग्राहम के हाथ में एक छोटा सा ट्रांजिस्टर था जिसका काम यह था कि वह आदेशकर्त्ता की ध्वनि को एक निश्चित फीक्वेन्सी पर विद्युत शक्ति के द्वारा कार में 'डैशबोर्ड' के नीचे लगे 'नियन्त्रण-कक्ष' (कन्ट्रोल यूनिट) तक पहुँचा दे। उसके आगे 'कार-रेडियो' नाम का एक दूसरा यन्त्र लगा हुआ था। इस यन्त्र से जब शब्द की विद्युत चुम्बकीय तरङ्ग टकराती तो कार के सभी पुर्जे अपने आप संचालित होने लगते थे। इन्जन तो काम कर ही रहा था, इसके साथ हार्न, बत्तियाँ वाईफर आदि यन्त्र की आज्ञा का पालन कर रहे थे। लोगों ने उसे चमत्कार की सज्ञा दी पर वास्तव में यह शब्द शक्ति का विकसित प्रयोग था जिसे आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्तों का आधार प्राप्त था।

जर्मनी में प्रथम युद्ध को बात की बात है। शब्द शक्ति के के माध्यम से सेनाओं के नाश के एक यन्त्र का आविष्कार हुआ था। इस यन्त्र के द्वारा एक सैकिड में दस लाख से अधिक ध्वनि कम्पन उत्पन्न करने पर व्यक्ति के ज्ञान तन्तु शीघ्र ही नष्ट कर दिये जाते थे और उसके प्राण शरीर से अलग हो जाते थे। इस यन्त्र के आविष्कार के अनुसार शब्द तरंगें जिन व्यक्तियों पर भी सक्रिय की जाती थीं, वे व्यक्ति तुरन्त मर जाते थे।

शब्द तरङ्गों के जिस चमत्कारिक प्रभाव का वर्णन यहाँ किया गया है, उनका सञ्चालन विद्युत शक्ति द्वारा ही होता है। यह प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि शब्द तरङ्गों को बदलने के लिये मन्त्र में कोई बाहरी शक्ति नहीं होती तो वैज्ञानिक चमत्कारों की तरह इससे विशिष्ट लाभ कैसे प्राप्त किए जा सकते हैं। इसका उत्तर विज्ञान ही देता है। एक 'रेट्रीमीटर' नाम के यंत्र का आविष्कार हो चुका है।

इसमें किसी बाहरी शक्ति की अपेक्षा नहीं रहती बल्कि ध्वनि तरङ्गों की ऊर्जा विद्युत ऊर्जा का भी काम करती है। अमेरिका के 'नेशनल एरोनोटिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन' रिसर्च सेन्टर के आविष्कारक प्रो० थामस का कहना है कि इस यन्त्र में किसी भी माध्यम के प्रकाश फोटोसेस्टिव से न भेजकर विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित कर दिया जाता है और फिर रिसीवर यन्त्र में विद्युत ऊर्जा में बहती तरङ्गों को ध्वनि में रूपान्तरित करके सुन लिया जाता है।

इङ्गलैण्ड में 'स्टोन हेब्ज' नाम का एक स्थान है, जहाँ के पत्थर एक-दूसरे के साथ इस तरह से मिले हुए हैं कि उनके पास मध्यम स्वर की ध्वनि से उनमें कम्पन्न हो जाते हैं। यदि ध्वनि-तरंगें लगातार बजती रहें तो उनके गिरने की भी सम्भावना रहती है। इसलिए उनके निकट सङ्गीत व गाने का निषेध है।

शब्द-विज्ञान का अद्भुत प्रभाव एक जर्मन वैज्ञानिक ने सिद्ध किया है। उसने ओंकार के उच्चारण से निकलने वाली ध्वनि तरङ्गों से उत्पन्न शक्ति का वर्णन करते हुए लिखा कि यदि 'ॐ' का उच्चारण विधिपूर्वक किया जाय तो उससे एक दीवार फट सकती है।

शब्द की सामर्थ्य सभी भौतिक शक्तियों से बढ़कर सूक्ष्म और विभेदन क्षमता वाली है, इस बात की निश्चित जानकारी होने के बाद ही मन्त्र-विद्या का विकास भारतीय तत्व-दर्शियों ने किया। यों हम जो कुछ भी बोलते हैं उसका प्रभाव व्यक्तिगत और समष्टिगत रूप से सौर ब्रह्माण्ड पर पड़ता है। तालाब के जल में फैंके गये एक छोटे से कम्पन की लहरें भी दूर तक जाती हैं। उसी प्रकार हमारे मुख से निकला हुआ, प्रत्येक शब्द आकाश के सूक्ष्म परमाणुओं में कम्पन उत्पन्न करता है, इस कम्पन से लोगों में अदृश्य प्रेरणायें जागृत होती हैं, हमारे मस्तिष्क में विचार न जाने कहाँ से आते हैं, हम समझ नहीं पाते पर मन्त्र-विद् जानते हैं कि मस्तिष्क में विचारों की उपज कोई

आकस्मिक घटना नहीं वरन् शक्ति की पर्तों में आदिकाल से एकत्रित सूक्ष्म कम्पन हैं जो मस्तिष्क के ज्ञान-कोषों में टकरा कर विचार के रूप में प्रकट हो उठते हैं, तथापि अपने मस्तिष्क से एक तरह के विचारों की लगातार धारा को पकडने या प्रवाहित करने की क्षमता है। एक ही धारा में मनोगति के द्वारा एकसौ विचार-धारा निरन्तर प्रवाहित करके सारे ब्रह्मांड के विचार जगत् में क्रांति-उत्पन्न की जा सकती है। उसके लिये यह आवश्यक नहीं कि उन विचारों को वाणी या सम्भाषण के द्वारा व्यक्त ही किया जाये।

शब्द की शक्ति पर विचार करते हुए हमारा ध्यान भारतीय मन्त्र-शास्त्र की तरफ आता है। हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थ मन्त्रों की महिमा से भरे पड़े हैं और आज भी करोड़ों व्यक्ति मन्त्रों के जप और प्रयोग द्वारा अपनी तरह तरह की कामनाओं को पूरा करने का उद्योग करते रहते हैं। यहाँ की साधारण जनता का तो मन्त्रों में अटल विश्वास है, पर आधुनिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति मन्त्र-शक्ति का कोई तर्क और बुद्धि-युक्त प्रमाण न मिलने से उसको मानने से इनकार करते हैं। वे कहते हैं कि यह कैसे हो सकता है कि एक व्यक्ति द्वारा कुछ शब्दों के उच्चारण करने से दूसरे व्यक्ति का सिर का दर्द मिट जाये या बिच्छू आदि का विष उतर जाय? मन्त्र द्वारा सन्तान होना, शत्रु पर विजय प्राप्त करना या लक्ष्मी की प्राप्ति आदि अनेक ऐसी बातें हैं, जिनके सम्बन्ध में लोगों में मतभेद दृष्टिगोचर होता है और प्राय: वाद-विवाद भी होने लगता है। एक मंत्र-शक्ति का पूर्णत: समर्थन करता है और दूसरा उसे कोरा वहम या कल्पना बतलाता है।

मन्त्र-शास्त्र का समर्थन करने से हमारा आशय यह नहीं कि आजकल जो ओझा, स्याने—भोपा आदि 'मन्त्र' का व्यवसाय करते हैं, वे सब वास्तव में उसके जानकार हैं और जो कुछ क्रिया वे करते हैं, वह पूर्णतया सच्ची होती हैं। जिस प्रकार आज कल सभी प्राचीन

विद्याओं का लोप होगया है, उनमें वास्तविकता के बजाय ढोंग और छल का प्रवेश अधिक हो गया है, वही दशा मन्त्र-शास्त्र की भी समझनी चाहिये। लोग न तो उसके तत्व को समझते हैं और न परिश्रम पूर्वक पूरा विधि-विधान करते हैं, उन्होंने तो इसे केवल पेट भरने का धन्धा बना लिया है। अन्यथा जिस प्रकार विदेशों के विद्वान् पुरुष विज्ञान की विभिन्न शाखाओं की खोज कर रहे हैं और वास्तविकता का पता लगाने के लिये तन, मन, धन सब कुछ अर्पण कर देते हैं, इसी प्रकार यदि हमारे यहाँ भी शब्द-विज्ञान और उसके अन्तर्गत मन्त्र-विज्ञान की खोज की जाती तो सैकड़ों ऐसे आश्चर्य जनक तथ्यों का पता लगता, जिससे हमारा व्यक्तिगत कल्याण होने के साथ ही भारतीय संस्कृति का भी मुख उज्ज्वल होता।

भारतीय-दर्शन के मत से शब्द की शक्ति सबसे अधिक है, क्योंकि वह आकाशतत्व से सम्बन्धित है जो सार्वधिक सूक्ष्म होता है और सूक्ष्म तत्व की शक्ति स्थूल-तत्व की शक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। वारूद या किसी अन्य स्फोटक पदार्थ को जब विशाल शक्ति के रूप में परिणित करना होता है, तो उसमें चिनगारी लगाकर उसे स्थूल से सूक्ष्म गैस के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है। आज हम आश्चर्य करते हैं कि प्राचीन ऋषि-मुनि किस प्रकार किसी मन्त्र या कुछ गूढ़ शब्दों का उच्चारण करके विनाश और निर्माण के बड़े-बड़े काम क्षणमात्र में कर दिखाते थे? इसका रहस्य यही था कि आज किस प्रकार वैज्ञानिकों ने पिछले सौ वर्षों में स्फोट करने वाले स्थूल पदार्थों की खोज करते-करते भयङ्कर बम और घण्टे में हजार मील दौड़ने वाले राकेट बना डाले, उसी प्रकार भारतीय ऋषि-मुनियों ने स्थूल पदार्थों के बजाय सबसे सूक्ष्म तत्त्व आकाश से उत्पन्न शब्द-शक्ति का अनुसंधान किया था और उसके प्रयोग की ऐसी ऐसी विधियाँ मालूम की थीं कि जिसके प्रभाव से विश्व ब्रह्माण्ड में भी हलचल उत्पन्न की जा

सकती थी। आज भी जो लोग इस विद्या की एकाध छोटी-मोटी विधि को भली प्रकार सीख लेते हैं, वे आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाते हैं।

ध्वनि तरंगों के वैज्ञानिक प्रयोग :

मन्त्र में ध्वनियाँ होती हैं, ध्वनियों के समूह को मन्त्र कहते हैं। वैज्ञानिकों ने ध्वनि-तरङ्गों पर परीक्षण किये हैं। उन्होंने देखा कि चिकित्सा के क्षेत्र में भी ऊँची फ्रीक्वेंसी वाली ध्वनि का प्रयोग माँस-पेशियों की पीड़ा के उपचार में बहुत उपयोगी पाया गया है। एक ऐसे उपकरण की सहायता से जिससे प्रति सैकिंड लगभग १० लाख चक्रों की रफ्तार से ध्वनि-तरङ्गें निःसृत होती हैं, डाक्टर मानव-शरीर के रुग्ण भाग में ध्वनि धारायें भेजते हैं ताकि उससे ताप उत्पन्न हो। यह ताप शक्तिप्रद और आरोग्यकारी होता है। किन्तु ध्वनि शब्द का सबसे क्रान्तिकारी प्रयोग मानसिक रोगियों की चिकित्सा में किया जाता है। 'यूटा कालेज आफ मेडीसन' के डा० पेटर लिंडस्ट्राय ने गम्भीर रोग वाले १९२ मानसिक रोगियों के मस्तिष्कों में अतिस्वन ध्वनि धारायें पहुँचायीं। इन ६० विक्षिप्त और १३२ स्नायु रोगियों में कोई भी काम नहीं कर पाता था और उन्हें असाध्य रोगी समझा जाता था। बिजली, मनोविज्ञान या औषधि की चिकित्सा-पद्धतियों से उन्हें लाभ नहीं हुआ था। किन्तु अस्तिस्वन चिकित्सा से ३१ विक्षिप्त और १०६ स्नायु रोगियों की स्थिति में इतना सुधार हुआ कि वे फिर रोजगार करने लायक होगये।

न्यूयार्क में येशीवा विश्वविद्यालय में 'अल्वर्ट आइन्स्टाइन कालेज आफ मेडीसन' में अभी हाल में ध्वनि तरङ्गों का उपयोग लम्बाई-चौड़ाई और मोटाई वाले फोटो तैयार करने की अनूठी विधि में किया गया था। इसके द्वारा डाक्टर आँख की रसौली का पता

लगाने में सफल हो गये, जबकि सामान्य उपायों में ऐसा नही हो सकता था। अमेरिका के डा० हचिसन ने विभिन्न प्रकार की सङ्गीत ध्वनियों की सहायता से अनेकों असाध्य रोगों की सफल चिकित्सा की है।

पं० दीनानाथ शर्मा शास्त्री ने लिखा है—'अभी वैज्ञानिकों ने परीक्षणों द्वारा सिद्ध किया है कि तीव्र स्वरों के भौंपू जिनकी फ्रीक्वेंसी तीन हजार से लेकर चौंतीस हजार साइकल प्रति सैकिंड हो तो उसके द्वारा उत्पादित तरङ्गों के बीच काफी की एक बड़ी केतली रखने से वह काफी उबल जाती है और यदि उनकी गति और बढ़ा दी जाय तो छोटे सिक्के हवा में तैराये जा सकते हैं।'

आधुनिक विज्ञान की सहायता से अब प्रत्येक ध्वनि का चित्र लेना सम्भव हो गया है। ध्वनि कम्पन्न के इस चित्रण को 'स्पेक्टोग्राफ' की संज्ञा दी गई है। बोलने से जब कोई ध्वनि निकलती है, तो यह 'स्पेक्टोग्राफ' उन ध्वनि कम्पनों को टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों के रूप में चित्रित करता है। न्यूयार्क के डा० लारेन्स ने इनका परीक्षण किया। वे इस परिणाम पर पहुँचे कि अलग-अलग व्यक्ति जब एक ही बात कहते हैं, तब उनकी ध्वनि कम्पनों से जो लकीरें बनती हैं, उनके प्रकार में अन्तर पाया जाता है। परन्तु एक ही व्यक्ति विभिन्न स्थितियों में (जुकाम, ज्वर, स्वस्थ, अस्वस्थ, कम या अधिक तापमान का वायुदाव आदि में) जब एक ही बात कहता है तो ध्वनि कम्पनों से बनी रेखाओं में कोई अंतर नहीं होता है। इसका अभिप्राय यह है कि ध्वनि कम्पन इतने शक्तिशाली होते हैं कि प्राकृतिक परिवर्तन से प्रभावित नहीं होते। हर परिस्थिति में रेखायें एक जैसी ही होंगी।

अमेरिका के डा० नैथेनियल ब्रान्सन ने ध्वनि कम्पन्नों द्वारा निर्मित चीमटी के प्रयोग से एक लड़के की आँख में धसे पीतल के एक बहुत बारीक कण को निकालने में सफलता प्राप्त की। यदि किसी भी

धातु की चीमटी से यह कार्य किया जाता तो लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक सम्भावना स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही थी।

कैलीफोर्निया (अमेरिका) में एक वैज्ञानिक ने ध्वनि कम्पनों का परीक्षण किया। उन्होंने एक सैकिण्ड में पाँच करोड़ से अधिक कम्पन्न वाली ध्वनि उत्पन्न की। उस ध्वनि के मार्ग में पड़ा एक रुई का टुकड़ा जल गया और वैज्ञानिकों के वस्त्र गर्म होगये। यदि वह उस मार्ग से अलग नहीं जाते और ध्वनि कम्पनों को और तेजकर दिया जाता तो उनके वस्त्रों का जलना भी निश्चित था।

ध्वनि विज्ञान का एक और उदाहरण 'ट्रांसड्यूसर' यन्त्र का लिया जा सकता है जिसकी सहायता से सूक्ष्म से सूक्ष्म आपरेशन किया जाना सम्भव हो गया है। इसे आज की कर्णातीत शक्ति का परीक्षण कहा जा सकता है।

डा० फ्रिस्टलाव ने 'अल्ट्रासोनोटेटर' नाम के यंत्र का आविष्कार किया है जिसने दो रसायनिक द्रव्यों को मिलाने में सफलता प्राप्त की है। इससे ध्वनि कम्पन्न इतनी तीव्रता से उत्पन्न होते हैं कि वर्तन में भरे जल का मंथन होने लगता हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि भविष्य में किसी भी भाग के किसी प्राकृतिक परमाणु की गणना सम्भव हो जायेगी। यदि यह सम्भव हो सकता है तो मन्त्र उच्चारण से उत्पन्न ध्वनि कम्पनों से रोग निवारण, विष उतारना, उन्माद दूर करना जैसे प्राचीन उदाहरण भो सत्य माने जाने चाहिये।

परीक्षण के बाद वैज्ञानिकों का यह निश्चित मत है कि बाह्य-कर्ण यन्त्रों से २० से लेकर २०००० कम्पन वाली ध्वनि को सुना जा सकता है। इससे अधिक ध्वनि कम्पनों को सुनना सम्भव नहीं है। परन्तु जिस तरह बादलों की गरज में परमाणुओं को कँपाने की शक्ति होती है, उसी तरह ध्वनि कम्पनों में इतनी शक्ति निहित रहती है कि जिस क्षेत्र से भी वह जाते हैं, तीव्र परिवर्तन कर सकते हैं। यह परि-

वर्तन ही शक्ति का दूसरा नाम है। मन्त्र विज्ञान में यही पद्धति काम करती है। मन्त्र उच्चारण से उत्पन्न ध्वनि को शब्द शक्ति में विद्युत की तरह परिवर्तित किया जाता है। इस पर साधक अथवा सञ्चालक की इच्छा शक्ति काम करती है जिससे अनेकों असम्भव कार्य सम्भव हो जाते हैं। जप और ध्यान, नाद (शब्द और ध्वनि कम्पन) और बिन्दु साधना का मिला जुला रूप है। इससे विश्व के बड़े से बड़े और छोटे से छोटे कण का भेदन किया जा सकता है। इसीलिये मन्त्र शक्ति का मूल्यांकन आज तक कोई नहीं कर सका है। इसका आधार वह कर्णातीत ध्वनि होती है जिसे भावनाओं की जितनी अधिक विद्युत शक्ति मिलती है, उतनी ही तीव्र गति से वह आकाशीय परमाणुओं को प्रभावित करके ध्वनि के केन्द्र तक तीव्र गति से चली आती है। उदाहरण के लिए गायत्री मन्त्र की शक्ति से साधक किस प्रकार शक्ति का आकर्षण करता है, इसका वैज्ञानिक विश्लेषण इस प्रकार है—मंत्र उच्चारण से जो ध्वनि तरगें उत्पन्न होती हैं, वह छल्ले की आकार की होती हैं। वे तीव्रगति से ऊपर उठती हैं और ईश्वर तत्व के माध्यम से अपने देवता सविता सूय तक पहुँचती हैं और जब यही ध्वनि सूर्य के अन्तराल से टकराकर वापिस आती हैं तो अपने साथ सूर्य की सूक्ष्म शक्तियों, गर्मी, प्रकाश, विद्युत को समेटे होती हैं जो साधक के सूक्ष्म शरीर में उतरती चली जाती हैं। साधक जिस तीव्र इच्छा शक्ति और भावना से जप करता है, उतना ही, सूर्य के प्रकाश अणुओं को आकर्षित करता है और मन की शक्ति का केन्द्र बनता जाता है। एकाग्रता जितनी बढ़ती है, उतनी ही आकर्षण शक्ति असम्भव कार्यों को सम्भव बनाती है।

मन्त्र विज्ञान के चमत्कारों पर ही बुद्धिवादी लोग अविश्वास करते हैं परन्तु जब चिकित्सा और औद्योगिक क्षेत्रों में ध्वनि शक्ति की सहायता से अद्भुत लाभ प्राप्त किये जा रहे हैं तो मन्त्र विज्ञान पर भी विश्वास करने के अतिरिक्त और कोई चारा रह नहीं गया है। रोग

निवारण, इस्पात की चादरों को काटना, लाण्ड्री, सिचाई के साधनों में उस शक्ति का प्रयोग, विद्युत की तरह होने लगा है। इससे कोहरा भी दूर करके यह स्वीकार करना पड़ता है कि शब्द ने प्रकृति पर विजय प्राप्त करली है। विदेशों में इस विज्ञान को और विकसित करने के लिये खोजें तीव्रगति से चल रही हैं जिससे खगोल विज्ञान में नये प्रयोग किये जाने की सम्भावना है। भौतिक उपकरणों से जब इतनी प्रगति की सम्भावना है तो सूक्ष्म उपायों से तो इससे भी अधिक लाभों की आशा करनी चाहिये क्योंकि स्थूल से सूक्ष्म की शक्ति सदैव अधिक होती है। इससे हमारा यह विश्वास भी परिपक्व होता जा रहा है कि भौतिक विज्ञान हमें नास्तिकता की ओर नहीं वरन् आस्तिकता की ओर ले जा रहा है। इससे हमारे धार्मिक विश्वास और दृढ़ बनते जा रहे हैं।

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध भूगर्भ शास्त्री डा० हर्बर्ट ह्वूर ने शब्द के सूक्ष्म कम्पनों से एक ऐसा नाजुक परीक्षण किया जो अन्य आधुनिक उपकरणों के लिए असम्भव था। काम था एक बारीक हड्डी की मैल और मिट्टी को साफ करना। यदि किसी ब्लेड से यह कार्य सम्पादन करने का प्रयत्न किया जाता तो हड्डी निश्चित रूप से टूट जाती परन्तु डा० हर्बर्ट ह्वूर ने शब्द शक्ति से यह असम्भव कार्य सम्भव कर दिखाया।

अभी तक 'एक्स-रे' को ही एक मात्र ऐसा यन्त्र माना जाता था जिसकी सहायता से शरीर के भीतरी भागों का चित्र खींच कर रोगों का निदान किया जा सके। 'एक्स-रे' की भेदन शक्ति भी आश्चर्यजनक थी परन्तु फिर भी गहरी जड़ जमाये रोगों के स्पष्ट चित्र खींचना असम्भव था! इसकी पूर्ति अब "अल्ट्रा साउण्ड" से पूरा होने लगी है। इस ध्वनि को कान से सुना जाना सम्भव नहीं है। 'अल्ट्रा-साउण्ड' की भेदन क्षमता तभी बढ़ती है तब अत्यन्त सूक्ष्म कम्पनों को

विद्युत आदेश प्राप्त होता है। सूक्ष्म क्षेत्रों में प्रविष्ट होकर वह स्पष्ट चित्र लेने की सामर्थ्य व.ली हो जाती है।

"अल्ट्रा-साउण्ड" से अनेकों वैज्ञानिक प्रयोग किये गये हैं। यूटा (अमेरिका) में एक व्यक्ति के गोली चलाने से एक छोटे बच्चे की आँख में एक छर्रा चला गया। उपलब्ध वैज्ञानिक-उपकरणों से यह पता नहीं चल सका कि वह छर्रा कहाँ स्थित है। वाशिंगटन के राजकीय चिकित्सालय में "अल्ट्रा-साउण्ड" के प्रयोग से छर्रे के टुकड़ों का स्पट फोटोग्राफ आ गया और तब वह टुकड़े सुविधा से निकाल लिये गये।

शिकागो के अस्पताल में एक स्त्री डाक्टरों के लिये समस्या वनी हुई थी कि उसे गर्भ है या पेट में गाँठ है। 'एक्स-रे' से स्पष्ट चित्र न आ सका। 'अल्ट्रा-साउण्ड' के प्रयोग से अन्तिम रूप से निश्चय किया गया कि पेट में गर्भ का विकास हो रहा है। कोलोरेगे विश्व-विद्यालय के डा० 'जोजेफ होम्स' ने 'अल्ट्रा-साउण्ड' के प्रयोग से ऊतकों के गहन अध्ययन में विकास किया है। कोशों (सेल्स) के संग्रह को 'ऊतक' कहते हैं। इससे चिकित्सा क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त होने की आशा है क्योंकि ध्वनि तरङ्गों के अति सूक्ष्म प्रसारण से शरीर के सूक्ष्म चित्र लेना भी सम्भव हो गया है।

'एक्स-रे' की खोज तो १८९५ में होगई थी परन्तु 'अल्ट्रासाउंड' की जानकारी इसके दो वर्ष बाद ही हो पाई थी। इसका सर्व प्रथम उपयोग वियना के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० कार्ल सी० डसिक ने सन् १९४२ में किया था। जापान, स्वेडन, अमेरिका और इङ्गलैंड आदि देशों में आजकल मस्तिष्क की विस्तृत जानकारी के लिए इसका उपयोग किया जा रहा है। पश्चिम जर्मनी के डा० एफर्ट और ब्लाइफील्ड ने १०००० व्यक्तियों का परीक्षण किया और 'अल्ट्रा साउण्ड' से उनके शरीर के चित्र

उतारे और निरीक्षण से अद्भुत रहस्यों की जानकारी प्राप्त की जो अन्य उपायों से दुर्लभ थी।

ध्वनि तरङ्गों की इन भौतिक उपलब्धियों के उदाहरणों और वैज्ञानिक प्रयोगों पर जब गम्भीरतापूर्वक विचार करते हैं तो मंत्र शक्ति के रहस्यों पर आस्था और विश्वास अधिक बढ़ता जाता है और यह इच्छा होती है कि जिस अदम्य साहस और परिश्रम से भौतिक विज्ञान के आचार्यों ने शब्द विज्ञान के रहस्यों को प्रकट करके नई आस्थाएँ बनाई हैं, उसी तरह मन्त्र साधना के आचार्यों का भी कर्तव्य हो जाता है कि वह इस क्षेत्र में हर प्रकार के प्रयोग करें और लुप्तप्राय विधि विधान को विकसित करने का प्रयत्न करें ताकि वैज्ञानिक युग में मन्त्र शक्ति पर डूबते हुए विश्वास को पुनः उभार सकें।

संगीत और मन्त्र विद्या का सम्बन्ध :

नारद संहिता में भगवान् विष्णु नारद से कहते हैं—

"हे नारद ! पक्षी, भौंरे पतङ्गे, हिरण आदि जीव जन्तु भी सङ्गीत से प्रेम करते हैं। सङ्गीत से विश्व का कोई स्थल रिक्त नहीं है।"

सङ्गीत मनुष्य की आत्मा है, उसे अपने जीवन में ओतप्रोत कर लें तो, आत्मोत्थान का मार्ग प्रशस्त होना सम्भव है।

योग-शास्त्रों में सङ्गीत की बड़ी चर्चा है। तत्त्ववेत्ताओं का कथन है कि अदृश्य जगत् की सूक्ष्म कार्य प्रणाली पर जिधर भी दृष्टि डालते हैं, उधर ही यह प्रतीत होता है कि एक दिव्य सङ्गीत से सभी दिशायें और विश्व भुवन झंकृत हो रहा है। यह स्वर लहरियाँ, वीणा, भ्रमर, झरना, नागरी, भेरी, वंशी आदि की तरह सुनाई देती हैं। जिस तरह सर्प नाद को सुनकर मस्त हो जाता है, उसी तरह चित्त उन स्वर लहरियों में आसक्त होकर सभी प्रकार की चपलतायें भूल जाता है। नाद से संलग्न होने पर मन ज्योतिर्मय हो जाता है और जो स्थिति

कठिन साधनाओं से भी कठिनाई से मिलती है, वह स्वर - योग के साधक को अनायास ही मिल जाती है।

सङ्गीत एक प्रकार की योग साधना है, उसमें ध्वनि, कम्पन नाभि-प्रदेश से निकलकर ब्रह्म-रन्ध्र में लाये जाते हैं। यहाँ तालु से उन्हें पकड़ कर मनोमय विद्युत का संयोग दिया जाता है, तब वह मुख द्वारा बाहर निकलता है। इस तरह नियन्त्रित स्वर पानी में भ्रमर अथवा गोलाकार चक्र के रूप में निकलता है, फिर उसका प्रयोग इच्छानुसार किसी भी प्रयोजन में हो सकता है। हर प्रयोजन के लिये अलग अलग राग खोजे गये हैं, जो मंत्रवत् काम करते हैं। तंत्र में तो एक बुराई यह होती है कि यदि उसकी प्रतिक्रिया जो एक तेज झटके की तरह होती है, सहन न हो तो प्रयोग कर्त्ता का अनिष्ट भी कर सकती है, पर इन प्रयोगों में गायत्री मंत्र के समान किसी भी अवस्था में हानि की कोई भी आशंका नहीं रहती। सङ्गीत के अभ्यास से इसीलिये कभी किसी को हानि नहीं होती है, किसी भी अवस्था में लाभ ही होता है।

सङ्गीत का केलों पर प्रभाव का परीक्षण अन्नमलाई विद्यालय के वनस्पति अनुसन्धान विभाग के अध्यक्ष टी० सी० एन० सिंह की देखरेख में किया गया। तंजोर जिले के एक गाँव में किये गये परीक्षण से यह तथ्य प्रकाश में आया है कि सङ्गीत का केले के वृक्ष पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। वह न केवल सङ्गीत का रसास्वादन ही करना है वरन् उससे खूब फलता-फूलता भी है।

केलों के एक बगीचे में जहाँ २।। महीने नादस्वरम् नामक प्रसिद्ध दक्षिण भारतीय वाद्य प्रतिदिन आधा घण्टे तक बजाया जाता था—केले के पेड़ बढ़े, साथ-साथ उनकी पैदावार भी बढ़ी। वहाँ से सौ मीटर दूर, उसी तरह की भूमि तथा वैसी ही स्थिति के अन्तर्गत उगे हुये केले के वृक्षों की पैदावार के मुकाबले में दुगुनी पैदावार हुई।

पशुओं पर भी इसके अनुभव किए गए हैं। शैले इङ्गलैण्ड की प्रसिद्ध सङ्गीतज्ञ है। वह प्लाईमौथ के चिड़िया घर में जाकर झील के किनारे अपना साज बजाना आरम्भ कर देती है। उसकी आकर्षक ध्वनि से अनेकों पशु किनारे पर आ जाते हैं और जब तक वह साज बजता रहता है, वह तन्मय होकर सुनते रहते हैं। सील मछली की सङ्गीत-प्रियता जगत् प्रसिद्ध है। उसकी इस वृत्ति से लाभ उठाकर शिकारी अपनी नाव या जहाज में बेला बजाते हैं, तो स्वर-लहरी की माधुरी से मुग्ध होकर सील अपना मुख पानी से निकालकर सङ्गीत सुनने में इतनी तन्मय हो जाती है कि उसे अपने प्राणों की सुध-बुध तक नहीं रहती और शिकारी के जाल में फँस जाती है।

पशु मनोविज्ञान के विशेषज्ञ डा० जार्ज फेरविन्सन की खोजों के परिणामस्वरूप यह पता चला है कि पियानो के बजते ही कमरे के सब चूहे अपनी संकोचशीलता तथा भय की भावना को दूर करके दिन में भी पियानो के पास आ जाते हैं और बड़े ध्यान से सङ्गीत सुनते हैं। कुत्तों पर भी सङ्गीत का प्रभाव देखा गया है। उल्लू और गरुड़ को सङ्गीत विशेष रूप से आकर्षित करता है। चिड़ियों को भी सङ्गीत बहुत प्रिय है। नार्वे के डा० हन्सन ने पता लगाया है कि मक्खी सङ्गीत के स्वर का आनन्द उठाने में सबसे तेज होती है। मच्छर तो मनुष्य की आवाज से भी प्रभावित होते हैं। अतः सिद्ध है कि शब्द प्राणी मात्र को प्रभावित और आकर्षित करते हैं, क्योंकि उनमें एक अद्भुत शक्ति होती है।

'वायस फिगर्ज' पुस्तक की लेखिका मिस वट्स ह्यूज ने शब्द-विज्ञान के चमत्कार क्रियात्मक. रूप से लन्दन के लार्ड लिटन शिल्प-सदन में दिखाये थे। वह अपने बनाये सङ्गीत यन्त्र 'इडोफोन' को विधिपूर्वक बजाती थीं, जिससे अनेकों प्रकार के रूप बन जाते थे। एक बार उसने 'डेजी' नामक सुन्दर पुष्प की आकृति बनाई और उसकी

व्याख्या भी की कि सङ्गीत यन्त्र को किस विधि से बजाने से ऐसा हुआ। इसके बाद उसने 'पैनसी' नामक फूल, अनेकों समुद्री जीव, वृक्ष, पत्थरों आदि की आकृतियाँ बनायीं। इससे यह परिणाम निकला कि ध्वनियों से विविध आकृतियाँ बनती हैं। यह शब्दों के सूक्ष्म कम्पनों का ही परिणाम है।

फ्रांस की एक महिला वैज्ञानिक ने शब्द-विज्ञान पर परीक्षण किए थे। उसने सिद्ध किया था कि शब्द के साथ मन और हृदय का सम्बन्ध रहता है। मैडम 'फिनलाङ्ग' ने अपने लिए वीणा स्वयं तैयार की और नीचे की ओर तारों के साथ एक चाक का टुकड़ा बाँध दिया। चाक को एक बोर्ड पर लगा दिया गया। वीणा बजाने से चाक हिलने लगा और बोर्ड पर कुछ अस्पष्ट रेखायें खिच गईं। उसने अनुभव किया कि जिस तरह का गाना गाया जाता है और साज बजाया जाता है, उसी तरह की आकृतियाँ बोर्ड पर बन जाती हैं। एक बार उसने रोमन कैथोलिक मत के अनुयायी को अपना कोई धार्मिक गीत गाने का निमन्त्रण दिया। उसके गाने से बोर्ड पर एक स्त्री की गोद में बालक का चित्र खिच गया। स्त्री मरियम और बालक ईसा था। गीत में प्रभु ईसा की स्तुति की गई थी। उसे इस पर भी सन्तोष न हुआ। उसने वहाँ पढ़ रहे एक भारतीय विद्यार्थी को बुलाया और संस्कृत-मन्त्रों के उच्चारण की प्रार्थना की। विद्यार्थी ने 'काल भैरवाष्टक' के स्तोत्र का गान किया। इससे एक भयङ्कर मूर्ति और कुत्ते की रेखायें अङ्कित हो गयीं। स्तोत्र में व्यक्त भावना के अनुरूप ही आकृति बन गई। इससे वह इस निर्णय पर पहुँची कि शब्दों का भावों से गहन सम्बन्ध होता है और उन पर शब्दों का विशेष प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि मन्त्रों द्वारा हृदय और मस्तिष्क विशेष रूप से प्रभावित होते हैं और उनके जप और पाठ से मानसिक और आत्मिक शक्तियों का उद्भव होता है।

अंगरेज गायिका श्रीमती वाट्स ह्यूस को एक बार राग गाते हुए सर्प की आकृति का अनुभव हुआ। उसके लिए यह आकृति एक समस्या बन गई कि वास्तव में यह कोई सर्प है या केवल कल्पना। उन्होंने इस तथ्य की परीक्षा की और उस स्थान पर रेत बिछा कर राग गाया तो फिर वैसी ही अनुभूति हुई और रेत पर सर्प की आकृति बनी हुई देखी। इस प्रयोग में स्वर को मन से बांधकर स्थूल परिणाम उपस्थित किये गये हैं। लार्ड लिटन को जब इस परीक्षण का पता चला तो उन्होंने वैज्ञानिकों के सामने इस प्रयोग को दिखाने के लिए कहा। उस महिला ने विभिन्न रागों से विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ बनाकर दिखाईं जैसे कि पत्ती, तारे, समुद्र, सर्पाकार, त्रिकोण, षट्कोण, फल फूल सहित वृक्ष आदि। इससे सभी वैज्ञामिक आश्चर्यचकित थे।

फ्रांस की श्रीमती लेंग ने विभिन्न प्रकार के राग गाकर मेरी और क्राइस्ट के चित्र बनाकर सफल प्रदर्शन किया।

मियामी विश्व विद्यालय अमेरिका के वैज्ञानिक डा० जे० डी० रिचार्डसन ने समुद्री मछलियों को पकड़ने के लिए एक विशेष सगीत ध्वनि का प्रयोग किया। वे समुद्र किनारे वंशियों की सहायता से अपना विशेष स्वर बजाते थे तो उससे आकर्षित होकर काफी संख्या में मछलियाँ आ जाती थीं।

समुद्र में शेरों नाम का एक जन्तु पाया जाता है। उसे संगीत इतनी प्रिय है कि कहीं भी उसे मधुर स्वरलहरी सुनाई दे, उसे सुनने के लिए वह वहाँ अवश्य पहुँचेगा। भले ही उसमें उसके जीवन की जोखम हो।

विदेशों में विद्युत चलित एक ऐसे यन्त्र का आविष्कार हुआ है जिसकी स्वर तरंगें सुनकर दीपक पर प्राण होमने वाले पतङ्गों की तरह उस यंत्र से टकरा कर अपना बलिदान कर देते हैं।

किंवदन्ती है कि मादा मेंढ़क जब गर्भवती होती है तो वह अत्यन्त मधुर स्वर में गाना गाती है। वह इस विश्वास पर यह स्वर लहरी छेड़ती है कि होने वाला नया मेंढ़क हर प्रकार से स्वस्थ होगा

और प्रसव बिना कष्ट के होगा। सबके बारे में तो यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता परन्तु मनुष्य के बारे में यह सत्य है कि संगीत के प्रभाव से गर्भस्थ बालक को शारीरिक, मानसिक और आत्मिक दृष्टि से स्वस्थ बनाया जा सकता है और प्रसव के कष्ट में भी कमी हो सकती है। प्रसव के बाद 'सोहर' सङ्गीत गाने की प्रथा में है। इसका उद्देश्य बुरे और दूषित संस्कारों का संशोधन करना है।

गर्भस्थ बालक पर संगीत का क्या प्रभाव पड़ता है, इसका परीक्षण लन्दन के कुछ डाक्टरों ने किया। जिन स्त्रियों को संगीत की ध्वनियाँ सुनाई गई उनमें से २८४ बच्चों पर अनुकूल प्रभाव पड़ा और वह साधारण बच्चों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ और वजनदार निकले। इसलिये उन डाक्टरों की यह राय है कि गर्भवती स्त्रियों को या तो स्वयं सङ्गीत का अभ्यास करना चाहिये या अन्य माध्यम से सुनना चाहिये।

पूर्व जर्मनी के डा० जोहोंस ने सङ्गीत की सहायता से पशुओं को रोग मुक्त करने में ख्याति प्राप्त की है। उन्होंने कुत्तों और बिल्लियों पर सफल परीक्षण करके देखा कि सङ्गीत उन्हें प्रभावित करता है और अस्वस्थ पशु स्वस्थ होने लगते हैं।

न्यूयार्क के डा० एकवर्ड पोडोलास्की जो प्रसिद्ध चिकित्सक और सङ्गीतज्ञ माने जाते थे, उनका कहना है कि सङ्गीत से रक्त सञ्चालन प्रभावित होता है और शिराओं में नव जीवन का संचार होता है। सङ्गीत का अभ्यास करने वालों की जिगर और फेंफड़े के रोगों से सुरक्षा रहती है और शरीर के विजातीय द्रव्यों और विषैले पदार्थों को बाहर निकालने की क्षमता है। यदि प्रयत्न किया जाए तो अन्य रोगों को भी लाभ पहुँचाया जा सकता है।

इस दिशा में पिट्सबर्ग (अमेरिका) के श्री राल्फ लारेन्स हीथ ने प्रशंसनीय कार्य किया है। उन्होने स्नायु रोग से पीड़ित एक

रोगिणी का सफल उपचार किया था। वे इससे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने एक संस्था का ही निर्माण कर डाला जो सङ्गीत से रोगियों की चिकित्सा करती थी। उसका नाम है:—"आर. फोर. आर." (रिकार्डिङ्ग फार रिलैक्जेशन, रिफ्लेक्शन, रेस्पांस एण्ड रिकवरी)। अब भी यह प्रतिष्ठान लोक सेवा में रत है और हजारों रोगी इससे लाभान्वित होते हैं।

डा० पोडोलास्की ने सङ्गीत की सूक्ष्म ध्वनि तरङ्गों का पथरी रोग पर अनुकूल प्रभाव देखा है। "आमेलिता गलिगुर कुर्सी" नामक एक लड़की ने सङ्गीत की सहायता से लकवे से मुक्ति पाई। केलेफोर्निया का एक व्यक्ति किसी कारण से गूंगा हो गया। सभी उपचार व्यर्थ रहे। 'आर, फोर आर, संस्था की एक स्वयंसेविका ने दो वर्ष तक उसे सङ्गीत के रिकार्ड सुनाये, इससे वह बोलने लगा। रामपुर के नवाब लकवे के रोगी थे। उस्ताद सूरजखाँ के "राग जैजेवन्ती" ने लम्बे रोग से उन्हें रोग मुक्त कर दिया। बैजूबावरा ने चकेरी के राजा राजसिंह को 'राग पूरिया' सुनाकर अनिद्रा रोग से मुक्त किया था।

भारत में दीपक राग का प्रयोग बुझे दीपक जला देने, 'श्री राग' का क्षय रोग नष्ट करने में, 'भैरवी राग' जनता की सुख शान्ति की वृद्धि में, 'शकरा राग' द्वारा युद्ध क्षेत्र के लिए तैयार सेनानियों में साहस की लहरें उत्पन्न करने के लिए होता आ रहा है। वर्षा ऋतु में मेघ व मल्हार गाकर दुष्ट प्रवृत्ति के व्यक्तियों में भी प्रेम और सद्-व्यवहार की विचारधारा उत्पन्न की जाती थी।

कुछ समय पूर्व की ही घटना है कि होशियारपुर (पञ्जाब) के प्रसिद्ध सङ्गीतज्ञ पं० गुज्जरराम बासुदेव रागी ने चित्त पूर्णी देवी के पर्वत शिखर पर कड़कती धूप के समय 'मेघ राग' गाकर वर्षा करने का सफल प्रदर्शन किया था।

लगभग १५ वर्ष पहले की बात है कि लखनऊ के एक वैज्ञानिक श्री सी० टी एम० सिंह ने स्लाइडों के माध्यम से यह सिद्ध किया था कि गायों और भैंसों को जब सङ्गीत की स्वर लहरी सुनाई जाती है तो वह अपेक्षाकृत अधिक दूध देती हैं। दिल्ली और कटक के कृषि अनुसंधान केन्द्रों में भी ऐसे परीक्षण किये गये हैं जिनसे पेड़ पौधों की उत्पादक शक्ति पर सङ्गीत के प्रभाव का मूल्यांकन किया गया है। विदेशों में भी ऐसे परीक्षणों का पता चला है कि राग रागनियों से गन्ने, धान, नारियल, शकरकन्द आदि की खेती प्रभावित होती है। उत्तर भारत में अब भी धान की रोपाई के लिए गाँवों की उन महिलाओं से काम लिया जाता है जो मधुर स्वरों में गीत गा सकती हों। धान की रोपाई भी सामूहिक रूप से गाने गाकर की जाती है।

तानसेन ने एक ऐसी चिड़िया को देखा था कि जिस वृक्ष पर वह बैठी हुई है, उस पर अग्नि जल भी रही है और बुझ भी रही है। इसका उत्तर स्वामी हरिदास ने इस प्रकार दिया कि उस चिड़िया के गले से निकले हुए स्वर कम्पन दीपक राग के स्वर कम्पनों जैसे हैं। जब वह चिड़िया सहजभाव से बोलती है तो वह स्वर लहरियाँ फूटती हैं उसी से अग्नि जलती और बुझती है।

देखने सुनने में उपरोक्त घटनायें अतिरंजित प्रतीत होती हैं, पर जो लोग शब्द और स्वरविज्ञान को जानते हैं, उन्हे पता है कि प्राकृतिक परमाणुओं में अग्नि आदि तत्व नैसर्गिक रूप में विद्यमान हैं, उन्हें शब्द-तरङ्गों के आघात द्वारा प्रज्वलित भी किया जा सकता है। आज पाश्चात्य देशों में शब्द शक्ति के द्वारा जो आश्चर्य जनक कार्य हो रहे हैं, वह सब स्वर-कम्पनों पर ही आधारित हैं और उनसे वहाँ कई प्रकार की औद्योगिक क्रान्तियां उठ खड़ी हुई हैं। हम उधर ध्यान न दें तो भी इन आख्यानों को पढ़कर यह तो पता लगा ही सकते हैं, कि जीव मात्र में फैली हुई आत्म-चेतना आनन्द प्राप्ति के एक सर्वमान्य

लक्ष्य से बँधी हुयी है। उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये योग-साधनायें कठिन हो सकती हैं, पर स्वरों की कोमलता और लयवद्धत: में कुछ ऐसी शक्ति है कि वह सहज ही में आत्मा को ऊर्ध्वमुखी बना देता है। उससे शारीरिक, मानसिक लाभ भी हैं पर आत्मोत्थान का लाभ सबसे बड़ा है। सङ्गीत कला का उपयोग उसी में किया भी जाना चाहिये।

आज ऐसे यन्त्रों का विकास हो चुका है जिनमें शब्द को सूक्ष्म विद्युत तरङ्गों में बदल कर मोटर गाड़ियाँ चलाने के काम किये जाते हैं, पर बिना किसी यन्त्र के प्रकृति में परिवर्तन उत्पन्न करने का यह सङ्गीत-विज्ञान अपने आप में अनोखा था और यह बताता था कि देव शक्तियां मन्त्र द्वारा शब्द विज्ञान द्वारा ही सूक्ष्म स्थूल जगत का नियमन करती हैं। इन विद्याओं के ज्ञाता भी वैसे ही चमत्कार कर सकने में समर्थ हों तो इसे अतिशयोक्ति नहीं मानना चाहिए। मन्त्र, स्वर या शब्द विज्ञान एक ही सत्य के भिन्न रूप हैं।

उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि मन्त्र विद्या ठोस वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है और बुद्धिवादी वर्ग भी इस पर विश्वास करके लाभान्वित हो सकता है।

मंत्र शक्ति की सहयोगी प्रक्रियाएँ

संकल्प व दृढ इच्छा शक्ति

मन्त्र सिद्धि में दृढ़ सङ्कल्प और इच्छा शक्ति का विशिष्ट महत्व है। इच्छा जब बुद्धि द्वारा परिष्कृत होकर दृढ़ निश्चय का रूप धारण कर लेती है, तब वह सङ्कल्प कहलाती है। बिना इच्छा के किसी क्रिया का आरम्भ नहीं होता। उस क्रिया में यदि दृढ़ता का समावेश न हो तो सफलता में संदेह रहता है।

संकल्प सुप्त शक्तियों को जगाने का माध्यम है। विस्फोटक पदार्थ स्वयम् नहीं फटते, अग्नि के सहयोग से ही उनकी शक्ति विकसित होती है। मनुष्य के पास अनेक शक्तियां हैं, परन्तु वह उनका उपयोग करना नहीं जानता। सङ्कल्प वह वैज्ञानिक विधि व्यवस्था है जिससे वह उन उपकरणों का उपयोग करता है। सङ्कल्प ही शक्तियों के एकत्रीकरण का कार्य करता है। सङ्कल्प एक विद्युत है जो प्राप्त शक्तियों के अणु-अणु में गति लाने की सामर्थ्य रखती है। गति ही प्रत्यक्ष शक्ति का दूसरा नाम है।

"सङ्कल्प मातसं देवी चतुर्वर्ग प्रदायकम्।"

"मन के सङ्कल्प में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष दिलाने वाली सभी शक्तियाँ भरी पड़ी हैं।"

संकल्प शक्ति की अपार सफलताओं को देखकर ही ऋषियों ने इसे ब्रह्म की संज्ञा दी है और संकल्प ब्रह्म की उपासना के लिए प्रेरित

किया है। इस मूल्यांकन से स्पष्ट रूप में विदित होता है कि उन्होंने इसकी महान् शक्तियों का अनुमान लगा लिया था।

संकल्प का इच्छा शक्ति से घनिष्ट सम्बन्ध है। वास्तव में जीवन की सफलता, उत्कर्ष-अपकर्ष, उन्नति-अवनति, उत्थान-पतन सब मनुष्य की इच्छा शक्ति की सबलता और निर्बलता के ही परिणाम हैं। सबल और दृढ़ इछा शक्ति सम्पन्न लोगों को अभद्र विचार कुकल्पनायें, भयानक परिस्थितियाँ, व उलझनें भी विचलित नहीं कर सकतीं। वे अपने निश्चय पर दृढ़ रहते हैं। उनके विचार स्थिर और निश्चित होते हैं। उन्हें बार बार नहीं बदलते। प्रबल इच्छा शक्ति से शारीरिक कष्ट भी उन्हें अस्थिर नहीं कर सकते। ऐसे व्यक्ति हर प्रकार की परिस्थितियों में अपना रास्ता निकाल कर आगे बढ़ते रहते हैं। अपने व्यक्तिगत हानि-लाभ से भी प्रभावित नहीं होते।

दृढ़ इच्छा-शक्ति मानसिक क्षेत्र का वह दुर्ग हैं जिसमें किसी भी बाह्य परिस्थिति, कल्पना, कुविचारों का प्रभाव नहीं हो सकता। दृढ़ इच्छा-शक्ति सम्पन्न व्यक्ति जीवन की भयङ्कर झंझावातों में भी अजेय चट्टान की तरह अटल और स्थिर रहता है। ऐसा मनुष्य सदैव प्रसन्न और शान्त रहता है। जीवन का सुख, स्वास्थ्य, प्रसन्नता, शान्ति उसके साथ रहते हैं।

संसार में जितने भी महान कार्य हुए हैं, वे मनुष्य की प्रबल इच्छा शक्ति का संयोग पाकर ही हुए हैं। दृढ़ इच्छा शक्ति सम्पन्न व्यक्ति ही महान् कार्यों का संचालन करता है। वही नव सृजन, नव-निर्माण नवचेतना का शुभारम्भ करता है। अपने औरदूसरों के कल्याण, विकास एवं उत्थान का मार्ग खोजता है।

अटूट श्रद्धा

श्रद्धा साधना की नींव है। जहां श्रद्धा है, वहीं सिद्धि है। जहां श्रद्धा का अभाव है, वहीं सन्देह कुतर्क आदि की उत्पत्ति होती है, जो

सफलता के प्रतिबन्ध माने जाते हैं। अतः श्रद्धा के बिना सफलता की आशा करना व्यर्थ है। जिस साधना से सिद्धि प्राप्त करने का प्रयत्न आरम्भ किया जा रहा है, उसके प्रति दृढ़ आस्था (महर्षि पतञ्जलि के शब्दों में अगर बुद्धि के साथ—सत्कार से) होनी चाहिए जो साधना का मेरुदण्ड मानी जाती है। जिस साधना पर श्रद्धा नहीं है, उसे केवल परीक्षा के लिए करना अपना समय व्यर्थ खोना है क्योंकि उससे विशेष लाभ प्राप्त करने की आशा नहीं करनी चाहिए। जब सफलता का प्रथम सोपान ही साधना में सम्मिलित नहीं तो सफलता और सिद्धि कैसी ? सिद्धि के द्वार की पहली शर्त है श्रद्धा। अतः जो साधक सिद्धि प्राप्त करना चाहता हो, उसे इष्टदेव के प्रति पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिए और यदि उसे कोई सन्देह है तो गुरुजनों से कुतर्क और दुराग्रह से नहीं—जिज्ञासा की दृष्टि से अपनी शंकाओं और भ्रमों को दूर कर लेना चाहिए। सदगुरु शिष्य के सभी भ्रमों को दूर करने में प्रसन्नता अनुभव करते हैं। सन्देह दूर होने पर ही श्रद्धा में दृढ़ता आती है। यह दृढ़ता ही अपनी सुपुप्त शक्तियों को जाग्रत करने का माध्यम बनती है। इसलिए हमारे शास्त्रों ने एक स्वर से इसकी परम आवश्यकता को अनुभव किया है।

भावना शक्ति

मन्त्र साधना और भावना का घनिष्ट सम्बन्ध है। साधक जैसी भावना करता है, वैसी ही सफलता उसे प्राप्त होती है। भावना से साधना में गति आती है। मंत्र सिद्धि के लिए भावना शक्ति का होना अत्यन्त आवश्यक है। शास्त्र भी इस तथ्य की पुष्टि करता है।

"मन्त्र, तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भैषजे गुरौ।
याद्दशो भावना यस्य सिद्धिर्भवति ताद्दशो॥

"मंत्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, दवा तथा गुरु में जिस तरह की भावना होती है, उसके अनुसार उसे सिद्धि प्राप्त होती है।"

साधक की सुप्त शक्तियों को जाग्रत करने का काम भावना करती है।

भावना से आरोग्य व अन्य प्रकार के लाभ उठाने की भी एक वैज्ञानिक पद्धति है। अभाव की पूर्ति के लिए गिड़गिड़ाना उचित नहीं है। उससे आत्म-हीनता की भावना उत्पन्न होती है और आशाजनक लाभ भी नहीं होता है। भावना के समय अशुभ के स्थान पर शुभ के, रोग के स्थान पर निरोगता के, अभाव के स्थान पर वैभव और ऐश्वर्य के संकेत मन को देने चाहिए। जिस इष्ट की पूर्ति करने की इच्छा है, उसे अपने भावना-नेत्रों से पूरा होता देखें। यह संकेत जितना तीव्र और सुदृढ़ विश्वास पर आधारित होगा, सफलता उतनी ही शीघ्रता से प्राप्त होगी।

इन शुभ संकेतों का सीधा प्रभाव हमारे गुप्त मन पर पड़ता है। गुप्त मन ईश्वरप्रदत्त शक्ति का भंडार है, दैवी शक्तियों का वह मूल स्रोत है। ईश्वर से उत्तराधिकार में मिली समस्त शक्तियाँ वहीं सोई पड़ी हैं। उन्हें प्राप्त करने के लिए उन्हें जगाना होगा। इसका उपाय शुभ संकेत ही है। यह हमारे गुप्त मन का नव-निर्माण करते हैं और हमारे चारों ओर का संसार वैसा ही बनता चला जाता है। भावना का यह मनोवैज्ञानिक आधार है।

तपश्चर्या

जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए अथक परिश्रम करना अनिवार्य है। छप्पर फाड़कर देने वाली कहावत कहीं-कहीं आकस्मिक ही चरितार्थ होती है। इसी परिश्रम करने को

धार्मिक भाषा में तप कहते हैं। सिद्धि व वरदान अनायास ही नहीं मिल जाते। उनके लिए घोर तप करने पड़ते हैं। आज जब कि सारा वातावरण दूषित हो चुका है, लोग कुछ दिन ही उल्टे सीधे, बिना विधि विधान के, अधूरी श्रद्धा भावना से, मन्त्र जप करके ही सिद्धि प्राप्त करने की बात सोचते हैं और कुछ प्राप्त न होने पर अविश्वास करने लगते हैं। परन्तु प्राचीन काल में सात्विक वातावरण में ऋषि कितनी घोर तपस्याएँ लम्बे समय तक किया करते थे, इसकी आज कल्पना भी नहीं की जा सकती। च्यवन और बाल्मीकि के उदाहरण समक्ष हैं। उन्होंने इतने लम्बे समय तक तन्मयता से तप किया कि शरीर के आस-पास धूल की चट्टान-सी बन गई, उस पर छोटे-छोटे पेड़ पौधे उगने लगे और पक्षी चहचहाने लगे। आज इसे—असम्भव और कल्पना की संज्ञा ही दी जाएगी। जिस तरह यह तप कल्पना माने जाते हैं, उस तरह यह सिद्धियाँ भी कल्पना बन गई हैं क्योंकि सिद्धि प्राप्त करने के लिये उसके अनुरूप जब तप नहीं किया जायेगा तो निश्चित रूप से सिद्धि प्राप्त करना भी अशक्य रहेगा। सिद्धि दैवी वरदान के रूप में नहीं मिला करती, उसके लिए उसका मूल्य चुकाना पड़ता है।

जहां तप है, वहीं शक्ति, मुक्ति, स्वर्ग, सुख, शांति, आन्नद धन, ज्ञान, कीर्ति और संसार का सब कुछ है। जो जीने योग्य जीवन जीना चाहता है, उसे तप को अपना जीवन साथी बना लेना चाहिए। जो इस विवेकपूर्ण निर्णय की उपेक्षा करता है, वह आज नहीं तो कल दीन, हीन दुःखी और विपत्तिग्रस्त बनकर रहेगा।

एकाग्रता

साधना के लिए चित्त का स्वच्स्थ व शान्त होना आवश्यक है। हृदय में श्रद्धा और भक्ति भावना हो, मन को सब ओर से हटाकर

तन्मय किया जाये और चित्त को एकाग्र किया जाए, तभी साधना में सफलता और सिद्धि प्राप्त होती है अन्यथा निराशा ही हाथ लगती है। जब मन में अशान्ति, चिन्ता, उत्तेजना, भय व सन्देह हो, उसका एक स्थान पर स्थिर होना कठिन है। वह इधर-उधर भागेगा। ऐसी स्थिति में न जप में मन लगता है न ध्यान में। साधक माला तो घुमाता रहता है, मन्त्र भी बोलता रहता है, चित्त इधर-उधर भागता है। सफलता की आशा रखने वाले साधक के लिए यह अच्छे लक्षण नहीं हैं। सब ओर से मन हटाकर, श्रद्धा भक्ति से तन्मयता पूर्वक साधना से ही वह आकर्षण शक्ति उत्पन्न होती है जिससे अभीष्ट सिद्धि प्राप्त हो।

मन को एकाग्र व स्थिर करने के लिए लम्बे समय के अभ्यास की अपेक्षा है। संसार के बड़े से बड़े, कठिन, असम्भव कार्य भी अभ्यास से पूर्ण हो जाते हैं। अभ्यास से मनुष्य तो क्या पशु भी आश्चर्यजनक, प्रकृति विरुद्ध काम करते हैं। यदि चिरसंचित बहिर्मुखी संस्कार इस कार्य में बाधक होते हैं, फिर भी दृढ़ता पूर्वक अभ्यास करते रहने से वह भी शमन हो जाते हैं। परन्तु योग दर्शनकार चेतावनी देते हैं कि यह अभ्यास बहुत काल तक लगातार सत्कार से ठीक-ठीक किया जाए तभी इसमें दृढ़ता आती है (१।१४) अभ्यास और वैराग्य के इस मिले-जुले प्रयत्न से चित्त वृत्तियों का निश्चित रूप से निरोध होता है और मन एकाग्र होता है। यही मन्त्र सिद्धि का मार्ग है।

प्राणायाम

मन्त्र साधना का एक आवश्यक अङ्ग प्राणायाम है। साधक अपने इष्टदेव का ध्यान करता है। मन को उस पर जमाता है। मन चञ्चल है। वह इधर-उधर भागता है। उसी एकाग्रता में ही शक्ति का रहस्य छिपा है। वही साधक की साधना की सफलता है। प्राणायाम से मन को स्थिर रखने में सहायता मिलती है। धीरे-धीरे एकाग्रता बढ़ने

लगती है। शास्त्र का भी यही वचन है "मन प्राण के अधीन है । जैसे पक्षी रज्जु से बँधा रहता है, वैसे ही चित्त प्राण से सम्बन्धित है। विचार द्वारा मन को वश में करना असम्भव ही होता है। मन को एकाग्र करने का एक मात्र उपाय प्राणायाम है।" भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है— "प्राणायाम के द्वारा ध्यान करने से वशीभूत हो जाने पर जैसे एक ज्योति में दूसरी ज्योति मिलकर एक हो जाती है, ऐसे ही साधक अपने में मुझे और मुझ परमात्मा में अपने को मिला देता है।" योग दर्शन २।५३ में भी कहा गया है कि प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से मन की चञ्चलता नष्ट होती है और उसमें धारणा की योग्यता आ जाती है। अतः प्राणायाम साधक अपना शारीरिक मानसिक विकास करता है और आत्मिक क्षेत्र में प्रवेश करता है।

ध्यान

संसार के सभी महत्वपूर्ण कार्यों की सफलता के लिये मनोयोग अथवा ध्यान की, एकाग्रता की आवश्यकता होती है। इसमें भी आध्यात्मिक ज्ञान तो बिना ध्यान के निश्चल हुये हो ही नहीं सकता। ध्यानपूर्वक विचार करने से ही हम किसी वस्तु के मूल स्वरूप और उसकी वास्तविकता को जान सकते हैं। यदि हमारा ध्यान इधर-उधर बँटा रहता है, तो हम किसी विषय का गहराई मे बैठकर यथातथ्य ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। जिस तरह से आतशी शीशे से सूर्य की बिखरी किरणों को एकत्रित करके किसी कपड़े या कागज पर फैंका जाता है तो वह जलने लगता है, पर बिना एकत्रित हुये साधारणतः वह उसे जलाने की सामर्थ्य नहीं रखतीं, इसी तरह किसी समस्या पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर, एकाग्रता पूर्वक मनन करने पर उलझी हुई गुत्थियों का भी सरल समाधान प्राप्त हो जाता है। कारण स्पष्ट है कि मन की बिखरी हुई शक्तियां एकत्रित हो जाती हैं। एकता शक्ति का दूसरा नाम है। मन की अपार सामर्थ्य को एक निश्चित मार्ग में लगा देने से

शक्ति के द्वार खुल जाते हैं। इसी को सिद्धि कहा जाता है। इसीलिये ध्यान योग का साधक सिद्धि के मार्ग की ओर पग बढ़ाता है, उसे हर क्षेत्र में सिद्धि ही दिखाई देती है। असफलता या असम्भव का एक कण भी उसे सारी सृष्टि में दृष्टिगोचर नहीं होता। वह सफलता के झण्डे गाढ़ता हुआ निरन्तर आगे ही बढ़ता रहता है।

अर्थ चिंतन :

ध्वनि समूहों की शक्तियों के अतिरिक्त मन्त्रों में उत्तम शिक्षायें और प्रेरणायें भी होती हैं जिनका मनन, चिन्तन करने से वह जीवन का कायाकल्प ही कर देतीं हैं। मन्त्र का अर्थ ही मनन, विद्या और ज्ञान होता है। यदि उसके अर्थों का मनन न किया जाये तो साधना अधूरी ही रहती है। जब इष्ट मन्त्र का जप किया जाता है, तो नेत्र बन्द करके मन्त्र के एक-एक अक्षर के अर्थ पर रुक-रुक कर बिचार करना चाहिये और मनः क्षेत्र पर उसे प्रतिष्ठित करना चाहिये जैसे वह मूर्त रूप में सामने आ रहे हैं और साधक उनका श्रद्धा पूर्वक ध्यान और चिन्तन कर रहा है। जिन विचारों का नित्यप्रति बार-बार चिन्तन किया जाता है, उनका मन में पहले से स्थित विचारों से संघर्ष आरम्भ हो जाता है। जो समूह प्रभावशाली होता है, उसी की विजय होती है। मन में जो पहले जन्मों के संस्कार जमे होते हैं, वह उखड़ने लगते हैं और नए संस्कार उदीप्त होना आरम्भ होते हैं और साधक अपने लिए एक नई सृष्टि का निर्माण करता है। यह तभी होना सम्भव होता है जब वह नियमित रूप से लम्बे समय तक निरन्तर उन्हीं विचारों को मनोभूमि में विकसित करने का प्रयत्न करता रहता है। चिन्तन की प्रक्रिया से जिस मंत्र में अगाध श्रद्धा और विश्वास होता है, उसके अर्थ तो जीवन का एक अङ्ग बन जाते हैं। साधना की सफलता इसी में है जब साधक मंत्र के साथ एकाकार कर लेता है। उसकी विधि एकाग्रता पूर्वक जप के साथ अर्थ-चिन्तन की है। जप की प्रमुखता

तो है ही। उससे लाभ होता ही है परन्तु उनके अर्थों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। साधना की पूर्णता इसी में है कि जप के साथ अर्थों का चिंतन हो।

संस्कारित साधना स्थल :

स्थान का चुनाव मन्त्र साधना का एक आवश्यक अङ्ग है। शास्त्रों में सिद्धि के जो साधन बताए गये हैं, वह किसी भी स्थान पर केवल जप की संख्या पूरी करने पर अनुकूल परिणाम प्रस्तुत कर दें, यह आवश्यक नहीं है। साधना के लिए एकाग्रता चाहिए और एकाग्रता की प्राप्ति के लिये एकान्त, शान्त, पवित्र और संस्कारित भूमि चाहिये। जिस स्थान में यह गुण हों, वही स्थान साधना के लिये उपयुक्त माना जाता है।

शास्त्रों में इन स्थानों को अनुष्ठान के लिए विहित माना गया है—एकान्त, उद्यान, पवित्र वन, सङ्गम, तीर्थ, गुहा, सरिता तट, पुण्य-क्षेत्र, सिद्धपीठ, विल्व वृक्ष, पर्वत की तराई, तुलसी कानन, गोशाला जिसमें बैल न हों, अपने घर के एकान्त स्थान में, जल में, पीपल या आंवले के नीचे, देवालय आदि।

उपरोक्त घोषणा का यह अर्थ नहीं है कि घर पर की गई साधना निकृष्ट होती है और उसका कोई विशेष लाभ नहीं होता। मुख्य सिद्धांत तो यह है कि जहाँ चित्त की एकाग्रता प्राप्ति में सहायता मिलती है, वही स्थान उसके लिए उपयुक्त है। घर का साधना स्थल यदि एकान्त, शान्त और दिव्य वातारण से ओत प्रोत है और कभी-कभी वहाँ हवन होता रहता है तो उसी स्थान से अभीष्ट लाभ की आशा की जा सकती है। वहाँ पर परिवार के सदस्यों का आना जाना कम हो, कोलाहल कम हो ताकि साधना में बाधा न पड़े। निरन्तर साधना करते रहने पर वह स्थान भी संस्कारित होने लगता है और फिर कम

समय में अधिक लाभ की भी सम्भावना हो सकती है। सिद्ध पीठ, पुण्य क्षेत्र और तीर्थ पर साधना करने पर इसलिए सिद्धि मिलती है क्योंकि उस भूमि पर सिद्ध साधकों ने लम्बे समय तक घोर तपश्चर्याएँ की हैं, उनका प्रभाव वह भूमि ग्रहण किये रहती है। जिस भूमि पर जितनी अधिक साधना की जाती है, वहाँ पर उतनी ही शीघ्रता से सिद्धि मिलती है।

असंक्रामक आसन :

आसन उस वस्तु का बनाया जाता है जो असंक्रामक (नान-कन्डक्टर) हो। इससे पार्थिव विद्युत पृथ्वी में प्रवाहित नहीं हो सकती। बिजली वाले बिजली की फिटिंग व मरम्मत करते हुए ऐसी वस्तुओं को माध्यम बनाते हैं जो असंक्रामक हों जैसे—रेशम, मिट्टी, चीनी, रबड़, लकड़ी आदि। इसमें विद्युत दूसरी ओर प्रवाहित नहीं हो सकती। लोहा, पीतल आदि धातुएँ ऐसी हैं जिन्हें संक्रामक (कन्डक्टर) की संज्ञा दी जाती है। यदि इन्हें माध्यम बनाया जाय तो विद्युत से हानि हो सकती है।

इसी सिद्धान्त को दृष्टि में रखते हुए कुश का आसन, मृगचर्म, व्याघ्र चर्म, ऊन का आसन, काष्ठ की चौकी और गोबर के चौके को पूजा-पाठ के कार्यों में प्रयुक्त किया जाता है क्योंकि वह असंक्रामक—नान-कन्डक्टर गुण से युक्त हैं और पृथ्वी और साधक में एक ऐसे माध्यम का काम देते हैं जिससे शक्ति का प्रवाह नीचे की ओर न हो। इसके विपरीत वस्त्र और पत्थर के आसन वर्जित माने गये हैं क्योंकि यह दोनों संक्रामक (कन्डक्टर) हैं। इनसे पार्थिव विद्युत प्रवाहित हो सकती है। पत्थर पर घण्टों उपासना के लिये बैठा जाये तो उसके कड़ेपन के कारण गुदा सम्बन्धी रोगों की सम्भावना भी हो सकती है।

दिशा :

मन्त्र जाप में दिशा का भी विशिष्ट स्थान है। अपनी इच्छा से किसी भी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसी दिशा में बैठकर वाञ्छित लाभ की प्राप्ति करना कठिन है। हर प्रकार की साधना के लिए अलग अलग दिशाओं का निर्धारण किया गया है।

प्रातःकालीन सन्ध्या, जप के लिए पूर्व की ओर मुख करने का विधान है। पूर्व देवताओं की दिशा मानी गई है। शतपथ ब्राह्मण (१।७।१।१२) में कहा है:—

"प्राची हि देवानां दिक्।"
"देवताओं की दिशा पूर्व ही है।"

सन्ध्या में पूर्व की ओर बैठने का प्रमुख कारण यह है कि सूर्य पूर्व की ओर से उदय होता है। सूर्य अग्नि और तेजस्विता का प्रतीक और प्राण शक्ति का महाभण्डार है, उसकी हर किरण में आरोग्य ओत् प्रोत् हैं। इसलिये सूर्य को स्थावर जङ्गम की आत्मा कहा जाता है। सूर्य से प्राण शक्ति को आकर्षित करने के लिए आवश्यक है कि उसकी ओर ही मुख किया जाए। सूर्य शाम को पश्चिम की ओर चला जाता है। इसलिए सायंकालीन साधना पश्चिम की ओर मुख करके की जाती है। अपनी प्राण विद्युत को विश्व की महानतम प्राणविद्युत के स्रोत सूर्य के अनुकूल प्रवाहित करने से साधना की सफलता में सुविधा रहती है। विपरीत धारा में चलने से कठिनाई स्वाभाविक है। ईसाई अपने गिरजाघरों के द्वार पूर्व की ओर ही रखते हैं। पारसी बौद्ध और जैनियों की भी यही मान्यता है।

सायंकालीन सन्ध्या पश्चिम की ओर मुख करके होती है क्योंकि सूर्य पश्चिम में अस्त होता है। जिधर सूर्य की दिशा होगी, उधर ही मुख करने का विधान है। प्रातः पूर्व की ओर, सूर्य की ओर मुख करके

साधना करने से जो लाभ प्राप्त होने चाहिए, वही लाभ सायं पश्चिम की ओर मुख करने से प्राप्त होने स्वाभाविक हैं ।

उपवास :

उपवास का विधान विशेष प्रकार से आत्मिक उत्थान के लिए ही निर्धारित किया गया था क्योंकि उपवास काल में साधक की आत्मिक शक्तियाँ जाग्रत, चैतन्य व तीव्र होती हैं । यह एक प्रकार की तपश्चर्या है जिसमें सोई हुई शक्तियां क्रियाशील हो उटती हैं, विचारों में नवोत्थान आता है, विवेक, बुद्धि का विकास होता है, विषयों और वासनाओं के प्रति विद्रोह खड़ा करने का साहस उत्पन्न होता है, एक क्रमबद्ध जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा मिलती है, अपनी आत्मिक मलिनताओं के प्रति घृणा जाग उठती है और उनके बन्धन से छुटकारा प्राप्त करने के लिये मन बद्ध-पक्षी की तरह छटपटाता है । विषय भोगों की जकड़ से मुक्त होने की तीव्र इच्छा होना शुभ लक्षण माने जाते हैं । उपवासकाल में ऐसे ही अनुभव होते हैं ।

उपवास मन को गीली मिट्टी की तरह बना देता है । गीली मिट्टी से कुम्हार जैसे बर्तन चाहे बना सकता है । उपवास के साथ स्वाध्याय, मनन, चिन्तन, ध्यान आदि जो भी साधनायें की जाती हैं, उनकी अमिट छाप मन पर पड़ती है । उपवास की अग्नि मन को पिघला देती है, उस समय उसका जैसा भी आकार बनाना चाहें, बना सकता है । उपवास के दिन जो व्यक्ति अपनी सकाम साधना करते हैं तो उनकी इच्छा पूर्ति होती है । सदाचार, ब्रह्मचर्य, संयम काम-वासनाओं पर नियन्त्रण करना चाहें तो यह आशीर्वाद भी प्राप्त हो सकता है । ऋद्धि-सिद्धियों का भी यह मार्ग है । अपने आन्तरिक शत्रु जो हमें दिन रात घुन की तरह खाते रहते हैं और शारीरिक व आत्मिक दृष्टि से खोखला बना देते हैं, उन पर विजय प्राप्त करना भी सरल हो जाता है । उपवास शक्ति का भण्डार है ।

यह अनुभव सिद्ध तथ्य है कि उपवास के साथ की गयी साधना शीघ्र फलदायक होती है। इन दिनों जो भी मनन, चिंतन और विचार साधना की जाती है, उसकी एक अमिट छाप मानसिक क्षेत्र पर अंकित हो जाती है और साधक का व्यवहारिक जीवन उसी ओर प्रवाहित हो जाता है। प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि व मन्त्र सिद्धि में उपवास एक सहायक साधन है क्योंकि अन्य विभिन्न प्रकार के तपों की तरह उपवास भी एक प्रकार का तप है जिसकी अग्नि में जलकर मन पर जमे मल विक्षेप धुलने लगते हैं। मन की पवित्रता और शुद्धता ही शक्ति और सिद्धि की ओर ले जाती हैं। अतः सिद्धि के इच्छुक साधक उपवास की साधना को न भूलें।

संयम :

इन्द्रिय निग्रह को ही संयम कहते हैं। संयम का अभिप्राय है–शक्तियों के अपव्यय को रोकना, हमारे शरीर व मन में ईश्वर प्रदत्त अपार शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। यदि इनका उचित रीति से उपयोग किया जा सके तो हर व्यक्ति महानतम कार्यों का सम्पादन कर सकता है। शक्ति नाश का मार्ग हैं–यह इन्द्रियाँ। यदि इनका असंयम बरता गया तो अपनी सारी सामर्थ्य की बर्बादी हो जायेगी और शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व आत्मिक हर दृष्टि से व्यक्ति दिवालिया हो जायेगा। ऐसा व्यक्ति भौतिक व आध्यात्मिक किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता। इसके विपरीत जो संयम का पालन करता है, वह अपनी शक्तियों का संचय करता है। इस सञ्चय से वह अपनी शक्तियों के अकूत भण्डार को सुरक्षित रखता है और किसी भी अभीष्ट दिशा में आशाजनक सफलता प्राप्त कर सकता है।

मन्त्र साधना का उद्देश्य अपनी सुप्त शक्तियों को जाग्रत करके अभीष्ट कार्यों की पूर्ति करना है। शक्ति विकास के पथ पर चलने वाले

साधक की दृष्टि चारों ओर से अपनी अमूल्य सम्पदा को सुरक्षित रखने की ओर ही रहती है। शक्ति तब बढ़ती है जब शक्ति का सहयोग मिलता है। यदि अपने शक्ति भण्डार में से शक्तियों का ह्रास होता रहे, तो शक्ति विकास साधना में बाधा पड़ती है। शक्ति विकास की विशिष्ट साधना-अनुष्ठान में ऐसे नियमों के पालन का आदेश दिया गया है जिनसे संयम का अभ्यास बढ़ता है। जो साधक इनका पूर्ण रूप से पालन कर पाता है, वह सिद्धि के मार्ग को प्रशस्त करने में सफल हो जाता है। उपेक्षा करने वाले की सिद्धि भी उपेक्षा करती है। मंत्र साधक को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि यदि वह मन्त्र साधना मे सफलता प्राप्त करना चाहता है तो उसे इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना होगा। यदि इन्द्रियों को मनमानी करने दी गई तो मन्त्र सिद्धि में व्यवधान आना स्वाभाविक है। अतः मन्त्र साधना में सफलता के लिए संयम अनिवार्य है, जो इसका मेरुदण्ड है।

मौन :

मौन से शक्ति का ह्रास रुकता है, उसकी सुरक्षा रहती है। शारीरिक अङ्गों में नई फुरती आती है, मानसिक शक्ति की वृद्धि होती है, बुद्धि का विकास होता है, आत्म बल बढ़ता है। यह सभी शक्तियाँ मनुष्य-जीवन के विकास में सहायक व आवश्यक होती हैं। इनका अभाव जीवन की असफलता है और वृद्धि सफलता की सूचक है। जिस तरह बैटरी को चार्ज करके उसे पुनः काम के लिये बनाया जाता है, इसी तरह जब शरीर में विद्युत कम होने लगती है, तो उसे पुनः लाने के लिये मौन रूपी 'चार्ज' की आवश्यकता रहती है। अतः मौन हर प्राणी के लिए आवश्यक और अनिवार्य है। इस अस्त्र का प्रयोग अचूक और लाभदायक रहता है।

मौन व्रत मन्त्र साधना का एक आवश्यक अङ्ग माना गया है। मौन रहना शक्ति सञ्चय की साधना है। उपवास, ब्रह्मचर्य व्रत, अस्वाद व्रत आदि अनेकों ऐसे साधन हैं जिनका उपयोग मन्त्र उपासना काल में किया जाता है। उनके साथ-साथ मौनावलम्बन भी साधना की सफलता के लिए सहायक सिद्ध होता है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि बिना मौन रहने के मन्त्र सिद्धि दुर्लभ है परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि मौन के अभ्यास से शक्तियाँ सुरक्षित रहती हैं जो मन्त्र सिद्धि को सुलभ बनाती हैं। जो साधक इष्ट मन्त्र से शीघ्र सफलता प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें इस सहायक साधना का प्रयोग अवश्य करना चाहिये।

आहार शुद्धि

यह निश्चित सिद्धान्त है कि मनुष्य जैसा अन्न खाता है, वैसा ही उसका मन बनता है। सात्विक अन्न खाने से सात्विक व राजसिक, तामसिक अन्न ग्रहण करने से राजसिक व तामसिक मनोभूमि तैयार होती है। इसलिये विधान बनाया गया कि जो साधक अपने जीवन का निर्माण करना चाहते हैं उन्हें सात्विक प्रकृति का व शुद्ध कर्मादि का अन्न ही खाना चाहिए क्योंकि दुःख सुख और बन्धन मुक्ति का यही कारण है, अस्वस्थ मन में ही चिन्ता, निराशा, दुःख कलह, क्लेश, ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ आदि की दुर्भावनाएं उपज सकती हैं। स्वस्थ मन इन वृत्तियों के लिए बञ्जर भूमि सिद्ध होता है और इनके लिये आहार की आन्तरिक पवित्रता आवश्यक है।

शिव पार्वती सम्वाद में एक स्थान पर शिव ने कहा है—"जिनकी जिह्वा परान्न से जल गई है, जिनके हाथ प्रतिग्रह से जले हुए हैं और जिनका मन परस्त्री के चिन्तन से जलता रहता है, उन्हें भला मंत्र सिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है।"

अतः मन्त्र साधना में सफलता प्राप्ति के लिए आहार शुद्धि को साधना का एक आवश्यक अङ्ग माना जाना चाहिये। यदि उसकी उपेक्षा की गई तो इसे साधना में एक व्यवधान समझना चाहिये।

ध्वनि समूह को मन्त्र कहते हैं। ध्वनि का प्रभाव निश्चित रूप से होता है, यह वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर पहले सिद्ध किया जा चुका है। परन्तु उन विशिष्ट ध्वनियों का प्रयोग जिस माध्यम से किया जाता है, उसका भी सबल होना आवश्यक है। प्रयोग का विधि विधान भी ऐसा हो कि उसका निशाना लक्ष्य स्थल पर अचूक रहे। यह तभी सम्भव है जब मन्त्र शक्ति के विकसित व जाग्रत होने के आधार भूत तथ्यों की ओर ध्यान दिया जायेगा। अतः यह सहयोगी प्रक्रियाएं मंत्र सिद्धिमेंमहत्वपूर्ण भूमिका प्रदर्शित करती हैं।

वैदिक मन्त्र शिरोमणि—ओंकार

हिन्दू धर्म के समस्त मन्त्रों का शिरोमणि ओंकार को स्वीकार किया गया है। इसके बिना सभी मन्त्र अधूरे प्रतीत होते हैं। सभी मन्त्रों का उच्चारण ओंकार के साथ ही पूर्ण होता है। वेद ने इसे सर्वश्रेष्ठ मन्त्र, जप, तप व ध्यान घोषित किया व इसकी साधना की प्रेरणा दी। वेद इसकी महिमा का गान करते नहीं अघाते। यजुर्वेद ने आदेश दिया "ॐ स्मर"—ॐ का स्मरण करो। क्योंकि शास्त्र का वचन है कि—'ॐ के स्मरण, कीर्तन, श्रवण और जप से उस मनुष्य को परब्रह्म प्राप्त हो जाता है। अतः ॐ में परायण रहे।" वेद ने फिर कहा—"प्रणवान्तर्गतं पर ब्रह्म" ईश्वर प्रणव में स्थित है। अतः प्रणव की उपासना करनी चाहिये। इससे ब्रह्म साक्षात्कार होता है।

माहात्म्य :

ॐ परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ स्वाभाविक नाम है। छोटे बच्चे के रोने की आवाज 'ओआं' सी होती है। ऐसा लगता है कि वह 'ॐ' का जप कर रहा है। वृक्षों के पत्तों की साँइ-साँइ, नदी और समुद्र की लहरों की ध्वनि और मोटर गाड़ियों की आवाज में 'ओंकार' की ही छाप मिलती है। अँगड़ाई व डकार लेते हुए स्वयमेव यह भीतर से प्रस्फुटित होता है। प्रकृति परमात्मा के इस स्वाभाविक नाम को निरन्तर जपने की प्रेरणा देती है। यह अपार शक्ति और सामर्थ्य वाला है। ईश्वरीय सम्पदायें इस में ओत-प्रोत हैं। इसे ब्रह्म भी कहा जाता है।

ओंकार को प्रणव कहते हैं क्योंकि इसकी बहुत स्तुति होती है। जैसे एक छोटे-से बीज में एक वृहद् वृक्ष समाविष्ट रहता है, उसी तरह 'ॐ' में समस्त विश्व निहित है। इसलिये इसे बीज कहते हैं। यह ब्रह्म का प्रतीक है। इसीलिये हिन्दू जगत में इसे कल्याण के मन्त्रों का शिरोमणि माना जाता है। स्वस्तिक को सर्वतोमुखी कल्याण का प्रतीकात्मक चिह्न माना जाता है। पूजा कार्यों में वह अग्रणी रहता है। यह स्वस्तिक 'ॐ' का ही विकृत रूप है। सिखों के प्रमुख ग्रन्थ 'गुरु ग्रन्थ साहब' में "एक ओंकार सतगुरु प्रसाद" कहकर 'ॐ' की ही महिमा का वर्णन किया गया है और यह उनके धर्म का प्रमुख चिह्न बन गया है।

धात्वर्थ :

ॐ शब्द 'अव' धातु से बनता है। 'अव' धातु के १६ अर्थ होते हैं। इतने अर्थ और किसी भी धातु के नहीं होते। वह अर्थ इस प्रकार हैं—(१) रक्षण—संसार सागर से रक्षा करने वाला (२) गति—सर्वव्यापक संसार चक्र को चलाने वाला और सर्व ज्ञाता (३) कान्ति—विश्व का प्रकाशक (४) प्रीति—भक्तों को प्रसन्न करने वाला (५) तृप्ति–तृप्ति और सन्तोष देने वाला (६) अवगम–सर्वज्ञाता (७) प्रवेश-सब में प्रवेश करने वाला (८) श्रवण–गुप्त से गुप्त शब्दों को सुनने की क्षमता वाला (९) स्वाम्यर्थ—शासक (१०) याचन–जहाँ से ऐश्वर्यों की याचना की जाए (११) इच्छा क्रिया—संसार चक्र का संचालक, (१२) इच्छित—जीवों की शुभ कामनाओं का प्रकाशक (१३) दीप्ति-अज्ञानान्धकार को दूर करने वाला (१४) वाप्ति–अन्तःकरण में स्व–स्वरूप प्रदर्शक (१५) आलिंगन–सबका सम्बन्धी, अपना (१६) हिंसा–अज्ञान को नष्ट करने वाला (१७) दान-उपयोगी पदार्थों की उपयोगित का शिक्षक (१८) भोग-प्रलय के समय सारे संसार को लीन करने वाला, (१९) वृद्धि—सूक्ष्मता से स्थूलता की ओर लाने वाली। ॐ के यह अर्थ

इसके गुण हैं, इसकी शक्तियों के वाचक हैं। अत: 'ॐ' की साधना करने वाला साधक स्वभावत: भौतिक और आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में प्रगतिपथ पर आरूढ़ रहता है। उसे किसी प्रकार का भय और अभाव नहीं खटकता, साहस और स्फूर्ति उसके रोम-रोम में भरी रहती है, क्रियाशीलता उसका धर्म बन जाता है। वह सब प्रकार से सुखी रहता है।

मंत्र शिरोमणि :

'ॐ' सभी अन्य मन्त्रों का शिरोमणि है। इसकी सर्वश्रेष्ठता का मूल्यांकन इसी तथ्य से किया जा सकता है कि इसकी सहायता के बिना सभी मन्त्रों का प्रभाव धूमिल हो जाता है। जैसे वह मन्त्र कीलित हों और 'ॐ' ही उनका शाप विमोचन करता है। 'ॐ' के नेतृत्व में ही वह अपना प्रभाव दिखाने की सामर्थ्य रखते हैं। इसके बिना तो सभी मन्त्र अङ्गहीन से दृष्टिगोचर होते है। यह सभी में शक्ति फूँकने वाला है। इसीलिये तन्त्र में कहा गया है "मन्त्राणां प्रणव: सेतु" मन्त्रों की सफलता के लिये प्रणव पुल का सा काम करता है। जिस तरह पुल या नाव के बिना किसी नदी को पार करना असम्भव होता है, उसी तरह 'ॐ' के बिना प्रणव की सहायता के अभाव में सिद्धि अशक्य है। प्रणव के साथ मिल जाने से पुल तैयार हो जाता है और साधक सफलता पूर्वक पार हो जाता है।

इसी भावना की कथा गोपथ ब्राह्मण में उपलब्ध होती है। एक बार असुरों ने इन्द्रपुरी को घेर लिया। इन्द्र अपने को उनका सामना करने में असमर्थ पाने लगे और किसी बाह्य शक्ति की खोज करने लगे। उन्हें 'ॐ' मिला। इन्द्र ने प्रार्थना की कि—"आप सर्व शक्तिमान हैं, आपकी सहायता से हम असुरों पर विजय प्राप्त कर करते हैं। आप ही इस संकट को टाल सकते हैं।" "ॐ" ने एक शर्त पर अपनी स्वीकृति दी कि 'ॐ' को पहिले पढ़े बिना ब्राह्मण वेद पाठ न

करें। मेरे नाम को सर्व प्रथम पढ़ा जाया करे। यदि ऐसा न हो तो देवताओं द्वारा उसे स्वीकार न किया जाये।" देवताओं ने यह शर्त मानली। 'ॐ' ने यह आदेश दिया कि सैनिको! आगे बढ़ो और 'ॐ' का उच्चारण करते चलो। यह शब्द तुम में नई शक्ति और स्फूर्ति लायेगा। इससे तुम असुरों पर विजय प्राप्त करोगे। ऐसा ही हुआ। असुर पराजित हुए और देवता विजयी। जिस व्यक्ति की मन रूपी इन्द्रपुरी को असुरों ने घेर रखा हो, वह "ॐ" की सहायता का आह्वान करे। ओंकार की सहायता से वह असुरों पर निश्चय रूप से विजय प्राप्त करेंगे और इन्द्रपुरी पर उनका एकछत्र राज्य स्थापित रहेगा।

सभी मन्त्रों और भाषाओं का मूल :

प्रणव केवल मन्त्रों का सेतु ही नहीं है वरन् सभी मन्त्रों का आविर्भाव भी इसी से होता है। लिङ्ग पुराण में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है। "प्रणव के उस विराट् रूप से ही सारे मन्त्र उत्पन्न हुये हैं। ओंकार को मस्तक और अकार को ललाट कहा गया है। इकार दांयी आंख और ईकार बायी आँख है। उकार दाहिना कान और ऊकार बाँया कान है। ऋकार दाहिना कपोल और ॠकार बाँया कपोल है। लृकार ॡकार दोनों नासिकायें हैं। एकार को होंठ और ऐकार को अधर कहा गया है। ओकार और औकार को दो दन्त पंक्तियाँ कहा गया है। अं और अः दोनों तालु हैं। क से ङ तक पाँच अक्षर उनके दाहिने पाँच हाथ और च से ञ तक पाँच अक्षर उनके बायें पाँच हाथ हैं। ट से ण तक पाँच अक्षर और त से अ तक पाँच अक्षर उनके पैर हैं। पकार को पेट, फकार को दाँया पार्श्व, बकार को बाँया पार्श्व, भकार को स्कन्ध और मकार को हृदय माना गया है। यकार से सकार तक प्रणव के सात धातु हैं, हकार आत्मरूप और क्षकार क्रोध रूप है। इस प्रकार सभी वर्णों की उत्पत्ति प्रणव से ही कही गई

है। यह मन्त्र शिरोमणि ही नहीं जनक भी है, सबका मूल है। जिस तरह मूल को उखाड़ देने से सारा पेड़ ही नष्ट हो जाता है, उसी तरह 'ॐ' के बिना सभी मन्त्र प्रभावहीन, शक्तिहीन और खोखले रहते हैं। छान्दोग्योपनिषद् के ऋषि ने भी कहा है—"जिस तरह से पत्रनाल से सब पत्र गुत्थे रहते हैं, उसी तरह प्रणव से सब शब्द गुत्थे रहते हैं, ओंकार ही सब कुछ है।" यह सभी भाषाओं का भी मूल है। पं० दीनानाथ शास्त्री ने लिखा है—'ॐ इस अक्षर के कई लकड़ी के टुकड़े बने हुए होते हैं। उनको विशिष्ट क्रम से जोड़ने पर सब भाषाओं की लिपि बन सकती है। सब प्रकार के जीवों की आकृतियाँ बन सकती हैं। इसी 'ॐ' से शेषनाग बन जाता है। यही गणेश की मूर्ति एवं शिवलिङ्ग एव जलहरी की मूर्ति है। यह 'ॐ' एक प्रतीक है।" जिसने 'ॐ' को छोड़ा, उससे सब कुछ छूट गया, यह समझना चाहिये। और जिसने 'ॐ' को अपना लिया, उसके पास सब कुछ आ गया, उसे और कुछ प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि वह स्वयं ही अपार सम्पदाओं का स्वामी है।

उपनिषदों के दिव्य अनुभव—

उपनिषद् के ऋषियों ने प्रणव की घोर तपश्चर्या की थी। उन्होंने प्रणव के दिव्य अनुभव उपनिषदों में व्यक्त किये हैं. इसकी व्याख्या और स्पष्टीकरण किया है, महिमा का गुणगान किया है और जप ध्यान की प्रेरणा दी है।

कठोपनिषद् (१।२।१५-१७) में यम कहते हैं—"जिस परम पद का सम्पूर्ण वेद प्रतिपादन करते हैं, जिस पद का सम्पूर्ण तप आभास कराते हैं, जिस पद की कामना वाले साधक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वह पद मैं तुम्हें संक्षेप में कहता हूँ। उसका 'ॐ' एक अक्षर मात्र है। यही अक्षर ब्रह्म है, यही परब्रह्म है, अतः इस अक्षर को जानकर जिसकी इच्छा करे, वही इसे प्राप्त हो जाता है। यही

एक श्रेष्ठ आधार है, यही परम आधार है, इस आधार के जानने वाला व्यक्ति ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है।" अर्थात् इससे भौतिक व आध्यात्मिक दोनों प्रकार की सम्पदाएँ प्राप्त होती हैं, वह विकास की उच्चतम अवस्था तक पहुँच सकता है।

प्रश्नोपनिषद् के पाँचवें प्रश्न में शिवि पुत्र सत्यकाम ने महर्षि पिप्पलाद से प्रश्न किया—भगवन् ! जो मनुष्य शरीरान्त होने तक ओंकार का भले प्रकार ध्यान करता है, वह उसके द्वारा किस लोक पर विजय प्राप्त करता है, यह बताइये। (१) महर्षि बोले—' हे सत्यकाम ! यह ओंकार परब्रह्म है और यही अपर ब्रह्म भी है, ऐसा जानने वाला मनुष्य इस एक प्रयास से ही ब्रह्म के एक रूप को पा लेता है। (२) यदि वह एक मात्रा वाले ओंकार का ही ध्यान करे तो वह उसके द्वारा शीघ्र ही पृथ्वी पर प्रकट हो जाता है। ऋग्वेद की ऋचाऐं उसे मनुष्य देह की प्राप्ति कराती हैं। वह ब्रह्मचर्य से युक्त और श्रद्धान्वित होकर महिमा युक्त होता है। (३) यदि दो मात्राओं वाले ओंकार का ध्यान करे तो चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है यजुर्वेद के मन्त्र उसे वहाँ ले जाते हैं। वह वहाँ का सुख भोगकर फिर इस मनुष्य लोक में आ जाता है। (४) त्रिमात्रिक ओंकार के परमेश्वर का निरन्तर ध्यान करने वाला पुरुष तेजोमय सूर्यलोक को प्राप्त होता है। सर्प के केंचुली से छूटने के समान वह पापों से छूटकर सामवेद द्वारा ब्रह्मलोक में पहुँचाया जाता है। वह इन प्राणियों का श्रेष्ठ परमेश्वर से साक्षात्-कार कराता है। (५) ओंकार की तीन मात्राऐं परस्पर सम्बद्ध रहती हुई प्रयुक्त होने पर मनुष्य दृढ़ संकल्प वाला होता हुआ परमेश्वर का ज्ञाता बन जाता है।" (६) इससे साधक के सर्वतोमुखी कल्याण की ध्वनि निकलती है।

मुण्डकोपनिषद् में कहा है—"प्रणव धनुष और आत्मा वाण है, ब्रह्म उसका लक्ष्य बताया गया है। उसे अप्रमत्त मनुष्य ही बींध सकता

है। बाण से उस लक्ष्य को भेदकर उसी में तन्मय हो जाये (२।१।४) इसमें यह आश्वासन है कि धनुष रूपी प्रणव से ब्रह्मरूपी लक्ष्य का भेदन किया जा सकता है।

माण्डूक्योपनिषद् के ऋषि की अभिव्यक्ति है—"ओंकार मय अविनाशी ब्रह्म है, उसकी महिमा को प्रत्यक्ष लक्षित कराने वाला यह सम्पूर्ण विश्व है। भूत, भविष्यत्, वर्तमान आदि तीनों कालों वाला यह संसार ओंकार ही है और तीनों कालों से परे जो अन्य तत्व है, वह भी ओंकार ही है (१)।"

तैत्तिरीयोपनिषद् में शिक्षावल्ली के अष्टम अनुवाक में घोषणा है—"ॐ ब्रह्म है, ॐ ही विश्व है, ॐ ही अनुकृति है। हे गुरुदेव ! सुनाओ ! ॐ से ही साम गायक साम गान करते हैं, ॐ शोम कहते हुये ही शास्त्र पढ़े जाते हैं, ॐ से ही अध्वर्यु प्रतिगिर मन्त्र प्रारम्भ करता है, ॐ कहकर ही ब्रह्मा यज्ञ की अनुमति देता है, ॐ से ही अग्नि-होत्र की आज्ञा दी जाती है, ॐ का उच्चारण करता हुआ अध्ययन प्रारम्भ करने वाला ब्राह्मण ब्रह्म को प्राप्त करने की बात कहता है। ॐ के प्रभाव से ब्रह्म की प्राप्ति होती है।"

छान्दोग्योपनिषद् में प्रणव का विस्तृत विवेचन है। यथा— "ॐ रूप जो अक्षर यज्ञ में उद्गाता द्वारा सर्व प्रथम उच्चारण किया जाता है वही परमात्मा का नाम और प्रतीक है। समस्त स्थावर और जङ्गम प्राणियों और पदार्थों का रस पृथ्वी है, पृथ्वी का रस अथवा कारण जल है, जल का रस औषधियाँ हैं, औषधियों का रस यह मनुष्य देह है, मनुष्य का रस वाणी है, वाणी का सार ऋचा है, ऋचा का सार साम है और साम का सार उद्गीथ (ओंकार) है। यह ओंकार जो पृथ्वी आदि रसों की गणना में आठवाँ है, वह सब रसों का सार रूप परमात्मा का प्रतीक होने के कारण परमात्मा के समान ही उपासना करने योग्य है और इसे वैसी ही भावना से ग्रहण करना

चाहिए।" (१ । १ । १-३) "इस 'ॐ' से तीनों वेदों में बतलाई यज्ञीय विधि प्रचलित होती है। अध्वर्यु इसी 'ॐ' का मन्त्र सुनाता है, होता इसी की प्रशंसा करता है और उद्‌गाता इसी का गान करता है। यह सब कर्म इस अक्षर की पूजा के निमित्त ही किये जाते हैं।' (१ । १ । ६) "जो ओंकार के रहस्य को समझने वाले का अहित साधन करना चाहता है, वह उसके प्रभाव से स्वयं ही मिट्‌टी के ढेले की तरह छिन्न-भिन्न हो जाता है। इस रहस्य को जानने वाले को अभेद्य पाषाणों के समान ही समझना चाहिए।" (१ । २ । ८)। ओंकार उपासना से साधक में इतनी आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न हो जाती है कि आसुरी वृत्तियों के सङ्गठित आक्रमणों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता वरन् वह असुरता स्वयं इस चट्‌टान से टकरा कर चकनाचूर हो जाती है। 'ॐ' पाप वृत्तियों से बचने का एक कवच है। इसे पहन कर शत्रुओं से सुरक्षित रहा जा सकता है। यह ऐसी ढाल है जिस पर तीव्र अस्त्र-शस्त्र भी असफल रहते हैं, उल्टा आक्रमणकारी पर ही चोट लगती है।

अमृता व निर्भयता की प्राप्ति :

इसी भाव को एक आख्यान द्वारा और पुष्ट किया गया है। देवों ने मृत्यु से डरकर वेदों में प्रवेश किया और वेदों ने मन्त्रो द्वारा अपने को आच्छादित कर लिया। मृत्यु ने उन्हें देख लिया। देवों को भी जब यह बात ज्ञात हो गई तो उन्होंने ऋक्, यजु, साम के कर्मों को त्याग कर स्वर 'ॐ' में प्रवेश किया। तब मृत्यु उनका कुछ न बिग.ड़ सकी। इसका अभिप्राय यह है कि जब वह वैदिक कर्मकाण्ड के स्थान पर शुद्ध परब्रह्म की उपासना करने लगे तो वह अभय हो गये। इसी लिये छान्दोग्योपनिषद् (१ । ४ । ४-५) में स्पष्ट कहा है "ॐ" यद्यपि स्वर है पर वह ब्रह्म का प्रतीक है और इसलिये उसमें प्रवेश कर लेने से देवगण अमर और अभय हो गये।" फिर अगले (५) श्लोक में इसे

एक सिद्धान्त रूप में प्रतिपादित करते हुए साहसपूर्वक कहा है—"जो कोई व्यक्ति इस ओंकार को देवगण की तरह अमृत और अभय गुण वाला जानकर उपासना करता है और इस परमात्मा स्वरूप स्वर 'ॐ' में प्रवेश कर जाता है, वह भी मृत्यु के भय से रहित हो जाता है।" इस स्थिति तक पहुँचने का अभिप्राय है–आत्मिक उत्थान की उच्च भूमिका में अवस्थित होना है। स्पष्ट है कि ओंकार उपासना से आत्मिक शक्तियों का विकास होता है।

अनन्त और परब्रह्म रूप :

ब्रह्म और 'ॐ' की एकता का बोध कराते हुये मैत्रायण्युनिषद (५।३) में कहा है—"ब्रह्म के दो ही स्वरूप हैं, मूर्त और अमूर्त। उनमें से जो मूर्त है, वह असत्य है और अमूर्त है, वह सत्य है। वही ब्रह्म है। जो ब्रह्म है, वही ज्योति है, जो ज्योति है, वही आदित्य है, वही 'ॐ' है, वही आत्मा है। 'ॐ' में सब कुछ अवस्थित है। 'इसे समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाला भी बताया गया है।' 'ॐ' पवित्र अक्षर हैं। इस अक्षर को जानकर मनुष्य जिसकी इच्छा करे, वह उसे प्राप्त हो जाता है।" (५।४)। अगले श्लोक में 'ॐ' के स्थूल शरीर की व्याख्या करते हुए कहा गया है—"अग्नि, वायु और सूर्य के रूप में यह प्रकाश वाला है, रुद्र और विष्णु के रूप में अधिपति हैं, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आह्वनीय यह उसके ३ मुख हैं, ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद को वह जानता है। भूः, भुवः और स्वः यह तीन उसके लोक हैं, भूत, भविष्य और वर्तमान उसके काल हैं, प्राण अग्नि और आदित्य उसके प्रताप हैं, अन्न, जल और चन्द्रमा उसके पोषण हैं, बुद्धि, मन और अहंकार उसके चेतन हैं और प्राण, अपान तथा व्यान उसके प्राण हैं।"

अथर्वशिर उपनिषद् में कहा है—जो 'ॐकार' है, वह प्रणव है, जो प्रणव है, वही सर्वव्यापी है, जो सर्वव्यापी है, वही अनन्त है,

जो अनन्त है, वही तारक रूप है, जो तारक रूप है, वही सूक्ष्म रूप है, जो सूक्ष्म रूप है वही शुक्ल है,जो शुक्ल है वही विद्युत रूप है, जो विद्युत है, वही परब्रह्म रूप है।"

ॐकार में क्या-क्या स्थित है, इसका विवेचन करते हुए प्रणवोपनिषद् में कहा है—"उस ॐकार में तीन देव, तीनों लोक, वेद जप तथा तीन अग्नियाँ कही गई हैं, साथ ही तीनों मात्रा अर्धमात्रा भी उसमें निहित हैं क्योंकि वह उस परम शिवतत्व का ही स्वरूप है (१—३)। ऋग्वेद, गार्हपत्य (अग्नि), पृथ्वी व ब्रह्म ये ३ तत्व ब्रह्मवेत्ताओं ने 'ॐ' के तीन अक्षर 'अ', 'उ' 'म्' में से जो पहला अक्षर 'अ' है, उसमें स्थित बताये हैं, इन सबका स्वरूप वह 'अ' है। (४) यजुर्वेद, आकाश दक्षिणाग्नि तथा देवश्रेष्ठ भगवान् विष्णु का स्वरूप 'ऊ'कार को कहा गया है। (५) सामवेद, स्वर्ग, आह्वनीय (अग्नि), परम देव शङ्कर का स्वरूप 'म' कार को बताया गया है।" (६) तीन देवों, तीन वेदों और तीन अग्नियों की उपासना से जो पुण्य प्राप्त होता है, वह 'ॐ'कार की उपासना से हो जाता है।

मोक्ष प्राप्ति :

मोक्षपद का आश्वासन देते हुए 'नादविन्दूपनिषद्' का वचन है "यदि प्रणव को हम हंस मानें तो 'अकार' उसका दाहिना पंख, 'उकार' बाँया पंख, 'मकार' उसकी पूँछ और अर्द्ध मात्रा सिर है। तब सतोगुण शरीर और रजोगुण व तमोगुण—दोनों पैर कहलायेंगे। लोकों की स्थिति इस प्रकार होगी कि नाभि देश में महर्लोक, कटिदेश में स्वर्लोक, जानुओं में भुवर्लोक और पैरों में भूलोक होगा। इसी प्रकार से जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक उसके हृदय, कण्ठ और ललाट व भौंहों के बीच में स्थित होंगे। इस प्रणय रूपी हंस पर चढ़कर, उसके अनुष्ठान व ध्यान की विधि से यह साधक मनन व चिन्तन करता हुआ हजारों पापों से निवृत्त होकर मोक्ष पद को प्राप्त हो जाता है (१—५)।

इसी उपनिषद् के ६ से १६ श्लोकों में ॐकार की महिमा का गान करते हुए कहा गया है 'ॐकार' के अग्नि देवता हैं। अग्नि के मण्डल की तरह उसका रूप है और आग्नेयी ही उसकी पहली मात्रा है। 'उकार' के वायु देवता हैं। वायु-मण्डल की तरह ही उसका रूप है और वायव्या ही उसकी दूसरी मात्रा है। 'मकार' के देवता सूर्य हैं। सूर्य के मण्डल की तरह उसका रूप है और यह तीसरी उत्तर मात्रा है। चौथी अर्ध मात्रा वारुणी के देवता वरुण हैं। इन सभी प्रकार की मात्राओं में तीन-तीन सुन्दर मुख हैं। इसलिये प्रणव को द्वादश-कलात्मक कहा जाता है। धारणा, ध्यान और समाधि ही उसे जानने के साधन हैं।"

गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है—"सब वेदों में प्रणव अर्थात् 'ॐकार' मैं हूँ! (६ । ८) (९ । १६)। गीता के (१७ । २४) श्लोक में कहा है "ब्रह्मवादी लोगों के यज्ञ, दान, तप तथा अन्य शास्त्रोक्त कर्म सदा 'ॐ' के उच्चार के साथ हुआ करते हैं।" गीता में एक और स्थान पर परम गति का लाभ बताते हुए कहा है—"एकाक्षर ब्रह्मरूप 'ॐ' का उच्चारण तथा परमात्मा का चिन्तन करता हुआ जो शरीर त्याग करता है, वह परमगति को पाता है।

योग दर्शन की घोषणा है—"प्रणव का जप और अर्थ विचारने से समाधि लाभ होता है।" (१ । २८) क्योंकि इससे चित्त चंचलता रहित हो जाता है।" ओंकार की उपेक्षा करने वाले की देवी भागवत में निन्दा की है—"जो ब्रह्मण ओंकार को पिता रूप में और गायत्री को माता रूप में नहीं जानता, उसका हीन जन्म समझना चाहिये।" भगवान् मनु ने (२।६४) आदेश दिया है कि—"वेद के अध्ययन के आरम्भ और अंत में 'ॐ' का उच्चारण आवश्यक है।"

महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है—वेदों का आदि अक्षर 'ॐ' ब्रह्मरूप है। इसमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश प्रतिष्ठित हैं। सर्ववेत्ता

वही है जो प्रणव को जानता है। यह सब प्रकार के योग साधनों का सार है। इसको जानना आवश्यक है। को प्रणव को जान लेता है, उसे और कुछ जानने की आवश्यकता नहीं रहती। मन्त्र पाठ से पूर्व 'ॐ' का उच्चारण आवश्यक है। सारे मन्त्र ओंकार से मिलकर ही फल प्रदान करते हैं।" स्वामी रामतीर्थ ने एक स्थान पर लिखा है "विज्ञान पर धिक्कार है, यदि वह पवित्र शब्द 'ॐ' के प्रभाव सम्बन्धी सद्ज्ञान के विरुद्ध जाता है।"

पुत्र प्राप्ति :

छान्दोग्योपनिषद् (१ । ५ । १-२) में सूर्य को प्रणव कहकर उसकी ध्यान साधना से पुत्र प्राप्ति का लाभ बताया गया है। "कौषीतकि ऋषि ने अपने पुत्र को एक समय बताया मैंने इसी आदित्य का ध्यान किया। इससे तू मेरा एक पुत्र हुआ। तू भी जो सूर्य रश्मियों का इस प्रकार ध्यान करेगा तो तेरे अनेक पुत्र होंगे।" जो सूर्य का ध्यान करते हुए प्रणव की साधना करता है, उसे पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है क्योंकि इसी श्लोक में कहा है कि सूर्य भी प्रणव है, वह गमन करता हुआ ओंकार का ही उच्चारण करता है।

इस प्रकार से शास्त्रकारों ने 'ॐ' की उपासना से भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के लाभों का वर्णन किया है।

सुप्त शक्तियों का जागरण :

पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने श्रद्धा से नहीं, जिज्ञासा की दृष्टि से इस पर खोजें की हैं। The Practical Yoga (L. N. & Co., London) पुस्तक में क्रियात्मक अनुभव के आधार पर विद्वान लेखक ने लिखा है "भारतीय संस्कृति और साहित्य में रुचि रखने वाले समस्त पाश्चात्यों का ध्यान 'ॐ' के पवित्र शब्द ने अपनी ओर आकर्षित किया है। इस शब्द के उच्चारण से जो कम्पन उत्पन्न होते हैं, वह

इतने शक्तिशाली हैं कि यदि उन्हें बराबर जारी रखा जाय, तो वह एक बड़े विशाल भवन को गिराने की क्षमता रखते हैं। इस कथन पर विश्वास करना कठिन प्रतीत होता है जब तक कि इसे क्रियात्मक रूप से किया न जाये। परन्तु एक बार अनुभव करने पर इसकी सत्यता की प्रतीति होती है और इसे सुविधापूर्वक समझा जा सकता है। मैंने इन कम्पनों की शक्ति का अनुभव किया है और पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि जैसा मैंने कहा है, इसका वैसा ही परिणाम उपस्थित होगा। साधारण रीति से पढ़ने पर भी विद्यार्थी पर इसका प्रभाव पड़ता है परन्तु यदि इसका शास्त्रोक्त शुद्ध उच्चारण किया जाये तो स्थूल शरीर के प्रत्येक परमाणु में उत्तेजना उत्पन्न करके उसमें परिवर्तन लाता है। नए कम्पनों से नई दशा उपस्थित होती है और सुप्त शक्तियाँ जाग्रत हो उठती हैं।"

सूक्ष्म प्रकृति की आदि ध्वनि—

ओंकार से शक्ति-कोषों के जागरण की वैज्ञानिक प्रक्रिया का वर्णन ऊपर किया गया है। सर्व प्रथम इसका अनुभव भारतीय योगियों ने किया था। समाधि अवस्था में वह अनुभव करते थे कि प्रकृति के उच्च अन्तराल में निरन्तर एक ध्वनि होती रहती है। इस ध्वनि को उन्होंने 'ॐ' रूप में परिणित किया। स्वर विज्ञान के आचार्यों ने उसी ध्वनि से सूक्ष्म प्रकृति से एकता स्थापित करने का विधान बनाया। यह एकता ही अपार शक्ति और सामर्थ्यों का अवतरण करने वाली है। जिस तरह घड़ियाल पर चोट मारने से एक झन-झनाहट सी उत्पन्न होती है, उसी तरह 'ॐ' के उच्चारण से एक ऐसी स्वर लहरी उत्पन्न होती है जो क्षण मात्र में सारे ब्रह्माण्ड में फैल जाती है और सृष्टि के प्रत्येक अणु से अपना सम्बन्ध जोड़ लेती है क्योंकि वह भी निरन्तर यही ध्वनि करते हुये क्रियाशील रहते हैं। एकता और सङ्गठन ही शक्ति और सिद्धि का रूप है। 'ॐ' से जाग्रत होने वाली शक्तियों का

कारण उसकी ध्वनि से उत्पन्न विशिष्ट प्रकार के कम्पन ही हैं जो विकास और प्रगति का आधार बनते हैं।

'ॐ' की साधना से शक्ति कोषों का जागरण, भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास व अन्य विभिन्न प्रकार की सिद्धियों का जो वर्णन शास्त्रों में किया गया है, उनको प्राप्त करने के लिये विशिष्ट विधि व्यवस्था और तपश्चर्या की आवश्यकता है। इसका निर्देश विभिन्न शास्त्रों में अलग-अलग ढङ्ग से किया गया है जो इस प्रकार है:—

अर्थ चिंतन सहित जप :

योग-दर्शन (१ । २८) में महर्षि पतञ्जलि ने लिखा है—"प्रणव का जप और अर्थ विचारने से समाधि लाभ होता है।" महर्षि का आदेश है कि प्रणव का केवल जप ही पर्याप्त नहीं है वरन् जप के साथ उसका अर्थ चिन्तन भी आवश्यक है। उससे चित्त की चञ्चलता नष्ट होती है। 'ॐ' में तीन अक्षर हैं—अ, उ, म। 'अकार' से विराट् अग्नि, विष्णु आदि का अर्थ परिलक्षित होता है। 'उकार' से हिरण्य-गर्भ, शङ्कर, तैजस आदि का अभिप्राय लिया जाता है। 'मकार' से ईश्वर प्राप्ति, प्रकृति आदि का बोध होता है। इसका स्थूल अर्थ इस तरह समझा जा सकता है–'अ' से सृष्टि की उत्पत्ति, 'उ' से स्थिति और 'म' से प्रलय का अर्थ ध्वनित होता है। यह 'ॐ' का स्वाभाविक अर्थ है क्योंकि 'अ' के उच्चारण से मुख खुल जाता है, 'उ' से वह विस्तृत होता है और 'म' से वह बन्द हो जाता है। प्रणवोपनिषद् के अनुसार 'अ' में ऋग्वेद, गार्हपत्य (अग्नि), पृथिवी व ब्रह्मा, 'उ' में यजुर्वेद, आकाश, दक्षिणाग्नि और देव श्रेष्ठ भगवान् विष्णु और 'म' में सामवेद, स्वर्ग, आहवनीय (अग्नि) और परम देव शंकर स्थित हैं। 'ॐ' की जप साधना के साथ इस प्रकार उसका अर्थ चिंतन करना योग दर्शन का अभिप्राय है।

प्राणायाम सहित जप विधि—

अमृतनादोपनिषद् (१६–२०) में साधना का स्थान, आसन, दिशा और प्राणायाम की विधि का वर्णन करते हुए कहा गया है—"स्वच्छ एवं दोष-रहित भू-भाग में पद्मासन, स्वस्तिकासन भद्रासन में से किसी एक योगासन को लगाकर उत्तराभिमुख बैठें और मानसिक रक्षा करता हुआ जप करे। फिर एक अंगुली से नाक के एक छिद्र को बन्द कर, खुले छिद्र से वायु को खींचे। फिर दोनों छिद्रों को बन्द कर वायु को रोके और एकाक्षर ब्रह्म रूप तेजोमय शब्द प्रणव का चिन्तन करें और इसी का चिन्तन करते हुए धीरे-धीरे वायु को निकाल दें। इस प्रकार प्रणव रूप दिव्य मन्त्र के अनेकों बार प्रयोग द्वारा चित्त का मल दूर कर देना चाहिये। इस प्रकार प्रणव का चिन्तन करे।' उसी उपनिषद् के २३ वें श्लोक में फल की सूचना देते हुए बताया गया है कि—"इस योग का अभ्यास नियत योजना के अनुसार करना चाहिये। यह ताल वृक्ष के समान कुछ समय में ही फलदायक है।"

ध्यान साधना :

ध्यान द्वारा ओज के अवतरण के लिये सर्वश्रेष्ठ माध्यम 'ॐ' को ही मुण्डकोपनिषद् (२ । २ । ६) में बताया गया है कि—"इस परमेश्वर का 'ॐ' के उच्चारण द्वारा ही ध्यान करना चाहिये। अज्ञानान्धकार से परे होने, भवसिन्धु से पार होकर प्रभु प्राप्ति के लिये यह आवश्यक है।" तप और तन्मयता को प्रणव साधना की सफलता के लिये आवश्यक माना गया है। "उपनिषद प्रतिपादित ओंकार रूप धनुष को ग्रहण कर उस पर तप द्वारा तीक्ष्ण हुए बाण को चढ़ाकर खींचें और अविनाशी ब्रह्म को लक्ष्य मानता हुआ उसे बेध डालें। प्रणव धनुष और आत्मा बाण है, ब्रह्म उसका लक्ष्य बताया गया है।

उसे अप्रमत्त मनुष्य ही बींध सकता है। बाण से उसके लक्ष्य भेदकर उसी में तन्मय हो जाए।" (मुण्डकोपनिषद् २।२।३-४)

सूर्य से सम्बन्ध—

मैत्रायण्युपनिषद् में ओंकार उपासना को सूर्य से सम्बन्धित माना गया है। छान्दोग्योपनिषद् (१ । ३ । १२) में आदित्य रूप देवता से सम्बन्धित ओंकार उपासना का निर्देश है और लिखा है कि—"यह जो प्रसिद्ध आदित्य (सूर्य) तपता है, वह ओंकार की उपासना करता है। उदय होकर समस्त मनुष्यों के लिये उच्च स्वर से उद्गीथ गान करता है। सूर्य के बिना अन्न पककर तैयार नहीं हो सकता और उसके बिना लोग प्राण धारण नहीं कर सकते। इस प्रकार उसका यह कार्य उद्गीथ स्वय ही है। प्राण और सूर्य दोनों रूपों में प्राण की ओंकार के रूप में उपासना करनी चाहिये।

मैत्रायण्युपनिषद् (५ । ४) में ओंकार से आदित्य उपासना का वर्णन है। "यह जो सूर्य है, वह इस 'ॐ' अक्षर का ही स्वरूप है। इसलिये 'ॐ' अक्षर से ही उसकी सदैव प्रार्थना करनी चाहिये। इसी से एकमात्र उसके रस को समझा जा सकता है। इस प्रकार श्रुति कहती है—"यही पवित्र अक्षर है। इस अक्षर को जानकर मनुष्य जिस की इच्छा करे, वह उसे प्राप्त हो जाता है।" इसी उपनिषद् के पञ्चम प्रपाठक के ३ वें श्लोक में कहा है—"जो ब्रह्म है, वही ज्योति है, जो ज्योति है, वही आदित्य है, वही 'ॐ' है, वही आत्मा है। इसी में सब कुछ अवस्थित है। ऐसा श्रुति में कहा गया है अथवा आदित्य ही 'ॐ' है, ऐसा ध्यान करते हुए पुरुष को चाहिए कि वह आत्मा का उसके साथ सङ्गठन करे।"

नियम—

गोपथ ब्राह्मण (१।१।२२) के अनुसार "साधक उस ओंकार का एक हजार बार जप करे, उसका मुख पूर्व की ओर हो, साधनाकाल

में मौन रहे. तीन रात्रियों का उपवास करे, आसन कुशा का हो। इस तरह करने से उसके सब काम सिद्ध होते हैं।"

गीता प्रणव साधना के साथ इन्द्रिय संयम को आवश्यक मानती है। यथा "सब इन्द्रिय रूपी द्वारों का सञ्चय कर और मन का हृदय में निरोध कर मस्तक में प्राण ले जाकर समाधि योग में स्थिर होने वाला इस एकाक्षर ब्रह्म 'ॐ' का जप और मेरा स्मरण करता हुआ जो मनुष्य देह छोड़कर जाता है, उसे उत्तम गति मिलती है।" (८।१२, १३)

नाद साधना—

'नादविन्दूपनिषद्' में ॐकार उपासना के साथ नाद साधना का समावेश किया है—"योगी को सिद्धासन में बैठना चाहिये, वैष्णवी मुद्रा धारण करनी चाहिये ओर अनाहत ध्वनि को दायें कान में सुनना चाहिए। इस तरह नाद का किया गया अभ्यास बाहर की ध्वनियों को ढक लेता है। इस तरह से 'अकार' और 'मकार' के दोनों पक्षों पर विजय प्राप्त करके धीरे-धीरे सारे प्रणव को जीते। इस प्रकार करने पर साधक तुर्य पद को प्राप्त कर लेता है अर्थात् आत्म साक्षात्कार कर लेता है।" (३१–३२)

विशिष्ट नियम :

अमृतनादोपनिषद् में विशेष नियमों के पालन का भी आग्रह किया गया है। "योगी के लिए भय, आलस्य, अधिक निद्रा, अधिक भोजन, अधिक जागरण, निराहार रहना और क्रोध करना त्याज्य हैं। इस प्रकार नियम पालन पूर्वक नित्य अभ्याम करने वाला योगी स्वयं ज्ञान प्राप्त कर लेता है। चार मास में वह देव दर्शन करने लगता है, पाँच मास में देवताओं के समान सामर्थ्य वाला होता है और छः मास में यदि वह चाहे तो जीवन मुक्त अवस्था को पा लेता है।" (२६–२९)

यदि उपरोक्त निर्देशित विधियों के अनुसार 'ॐकार' उपासना की जाये और नियम उपनियमों का पालन किया जाये तो कोई कारण नहीं कि अभीष्ट लाभ की सिद्धि न हो ।

शक्ति और सिद्धि का भण्डार :

मन्त्र शिरोमणि 'ॐ' शक्ति और सिद्धि दाता है। जीवन में निराश और उत्साहहीन व्यक्तियों को नवजीवन और नई प्रेरणा देना इसकी विशेषता है। सङ्कट और विपत्ति में आत्म-विश्वास को जाग्रत करना इसका स्वभाव है। अज्ञान और अन्धकार का तो यह शत्रु है क्योंकि प्रकाश की करोड़ों ज्योतियाँ इससे जुड़ी रहती हैं। शक्ति का यह अवतार है, इसके प्रत्येक उच्चारण से शक्ति का विकास होता है। अमरता की अनुभूति का यह सोम रस है। इसके पान बिना वह पद प्राप्त करना असम्भव है। समस्त सिद्धियाँ इसकी द्वारपाल हैं और हर क्षण इसकी आज्ञा की प्रतीक्षा में रहती हैं। जीवन का कायाकल्प करना, उसमें नवस्फूर्ति, नवजीवन और नवोत्साह भरते रहना इसका विशेष गुण है। अतः हर क्षेत्र में प्रगति चाहने वाले साधक के लिये इसका अवलम्बन आवश्यक है। क्योंकि 'ॐ' में बल, शक्ति, जीवन और बुद्धि निहित है और अनंत दैवी शक्तियाँ इसके आह्वान पर उपस्थित होती हैं। इस तरह से वह शक्ति और सिद्धि का आगार-सा बन जाता है।

महामंत्र-गायत्री

सद् आचार व विचार की प्रतीक :

गायत्री को वेद माता, जगत माता कहते हैं। वह सद्बुद्धि व सद्विचारों की प्रदाता है। जीवन के हर मोड़ पर वह हमारी सहायता करती है। विभिन्न परिस्थितियों में भी हमारा साथ नहीं छोड़ती। कुमार्ग से बचने और सुमार्ग की ओर अग्रसर होने की निरन्तर प्रेरणा देती है। प्राचीनकाल में ऋषि, मुनि महापुरुषों व सन्त महात्माओं सभी ने उसकी महाशक्ति से अपने जीवन को सार्थक किया। इस जगतमाता का ध्यान करते हुए सबसे पहले यही प्रेरणा मिलती है कि नारी जाति को मातृवत् जानो, उसे माता, बहिन और पुत्री की पवित्र दृष्टि से देखो। गायत्री साधक इसका अभ्यास करता है। बाजार में जहाँ कहीं भी उसे नारी के दर्शन होते हैं, वह उसमें गायत्री माता के ही दर्शन करता है। यह साधना उसे उच्च आध्यात्मिक भूमिका में प्रविष्ट करती है। आत्मिक शक्तियों के स्रोत उसके लिये खुल जाते हैं। वह समाज में एक आदर्श उपस्थित करता है। सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने में सहायक सिद्ध होता है। मन्दिर में गायत्री माता के दर्शन करते समय या चित्र आदि को सामने रखकर साधना में बैठते समय यदि नारी सम्मान की प्रेरणा और भावना उत्पन्न नहीं होती तो समझना चाहिए कि उस गायत्री साधक पर माता प्रसन्न नहीं हुई है, उसकी गायत्री साधना अभी अधूरी है, अपरिपक्व है। साधना की सफलता तो इसी में है कि वह अपने इष्टदेव को हर प्राणी में देखे, कण-कण में

उसके दर्शन करे, उसके अतिरिक्त और कुछ दिखाई ही न दे, एकीभाव की प्राप्ति हो।

गायत्री उपासना सद् आचार व विचार की शिक्षा देती है, सुपथ पर चलते रहने की प्रेरणा देती है। साधना से सद्बुद्धि रूपी शक्तियों की वृद्धि होती है जिससे बुरे विचार व भावनायें उस स्थान को छोड़ देती हैं। साधक का मन निर्मल व पवित्र हो जाता है। गायत्री मन्त्र इन्द्रिय संयम का पाठ पढ़ाता है। यही साधक की मानसिक व आत्मिक शक्तियों को बढ़ाने का मार्ग है। शक्ति बढ़ने से पाप और कुविचार नहीं रहते। निर्बल मन में ही वह प्रवेश करने का साहस करते हैं। गायत्री मन को सबल बनाने का अमोघ अस्त्र है, पापों से बचाता है।

सर्वश्रेष्ठ उपासना :

गायत्री बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी है। यह विश्व की सर्वश्रेष्ठ प्रार्थना है। इसे गुरु मन्त्र भी कहा जाता है। भारतीय ऋषियों ने इसे सर्वश्रेष्ठ जप, तप और ध्यान घोषित किया था तथा प्रत्येक द्विज के लिये इसकी साधना का अनिवार्य विधान बनाया गया था। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बालकों को ८, १०, १२ वर्ष की आयु में यज्ञोपवीत पहनाया जाता था। उस सामूहिक आयोजन में गायत्री मन्त्र की ही दीक्षा गुरु देता था और जीवन पर्यन्त इसे अपनाये रखने का आदेश देता था। यज्ञोपवीत गायत्री की ही मूर्ति है। गायत्री भारतीयों का इतना प्रिय इष्ट रहा है कि एक क्षण के लिये भी वह इससे अलग नहीं रह सकते, वह हर समय इसे छाती से चिपटाये रहते हैं। प्राचीन काल में भारत के प्रत्येक नर-नारी का यही इष्ट और उपास्य था, इसी से शक्ति प्राप्त करके गृहस्थ, विरक्त, सन्त, महात्मा, ऋषि, महर्षि सभी श्रेणियों के साधक जीवन को ऊँचा उठाने में समर्थ होते थे।

गायत्री सनातन अनादिकाल का मन्त्र है। पुराणों में कथा

आती है कि सृष्टि का निर्माण करने वाले ब्रह्मा को आकाशवाणी से गायत्री मन्त्र प्राप्त हुआ था। साथ ही यह भी आदेश मिला कि इसी की साधना से सृष्टि निर्माण की शक्ति प्राप्त होगी। ब्रह्मा ने दीर्घकाल तक घोर तपश्चर्या की और तब वह सृष्टि रचना करने में समर्थ हुए। विश्वामित्र गायत्री मन्त्र के ऋषि हैं। उन्होंने गायत्री की सर्वाधिक तपश्चर्या की थी। उन्होंने अपने तप के बल पर नई सृष्टि की रचना की थी। इतने महानतम और दुस्तर कार्य को सम्पादित करने की क्षमता गायत्री मन्त्र की साधना में है।

गायत्री के चार चरण हैं। चारों वेदों को इन्हीं की व्याख्या माना जाता है। तभी गायत्री को वेदमाता के सम्मानित पद से विभूषित किया गया। ब्रह्मा के चार मुखों का अभिप्राय भी यही है। जिसने गायत्री को जान लिया, उसने चारों वेदों के मर्म को समझ लिया। यह माना जाता है कि गायत्री मन्त्र के २४ अक्षरों में बीज रूप से वह सभी शिक्षाएँ ओत-प्रोत हैं जो चारों वेदों में उपलब्ध होती हैं। विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि गायत्री मन्त्र में अनेक प्रकार के दिव्य अस्त्र-शस्त्र, बहुमूल्य धातुएँ बनाना, ओषधियाँ, रसायन, वायुयान जैसे यन्त्र बनाना, प्राण विद्या, कुण्डलिनी चक्र, योग सिद्धियाँ, दश महाविद्या, शाप और वरदान का ज्ञान-विज्ञान निहित है।

शास्त्रों में गायत्री महिमा—

यही कारण है कि हमारे शास्त्रों में स्थान-स्थान पर गायत्री की महिमा का गान किया गया है। अपौरुषेय वेद और उसके श्रुति स्वरूप उपनिषद् आदि के सर्वोच्च सिद्धान्तों के अनुसार गायत्री ही सावित्री, ब्रह्मविद्या, वेद माता और शब्द ब्रह्म आदि गौरवमय नामों से पुकारी जाती है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी गीता में कहा है—"गायत्री

छन्द सामहम्" समस्त छन्दों में मैं ही गायत्री हूँ। अग्नि पुराण में अग्निदेव ने कहा है—"सन्ध्या विधि परिपूर्ण करने के पश्चात् गायत्री का स्मरण और जप करना, गायमान होने से अर्थात् उसकी उपासना, जप करने से वह गुरु, शिष्य, स्त्री और प्राणी सबका उद्धार करती है।" सावित्र्युपनिषत् की घोषणा है—"इस सावित्री देवी को जो स्त्री और पुरुष गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए समझते हैं वे मृत्यु से छूट जाते हैं अर्थात् पुनः जन्म नहीं लेते।" (१३)।

अथर्ववेद (१९। ७१। १) में अनेकों प्रकार के भौतिक व आध्यात्मिक लाभों का वर्णन करते हुये कहा गया है—"स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम। आयुः, प्राणं, प्रजां पशुं, कीर्ति, द्रविणं, ब्रह्मवर्चसं, मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्।" अर्थात् "मेरे द्वारा स्तुति की गई वेद की माता मुझ स्तोता को आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन, ब्रह्मवर्य देती हुई ब्रह्मलोक के लिए गमन करें।" छान्दोग्योपनिषद् (३। १२) में गायत्री को परब्रह्म स्वरूप कहा गया है—"गायत्री तो सर्व भूत रूप है। जो कुछ स्थावर और जङ्गम है, सब गायत्री ही है, प्राण ही गायत्री हैं। यह जो सर्वभूत रूप गायत्री है, वही पृथ्वी रूप गायत्री है, वही इस पुरुष के शरीर में है जिससे उसमें प्राण स्थित हैं और उसे त्याग कर नहीं जाते।" महाभारत (३।२००।८३—८५) में गायत्री को ग्रह-बाधाओं को दूर करने का माध्यम बताया गया है।

कूर्म पुराण के अनुसार जब एक ओर गायत्री और दूसरी ओर चारों वेद तराजू के पलड़ों पर रखे गये तो गायत्री का पलड़ा भारी रहा। मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में गायत्री साधना की प्रशंसा करते हुए मनु ने कहा "जो ब्राह्मण प्रातःकाल प्रणव और व्याहृतियों सहित गायत्री की उपासना करता है, वह वेद के अध्ययन का पुण्य फल प्राप्त करता है। यदि वह गायत्री मन्त्र का जप प्रतिदिन एक हजार करे

तो जिस तरह सर्प अपनी केंचुली को छोड़ देता है, उसी तरह वह साधक महा पापों से छूट सकता है।" अग्नि पुराण में भी एक हजार जप से परम पद प्राप्ति का दृढ़ आश्वासन दिया गया है। महर्षि यम तो गायत्री की प्रशंसा में सबसे आगे बढ़ गये और कहा है "गायत्री से श्रेष्ठ कोई जप नहीं है, गायत्री से श्रेष्ठ कोई हवन नहीं।" विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार गायत्री हर साधक को अपनी भावना के अनुसार फल देती है, जो कामनाओं की पूर्ति चाहता है, उनकी कामना सिद्ध होती है। जो सद्गति चाहते हैं, उनका पथ प्रशस्त होता है और जो निष्काम साधना करते हैं, वह परब्रह्म को प्राप्त होते हैं।" महर्षि व्यास ने गायत्री को पापों की निवृत्ति का अपूर्व साधन माना है, तभी वह लिखते हैं—'दस बार गायत्री के उच्चारण से तीन दिन के छोटे पाप समाप्त हो जाते हैं, सौ बार के उच्चारण से अनेकों पापों से छुटकारा मिलता है। एक हजार के जप से उपपातक नष्ट हो जाते हैं एक लाख जप से महापातक दूर होते हैं। कोटि जप से साधक जो चाहे प्राप्त कर सकता है।"

सविता और गायत्री का स्पष्टीकरण—

गायत्री को सावित्री भी कहते हैं। सावित्री का सविता से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसका सावित्री नाम इसलिए पड़ा कि यह सविता का प्रसव करती है। सविता और सावित्री के सम्बन्ध को सावित्र्युपनिषत् में खोलकर समझाया गया है। वहाँ कहा गया है कि सविता किसे कहते हैं और सावित्री किसे? अग्नि सविता और पृथिवी सावित्री है। जहाँ अग्नि है, वहीं पृथिवी है और जहाँ पृथ्वी है, वहीं अग्नि है। वे दोनों योनि अर्थात् संसार के जन्मदाता हैं, वे एक युग्म हैं। फिर वरुण, जल, वायु, आकाश, यज्ञ छन्द, बादल विद्युत, सूर्य द्युलोक, चन्द्र, नक्षत्र, मन वाणी, पुरुष स्त्री आदि के उदाहरण देते हुए उन्हें

सविता और सावित्री कहा गया है और यह कहा है कि दोनों योनि हैं, एक युग्म है।

सविता और सावित्री के स्थूल सम्बन्धों पर जर्मन वैज्ञानिक खोज कर रहे हैं, क्योंकि सविता को सावित्री, गायत्री का देवता माना जाता है। वह यह खोज करना चाहते हैं कि गायत्री मन्त्र के उच्चारण से ईथर तत्व में जो कम्पन उत्पन्न होते हैं, उनसे सूर्य का क्या सम्बन्ध स्थापित होता है और गायत्री की ध्वनि से सूर्य की स्थूल शक्ति को किस प्रकार आकर्षित किया जा सकता है। इन खोजों के परिणाम आशाजनक ही निकलेंगे, ऐसी आशा है।

भारतीय योगियों की खोजें अधिक महत्वपूर्ण हैं। उनका कहना है कि गायत्री सूर्य भगवान् के आह्वान का मन्त्र है और जब उसका उच्चारण किया जाता है तभी जप करने वाले पर प्रकाश की एक बड़ी लपक स्थूल सूर्य में से पड़ती है। प्रार्थना के समय चाहे सूर्य उदय हो रहा हो, चाहे मध्याह्न का समय हो, चाहे सन्ध्या के समय अस्त हो रहा हो, चाहे मध्य रात्रि का समय हो, सूर्य की लपक सूक्ष्म रूप से जप करने वाले पर अवश्य पड़ती है। रात्रि के समय तो यह लपक पृथ्वी को भेद कर आती है। यह प्रकाश श्वेत वर्ण का कुछ सुनहरापन लिए होता है। जब उसके द्वारा जप करने वाले का हृदय भर उठता है, तब उसमें से इन्द्र धनुष जैसे सात रङ्ग बाहर निकलते हैं और जो कोई जप करने वाले के सम्मुख होता है, उस पर शुभ प्रभाव जप करने वाले के हृदय केन्द्र से ही बाहर नहीं निकलता वरन् उसकी प्रभा (ओरा) में से भी अर्द्ध चन्द्राकार में प्रकट होता है। प्रत्येक किरण के सामने कोई मनुष्य बैठा हो या आता हो तो वह उसके मस्तक और हृदय को स्पर्श करती है और इन अङ्गों के दोनों चक्रों को जाग्रत करती है। प्रत्येक किरण एक ही नहीं वरन् अनेक मनुष्यों पर प्रभाव डालती है। गायत्री मन्त्र का जप करने वाले की प्रभा

जितनी विस्तृत होती है, उतनी ही प्रभाव डालने वाली भी होती है। यदि एक बड़ा जन समुदाय सामूहिक रूप से मन्त्र का उच्चारण करता है तो उसके प्रभाव से प्रकाश की उतनी ही बड़ी लपक उत्पन्न होती है। इससे समस्त मन्त्र उच्चारण करने वाले एक रूप बन जाते हैं और उन सबमें से जो सात-सात किरणें निकलती हैं, उनका प्रभाव कितने बड़े भू-भाग पर पड़ता होगा, इसका अनुमान सहज में किया जा सकता है। कितने ही देशों के अध्यात्म विद्या विशारदों ने प्रयोग करके इसकी सत्यता को स्वयं अनुभव करके देखा है।

सविता सावित्री ही बला अतिबला विद्याएँ हैं—

सविता सावित्री विद्या को बाल्मीकि रामायण में बला और अतिबला नाम की दो शक्तिशाली विद्याओं के नाम से सम्बोधित किया गया है। इन दो विद्याओं की शिक्षा महर्षि विश्वामित्र ने राम लक्ष्मण को तब दी थी जब वह उन्हें अपने यज्ञ की रक्षार्थ राजा दशरथ से माँग कर ले गये थे। महर्षि विश्वामित्र ही इसके उत्तम उपदेष्टा हो सकते थे। वह सावित्री–गायत्री के ऋषि हैं। इसकी तपश्चर्या करके उन्होंने नई सृष्टि की रचना की सामर्थ्य प्राप्त की थी। सविता की शक्ति को उन्होंने अपने में केन्द्रीभूत कर लिया था। सावित्र्युपनिषत् में बला और अतिबला दो विद्याओं के ऋषि विराट् पुरुष और उनका छन्द और देवता गायत्री को कहा गया है। वास्तव में सविता सावित्री ही बला अतिबला है। सावित्र्युपनिषत् में कहा है—"मैं उन बला अतिबला विद्याओं के देवताओं को सदैव अनुभव करता हूँ जो सूर्य के समान चमकते हुए शरीर वाले, प्रणव स्वरूप, किरणात्मक, वेदों के सार रूप, पापों को समाप्त करने में दक्ष, सब तरह की सञ्जीवनी शक्तियों से अधिष्ठित हैं और जिनके हाथ अमृत से भरे हुए हैं।" यह सावित्री - गायत्री की शक्तियों के चमत्कार ही माने गये हैं।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार जब महर्षि ने राम और लक्ष्मण को इन दोनों विद्याओं की शिक्षा दी तो इसके सम्बन्ध में उन्होंने कहा "इन विद्याओं के प्रभाव तुम कभी थकावट का अनुभव नहीं करोगे, ज्वर से पीड़ित नहीं होगे, तुम्हारे रूप में किसी प्रकार की विकृति नहीं आ पायेगी। असावधानी या सुप्तावस्था में भी राक्षस तुम पर आक्रमण न कर सकेंगे। इस पृथ्वी पर बाहुबल में तुम अद्वितीय होगे। इन विद्याओं का अभ्यास करने पर तीनों लोकों में तुम्हारे समान कोई नहीं रहेगा। ज्ञान, बुद्धि. चातुर्य और सौभाग्य में तुम्हारी तुलना न हो सकेगी। यह दोनों विद्यायें सब प्रकार के ज्ञान की जननी हैं। इनसे भूख, प्यास पर विजय प्राप्त होगी और सम्पूर्ण जगत् की रक्षा की सामर्थ्य प्राप्त करोगे।" (बालकाण्ड १२।१३–१८)। यह सावित्री-गायत्री की महिमा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इन्हीं विद्याओं के बल पर ही राम लक्ष्मण ने यज्ञ की रक्षा की, हजारों राक्षसों को मारा, रावण जैसे शक्तिशाली राजा को परास्त किया और पृथ्वी पर असुरों का नाश किया। यह सावित्री द्वारा उनके बुद्धि कौशल का ही परिणाम था।

तात्विक व्याख्या—

विज्ञान की दृष्टि से भी गायत्री साधना अत्यन्त कल्याणकारी सिद्ध हुई है। वैज्ञानिक भी इसे मान चुके हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क या बुद्धि का उद्गम स्थान प्रकृति के सामूहिक मस्तिष्क या मन में अवस्थित है जिससे हम 'इलेक्ट्रोन' के रूप में शक्ति प्राप्त करते रहते हैं। सर जेम्स के अनुसार 'समय के प्रवाह के साथ ज्ञान का प्रवाह अध्यात्मवाद की ओर मुड़ता जाता है। अब हमको यह ब्रह्माण्ड एक बड़ी भारी मशीन के स्थान पर एक बड़े भारी विचार के रूप में दिखलाई पड़ता है। अब यह कल्पना समाप्त होती जा रही है कि हमारा मन या विचार शक्ति भौतिक

पदार्थ में अकस्मात उत्पन्न हो गई है। अब हम यह अनुमान करने लगे हैं कि पदार्थ का बनाने वाला और उसकी व्यवस्था चलाने वाला 'मन' ही होता है। इसका आशय यह नहीं कि मेरा 'मन' या तुम्हारा 'मन' इस कार्य को करता है वरन् इसका अर्थ यह है कि प्रकृति में 'मन' नाम का जो तत्व है, उसी के अणुओं से मेरा और तुम्हारा 'मन' उत्पन्न होता है।"

इस प्रकृति में रहने वाले मन का ही गायत्री मन्त्र में 'भर्ग' के रूप में वर्णन किया गया है और उसी का ध्यान करके सद्बुद्धि की इच्छा की जाती है। यदि इसके ध्यान और जप को विधि व्यवस्था से करें और अपने मन को "विश्वमन" के साथ एकाग्र करने का प्रयत्न करें तो निस्सन्देह हम कल्याण मार्ग पर अग्रसर हो सकते हैं।

एक विद्वान ने लिखा है कि गायत्री के तत्व रूप २४ वर्णों में २४ प्रकार की आत्म तत्वरूपता स्थित है। २४ तत्व के बाहर और भीतर रहकर उसे अपने अन्तर में स्थित करने से मनुष्य 'अन्तर्यामी' बन जाता है। सब ज्ञानों में यह अन्तर्यामी ज्ञान सर्वश्रेष्ठ है जो गायत्री की साधना द्वारा ही प्राप्त होता है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है— "जो स्वयं अदृष्ट, अश्रुत, अमूर्त, अविज्ञात है, वही अमृत स्वरूप है, और इसी कारण वह तुम्हारे, मेरे और अन्य सबके आत्माओं का पूज्य है। हे गौतम! इस विज्ञान के अतिरिक्त जो अन्य विज्ञान है, वह सब दुःखदायी है। अन्तर्यामी का विज्ञान ही यथार्थ विज्ञान है। गायत्री जिन २४ तत्वात्मक विज्ञानों का बोध कराती है, वह इस अन्तर्यामी विज्ञान के सहायक होने से ही श्रेष्ठ हैं।"

गायत्री के २४ अक्षर २४ देवताओं से सम्बन्धित हैं:

गायत्री में २४ अक्षर होते हैं। योगाचार्यों ने इन्हें २४ दिव्य शक्तियों की संज्ञा दी है और इन्हें २४ देवताओं की भूमि स्वीकार

किया है। योगी याज्ञवल्क्य में वर्णन है कि—"गायत्री के २४ अक्षरों में ५ कर्मेन्द्रिय, ५ ज्ञानेन्द्रिय पञ्चभूत, पाँच विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) और मन, बुद्धि, अहङ्कार और आत्मा—यह २४ तत्व स्थित हैं। इन २४ अक्षरों में से ही जीवात्मा की २४ शक्तियाँ उत्पन्न हुई हैं।

गायत्री के २४ अक्षर २४ देवताओं के प्रतीक हैं। उन देवताओं के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। वह अक्षर उन देवताओं—दिव्य शक्तियों को जाग्रत करते हैं अथवा उन्हें प्रसन्न करके उनका आशीर्वाद और वरदान प्राप्त करते हैं। २४ देवताओं की कृपा प्राप्त साधक कितना शक्तिशाली और सौभाग्यवान् हो सकता है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। योगी याज्ञवल्क्य में इन अक्षरों से सम्बन्धित देवताओं के नाम दिये गये हैं। वह क्रमश: इस प्रकार हैं—"गायत्री के २४ अक्षरों में पहले अक्षर का देवता अग्नि, दूसरे का वायु, तीसरे का सूर्य, चौथे का विद्युत, पाँचवें का यम, छठे का वरुण, सातवें का बृहस्पति, आठवें का पर्जन्य, नवें का इन्द्र, दसवें का गन्धर्व, ग्यारहवें का प्रणव, बारहवें का मित्रावरुण, तेरहवें का त्वष्टा, चौदहवें का चसु, पन्द्रहवें का मरुत, सोलहवें का सोम, सत्रहवें का अङ्गिरस, अठारहवें का विश्वेदेवा, उन्नीसवें का अश्विनीकुमार, बीसवें का प्रजापति, इक्कीसवें के सर्वदेव, बाईसवें का रुद्र, तेईसवें का ब्रह्मा और चौबीसवें अक्षर के देवता विष्णु भगवान हैं।" गायत्री जप से इन देवताओं से सामञ्जस्य और एकता स्थापित होती है। यह देवता पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों में हैं। २४ अक्षरों का प्रभाव पिण्ड स्थित २४ देवताओं पर तो पड़ता ही है। इन २४ अक्षरों के शक्तिशाली कम्पन जब ईथर तत्व के माध्यम से सारे विश्व में फैल जाते हैं तो ब्रह्माण्ड स्थित २४ देवताओं के साथ भी अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं, उन्हें प्रभावित करके अपने अनुकूल बनाते हैं। ब्रह्माण्ड की २४ शक्तियों से एकता

स्थापित होने पर साधक महान् शक्तिशाली आत्मा के रूप में परिणित हो जाता है। इन देवताओं की अनुकूलता को ही ऋद्धि सिद्धियों के नाम दिये गये हैं। २४ देवताओं से अपनी इच्छानुसार काम लेने वाला साधक तीव्र गति से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता जाता है। उसे रोकने की सामर्थ्य किसी भी आसुरी शक्ति में नहीं होती। जो आसुरी शक्ति उसे रोकने का साहस करती है, वह चकनाचूर हो जाती है। यह केवल गायत्री महाविद्या का ही प्रताप है कि इतनी अधिक संख्या में दिव्य शक्तियों का जागरण हो पाता है, तभी इसे हिन्दू धर्म का सर्वश्रेष्ठ मंत्र माना जाता है।

२४ शक्तियों का उद्भव :

गायत्री मन्त्र में २४ अक्षर होते हैं। मस्तिष्क हमारे शरीर और मन का नियन्त्रण केन्द्र है। इसके मूल से २४ ज्ञान तन्तु निकलते हैं जो सारे शरीर में फैल जाते हैं। यही शरीर की समस्त क्रियाओं का संचालन करते हैं। इन ज्ञान तन्तुओं का गायत्री के २४ अक्षरों से सूक्ष्म सम्बन्ध रहता है। जब गायत्री मन्त्र का उच्चारण किया जाता है तो योगियों को उसकी सूक्ष्म झंकार २४ स्थानों से सुनाई देती है। उस झंकार से यह ज्ञानतन्तु सशक्त होते हैं और निरन्तर क्रियाशील रहते हैं जिससे साधक हर क्षेत्र में दक्षता प्राप्त करता हुआ प्रगति पथ पर अग्रसर होता रहता है।

योगाचार्यों के अनुसार हमारे सूक्ष्म शरीर में ऐसे यौगिक केन्द्र, ग्रन्थियाँ, चक्र आदि होते हैं जो साधारण: सुप्त अवस्था में रहते हैं परन्तु उनको जाग्रत कर लेने से साधक महान् शक्तिशाली बन जाता है। गायत्री मन्त्र के अक्षरों का गठन इस चमत्कारी ढङ्ग से हुआ है कि एक के बाद एक अक्षर क्रमश: उन सूक्ष्म ग्रन्थियों पर आघात करता है, उन्हें जगाता है। यह ग्रन्थियाँ ही शक्ति का स्रोत मानी

जाती हैं। इन्हीं के जागरण से योगी अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं। गायत्री भी एक ऐसा सरल योग है जो साधक को एक शक्ति केन्द्र के रूप में परिणित कर देता है। इन शक्ति केन्द्रों को जाग्रत करके साधक धन्य हो जाता हैं।

इस प्रकार से गायत्री साधक एक शक्ति पुञ्ज बन जाता है। इससे वह अपने जीवन को उच्च से उच्च स्थिति तक उठाने की सामर्थ्य वाला हो जाता है। गायत्री के कौन से अक्षर से कौन सी शक्ति प्राप्त होती है इसका विवरण इस प्रकार है—पहले अक्षर से सफलता, दूसरे से पुरुषार्थ, तीसरे से पालन, चौथे से कल्याण, पाँचवें से योग, छठे से प्रेम, सातवें से लक्ष्मी, आठवें से तेजस्विता, नवों से सुरक्षा, दसवें से बुद्धि, ग्यारहवें से दमन, बारहवें से निष्ठा, तेरहवों से धारणा, चौदहवें से प्राण, पन्द्रहवों से संयम, सोलहवें से तप, सत्रहवों से दूरदर्शिता, अठारहवें से जागरण, उन्नीसवें से सृष्टि, बीसवें से सरलता, इक्कीसवें से साहस, तेईसवें से विवेक, चौबीसवें से सेवा भाव नाम की शक्तियों का उद्भव होता है। इन गुणों को पाकर वह क्षुद्रता से महानता और पशुता से देवत्व की भूमिका में कदम रखने का अधिकारी हो जाता है और अपने जीवन लक्ष्य को पूर्ण कर पाता है।

मंत्र शक्ति की वैज्ञानिक प्रक्रिया :

इन महान् शक्तियों के जागरण में स्वर विज्ञान का रहस्य छिपा है। स्वर में शक्ति होती है। उसके विधिवत् उच्चारण से मकान तक गिराये जा सकते हैं, अनेकों का उपचार किया जा सकता है, दूसरे के मन को मोहित किया चा सकता है। इनका प्रभाव मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी और कीट पतङ्ग तक पर देखा गया है। मन्त्र में एक विशेष विधि से अक्षरों का गठन किया होता है जो उच्चारण काल में कुछ

विशेष ग्रन्थियों को गुदगुदाते हैं, उनको जाग्रत करते हैं। वैज्ञानिक भाषा में यूँ कह सकते हैं कि जब गायत्री मंत्र का जप किया जाता है, तो उसमें गुथे अक्षरों के उच्चारण से कम्पन्न उत्पन्न होते हैं, जो विश्वव्यापी ईथर तत्व में फैल जाते हैं और कुछ ही क्षणों में अपनी विश्व परिक्रमा करके अपने उद्गम स्थान पर लौट आते हैं। विश्वयात्रा के दौरान उनका अपने अनुकूल कम्पनों से मिलन होता है। अनुकूलता ही मिलन और सङ्गठन का आधार है। अपने अनुकूल कम्पनों को वह अपने साथ लिए आते हैं जिससे शक्ति के विकास में सहायता मिलती है। गुप्त नाड़ी तन्तुओं में स्फुरण उत्पन्न होने से जो क्रम बद्ध यौगिक सङ्गीत का प्रवाह ईथर तत्व में चलने लगता है, वही मन्त्र शक्ति का कारण बनता है।

पुराण शास्त्रों में अनेकों प्रकार की सिद्धियों का वर्णन है। लोक में भी योगियों द्वारा विविध प्रकार के चमत्कार देखने को मिलते हैं। यह सिद्धियाँ कोई दैवी वरदान नहीं हैं, न देवताओं के आशीर्वाद से प्राप्त होती हैं। यह तो मन्त्र उच्चारण से सूक्ष्म शरीर में जो वैज्ञानिक प्रक्रियाओं का प्रवाह चलने लगता है, उसी का शुभ परिणाम है। गायत्री मंत्र के सम्बन्ध में भी यही तथ्य लागू होते हैं। इस प्रकार से गायत्री मंत्र का जप, अनुष्ठान एक वैज्ञानिक साधना है जिससे सुनिश्चित परिणाम उपस्थित होते हैं।

गायत्री की ब्रह्म सन्ध्या :

गायत्री की दैनिक जप साधना सन्ध्या वन्दन के बाद की जाती है। सन्ध्या की विभिन्न प्रकार की विधियाँ लोक में व्यवहार में देखी जाती हैं। यजुर्वेदीय, ऋग्वेदीय, सामवेदीय सन्ध्यायें प्रसिद्ध मानी हैं। दक्षिणात्यों की सन्ध्यायें, उत्तर वालों से भिन्नता रखती हैं। आजकल सनातन धर्म मतावलम्बी जनता में जो सन्ध्या व्यवहार में लाई

जाती है, वह श्रुति और स्मृति दोनों के मिले जुले मन्त्रों से बनाई गई है। आर्य समाज की सन्ध्या का इनसे अन्तर है। अपनी रुचि और मान्यता के अनुसार किसी भी विधि की सन्ध्या को स्वीकार किया जा सकता है। किसी भी विधि के अनुसार सन्ध्या करके गायत्री जप आरम्भ किया जा सकता है।

केवल गायत्री मन्त्र से भी सन्ध्या की जाती है जिसे "ब्रह्म सन्ध्या" की सज्ञा दी गई है। यह विधि सरल व प्रभाव-शाली है।

शास्त्रों में त्रिकाल "सन्ध्या" करने का विधान मिलता है। प्रातः व सायंकाल दो समय भी कर ली जाये तो उत्तम है। इसकी भी सुविधा न हो तो प्रातःकाल एक समय तो करनी ही चाहिए। ब्रह्म मुहूर्त में उठकर, शौच स्नानादि से निवृत्त होकर और धुले हुए पवित्र वस्त्र धारण करके साधना पर बैठना चाहिये। गायत्री का सविता से सम्बन्ध है। अतः जिधर सूर्य होगा, उधर ही मुख करके साधना करनी होगी। प्रातः पूर्व की ओर, सायं पश्चिम की ओर और दोपहर को उत्तर की ओर मुख करना चाहिये। आसन कुश का श्रेष्ठ माना गया है क्योंकि इससे साधना द्वारा शक्ति का पृथ्वीकरण नहीं हो पाता। स्थान एकान्त व शान्त होना चाहिए। वहाँ का वातावरण स्वच्छ व पवित्र हो। शरीर पर कम से कम वस्त्र हों। शीत ऋतु में कम्बल या शाल ओढ़ लेना चाहिये। गर्मियों में एक धोती पर्याप्त है। हाथ पोंछने के लिये कन्धे पर अँगोछा रख लेना चाहिये। सन्ध्या के स्थान को नित्य प्रति धो लिया जाये तो अच्छा है। धूप, अगरबत्ती जला लेने चाहिये ताकि वातावरण सुगन्धित हो जाए। पंच पात्र में जल भर कर रख लें। पालथी मार कर, मेरु दण्ड को सीधा रखकर सन्ध्या के लिये बैठें। विधान इस प्रकार है:—

१. आचमन :

आचमन का उद्देश्य त्रिविध ह्रीं, श्रीं, क्लीं शक्तियों को आकर्षित करके धारण करना है। इसका स्थूल रूप तो दायें हाथ की हथेली में थोड़ा जल लेकर तीन बार पान करने का है परन्तु यह केवल जल के पीने का विधान पर्याप्त नहीं है। इसका सूक्ष्म विधान ही महत्वपूर्ण है जिसमें भावना शक्ति का उपयोग किया जाता है। प्रथम आचमन के लिये दाये हाथ में जल लेकर गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते हुए यह भावना करें कि इससे 'ह्रीं' प्रधान सतोगुणी शक्ति जल में आगई है और मंत्र पूर्ण होने पर उसे पीते हुए भावना करें कि सतोगुण से ओत-प्रोत इस जल को पीकर मेरे अन्दर सतोगुण की मात्रा में वृद्धि हो रही है। इसी प्रकार से दूसरे व तीसरे आचमन के साथ रजोगुण व तमोगुणी शक्तियों के जल में प्रविष्ट होने की भावना करें। त्रिविध शक्तियों का आवाहन इसलिये किया जाता है कि गृहस्थ में इन सभी प्रकार की शक्तियों की नितांत आवश्यकता रहती है। कन्धे पर रखे अँगोछे से हाथ-मुँह पोंछ लेना चाहिए।

२. शिखा बन्धन :

शिखा को जल से भिगोकर उसमें ग्रन्थि लगा लेनी चाहिये। महिलायें भीगे हाथ से उसका स्पर्श कर लें। गाँठ लगाते हुए गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते रहना चाहिये और यह भावना करनी चाहिये कि मस्तिष्क के विद्युत के भण्डार में हर समय विचार संकल्प और शक्ति परमाणु जो बाहर निकल कर आकाश में उड़ते रहते हैं, उन पर ताला लगा दिया है। जो शक्ति साधना में उपार्जित होगी, वह सुरक्षित रहेगी, उसका आकाशीकरण न हो पायेगा।

३. प्राणायाम :

इस क्रिया से विश्वव्यापी प्राणतत्व को अपने अन्दर खींचकर धारण किया जाता है। इसके ४ भाग है—(१) पूरक--इससे वायु भीतर खींची जाती है। (२) अन्तर कुम्भक—इसको वायु को भीतर रोका जाता है। (३) रेचक—इसमें रोकी हुई वायु को बाहर निकाला जाता है। (४) वाह्य कुम्भक–इसमें वायु को बाहर रोका जाता है। पूरक व रेचक का समय बराबर होता है। अर्थात् जितना समय वायु खींचने में लगाया जाता है, उतना ही वायु को बाहर निकालने में लगाना चाहिए। अन्तर कुम्भक और बाह्य कुम्भक का समय भी बराबर होना चाहिये अर्थात् वायु को भीतर व बाहर रोकने का समय भी समान हो। इसका निश्चय घड़ी से भी हो सकता है और गिनती से भी।

वायु को भीतर खींचते समय "ॐ भूः भुर्वः स्वः" का मानसिक उच्चारण करना चाहिए और भावना करनी चाहिये कि वायु के साथ विश्वव्यापी चैतन्य प्राण शक्ति मेरे भीतर प्रविष्ट हो रही है। वायु को धीरे-धीरे खींचना चाहिए और यथा शक्ति भर लेना चाहिये।

अन्तर कुम्भक में 'तत्सवितुर्वरेण्यं' का पाठ करते रहना चाहिए और यह भावना करनी चाहिये कि तेजस्वी प्राण शक्ति को भीतर खींचने से चारों ओर शक्ति का सञ्चार होरहा है और मैं शक्ति का पुञ्ज बनता जा रहा हूँ।

रेचक में "भर्गो देवस्य धीमहि" का जप करते हुए यह भावना करनी चाहिए कि सतोगुणी शक्तियों के आगमन से मेरे पापों का विनाश हो रहा है और वह वायु के साथ बाहर निकलते जा रहे हैं।

बाह्य कुम्भक में 'धियो यो नः प्रचोदयात्' का मानसिक उच्चारण करते हुए यह भावना करनी चाहिये कि आसुरी शक्तियों के विनाश

से अब मेरा शरीर पवित्र हो गया है और उनके भीतर प्रविष्ट होने का मार्ग बन्द होगया है।

इन पवित्र भावनाओं के साथ किया गया प्राणायाम अधिक लाभदायक होता है। जितनी भावना पुष्ट व दृढ़ होगी, उतना ही लाभ अधिक होगा। आधुनिक मनोविज्ञान ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है।

यह एक प्राणायाम की विधि है। संध्या में ५ प्राणायाम करने का विधान है। इतने न हो सकें तो एक प्राणायाम तो अवश्य करना ही चाहिये।

४. अघमर्षण :

इसका अर्थ व उद्देश्य है—पाप विनाश। गायत्री सतोगुणी शक्ति भी प्रतीक है। उसके आवाहन से पापों, दुष्प्रवृत्तियों, दुर्भावनाओं का विसर्जन निश्चित है जैसे सूर्य रूपी प्रकाश के आगमन से अन्धकार अपने आप चला जाता है। ऐसी ही भावना अघमर्षण क्रिया में की जाती है।

यह क्रिया संध्या में शरीर, प्राण व मन के त्रिविध पापों के विनाश के लिए तीन बार की जाती है।

सर्वप्रथम दाये हाथ में जल लेकर "ॐ भूः भुवः स्वः" का उच्चारण करना चाहिये। इसे दांये नासिका से छः अंगुल दूरी पर रखना चाहिये और बायें हाथ के अँगूठे से बायीं नासिका को बन्द कर देना चाहिये। अब "तत्सवितुर्वरेण्यं" का उच्चारण करते हुए सांस भीतर खींचनी चाहिये और भावना करनी चाहिये कि गायत्री की सतोगुणी शक्ति का सांस के साथ प्रवेश हो रहा है। अब बायीं नासिका से बायें अँगूठे को हटादें, उससे दायीं नासिका को सामने से बन्द करदें, दायीं हाथ की हथेली को बायीं नासिका के सामने ले जायें, "भर्गो देवस्य

धीमहि" का पाठ करते हुए यह भावना करें कि गायत्री की सतोगुणी शक्ति के आगमन के फल-स्वरूप पापों दुर्विचारों और दुर्भावनाओं का विनाश हो रहा है और आसुरी वृत्तियों के मृत शरीर जल में गिर रहे हैं। भरी हुई सांस पूरी निकल जाने पर "धियो योनः प्रचोदयात्" का पाठ करते हुए उस जल को एक ओर गिरा देना चाहिए क्योंकि उसमें असुरों की लाशों के आने की भावना की गई है। यह अघमर्षण की एक क्रिया है। इसे ३ बार करना चाहिए।

५. न्यास—

न्यास का अर्थ है—धारण करना। गायत्री योग के अनुसार शरीर रूपी ब्रह्माण्ड के सात लोक होते हैं। उन लोकों के प्रतीक हैं— मूर्धा (मन, मस्तिष्क), २. आँखें, ३. कान ४. वाणी और रसना ५. हृदय, अन्तःकरण ६. नाभि, जननेन्द्रिय ७. हाथ, पैर। यह सात शक्ति केन्द्र हैं। इनको जगाना व पवित्र रखना आवश्यक है। तभी नियमित गायत्री जप साधना द्वारा शक्ति का विकास सम्भव है। न्यास द्वारा इन सात केन्द्रों को पवित्र व शक्तिशाली बनाया जाता है। विधि इस प्रकार है:—

दायें हाथ के अंगूठे और अनामिका अँगुली को मिलाकर नीचे लिखे मंत्र भागों में जहाँ संकेत हों, उसे स्पर्श करें और यह भावना करें कि वह अङ्ग शक्तिशाली व पवित्र बन रहे हैं।

(१) ॐ भूर्भुवः स्वः— मूर्धाय नमः।
(२) तत्सवितुः—नेत्राभ्यां नमः।
(३) वरेण्यं—कर्णाभ्यां नमः।
(४) भर्गो—मुखाय नमः।
(५) देवस्य—कण्ठाय नमः।
(६) धीमहि—हृदयाय नमः।

(७) धियो योनः— नाभ्यै नमः ।

(८) प्रचोदयात् हस्तपादाभ्यां नमः ।

यह गायत्री उपासना की भूतशुद्धि या ब्रह्म सन्ध्या है ।

जप विधि-

साधना स्थल पर साकार उपासक गायत्री की मूर्ति या चित्र की स्थापना करें और धूप, दीप, नैवेद्य, अक्षत, पुष्प आदि उपलब्ध पूजन सामग्री से पूजन करें । निराकार उपासक अग्नि को गायत्री का प्रतीक मानकर घृत, दीपक, धूप व अगरबत्ती की स्थापना कर लें । अब गायत्री देवी का आवाहन करें और निम्न मन्त्र का उच्चारण करें:—

आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्मवादिनी ।
गायत्री छन्दसां माता ब्रह्मयोने नमोस्तुते ।।

इसके साथ यह भावना करनी चाहिये कि गायत्री माता अपने आसन पर निवास कर रही हैं । अब जप आरम्भ कर देना चाहिये । जप की गिनती माला द्वारा सुविधाजनक रहती है । यह अंगुलियों द्वारा भी की जा सकती है । जप इस प्रकार से करना चाहिये कि मन्त्र का उच्चारण होता रहे, होंठ हिलते रहें परन्तु पास बैठा व्यक्ति भी उसे सुन न सके । कम से कम १ माला अर्थात् १०८ मन्त्रों का जप तो करना ही चाहिए । समय और रुचि हो तो ३, ५, ७, ९, ११ मालाओं का जप करना चाहिए । जप करते हुए साकार उपासक गायत्री माता के चित्र का ध्यान करें और यह कल्पना करें कि वह आकाश में सूर्य की तरह तेजोमय मण्डल में स्थित हैं । यह मूर्ति कल्पना नेत्रों से बार-बार ओझल हो जायेगी । गायत्री माता के अंग प्रत्यङ्ग को श्रद्धापूर्वक निहार कर पुनः पुनः ध्यान करना चाहिये । बार-बार के अभ्यास से एक समय आयेगा जब माता का चित्र स्पष्ट

रूप से अन्तर नेत्रों से दिखाई देने लगेगा। निराकर उपासक 'ओंकार' का ध्यान कर सकते हैं। अग्नि को गायत्री का प्रतीक मान कर ज्योति का ध्यान भी किया जा सकता है।

जप का लाभ तभी होता है जब वह एकाग्रता पूर्वक किया जाए, वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हों। यदि जप–साधन में माला घुमाने से साथ-साथ विचार अन्यत्र घूमते रहते हैं, तो शक्ति का विशेष विकास नहीं हो पाता। एकाग्रता के लिए ध्यान किया जाता है, जो शक्ति का विशेष साधन है। ध्यान की सफलता में जप की सफलता निश्चित है। जप के साथ अर्थ-चिंतन को भी आवश्यक बताया गया है। इष्टदेव के मन्त्र का जब उच्चारण किया जाता है, तो मन-मस्तिष्क में इष्टदेव के गुण–रूप का एक सजीव चित्र बन जाता है, जो कालांतर में संस्कार का रूप ग्रहण कर लेता है और पूर्व संस्कारों का शमन करता है। पूर्व संस्कारों में जो काम, क्रोध, मद, लोभ द्वेष ईर्षादि की भावनाएँ भरी पड़ी हैं उनको धीरे-धीरे समाप्त करना जप-साधन की विशेषता है। विचारों में परिवर्तन होता है। मस्तिष्क कोष प्रभावित होते हैं उन पर चिन्ह बनते हैं, संस्कार जमते हैं और स्थायित्व आता है।

जप के नियम

जप के इन नियमों का सावधानी पूर्वक पालन करना चाहिए:—

शरीर की शुद्धि करके धुले और स्वच्छ वस्त्रों को पहिन कर साधना पर बैठना चाहिये। पालती मारकर सीधे ढङ्ग से बैठना चाहिये। माध्याह्न को उत्तर की ओर, शाम को पश्चिम की ओर मुख करके बैठें। मल-मूत्र त्याग या किसी अनिवार्य कार्य के लिए बीच में उठना पड़े तो हाथ-पैर धोकर पुनः बैठें। शिखा खोलकर, पगड़ी या कुर्ता पहन कर, पैर फैलाकर, नंगे होकर, व्यग्र चित्त से, क्रोध

में और जूतादि पहनकर जप करना निषिद्ध है। साधक का आहार-विहार सात्विक होना चाहिये। तन्त्र-सार के अनुसार मन की शुद्धि, पवित्रता, संयम, शौच, वैराग्य, मन्त्रार्द्ध, अव्यग्रता यह जप-सिद्धि की प्रधान सम्पत्तियां हैं। कुलार्णव तन्त्र के अनुसार अपवित्रता, रागद्वेष, नग्नशिरता, बहिर्पलाप, अनवधानता, अन्यमनस्कता साधना में बाधक माने गए हैं। साधक को पराया अन्न नहीं खाना चाहिए। वह जिसका अन्न खाता है, उसी को फल मिलता है।

जप न धीरे-धीरे हो और न ही अधिक तीव्र—स्वाभाविक गति से चलना चाहिये। सिद्धि के लिये मन, शिव, शक्ति और वायु का संयम आवश्यक है। यह न होने पर शास्त्रों के अनुसार कल्पपर्यन्त जप करने पर भी सिद्धि प्राप्त करना सम्भव नहीं है। साधना-स्थल को पूर्ण रूप से सात्विक रखना चाहिए। वहाँ पर तामसिक व राजसिक वृत्ति वाले व्यक्तियों को न आने देना चाहिये। महापुरुषों और देवताओं के चित्रों और प्रेरणाप्रद वाक्यों से वह स्थान सुसज्जित होना चाहिये। साधक को अपनी इन्द्रियों पर संयम रखना आवश्यक है। इससे शीघ्र लाभ होता है। उत्तम विधि को एक साधक ने इस तरह बताया है—

नाम ही जपै शून्य मन धरै, पाँचों इन्द्रिय वश में करै।
ब्रह्म अग्नि में होमे काया, ताके विष्णु पखारै पाँया॥

जप के समय मंत्र के अर्थ का चिन्तन करना चाहिये। मन्त्रार्थ में जिन गुणों का वर्णन किया गया हो, वह गुण हममें ओत-प्रोत हो रहे हैं, यह दृढ़ भावना करनी चाहिये। मन्त्र-जप से जो एकाग्रता और शक्ति उत्पन्न होती है, उससे उन गुणों को अपने अन्तःकरण में स्थापित करने से सहायता मिलती है और धीरे-धीरे साधक उस मन्त्र से साक्षातरूप होता जाता है, यही सिद्धि के लक्षण हैं। योग-दर्शन

(१ । २८) में इस तथ्य का समर्थन करते हुए लिखा गया है कि मन्त्र का जप और अर्थ विचारने से समाधि-लाभ होता है । पूर्ण मनोयोग के साथ साधना करने वाले साधक इस स्थिति तक पहुँच ही जाते हैं ।

जप के लिए उपयुक्त स्थान का होना आवश्यक है । लिंग पुराण ८५।१०६ के अनुसार घर में किये जप का फल साधारण होता है । नदी तट पर किये जप का फल लाख गुना और भगवान के श्री विग्रह के सामने किये जप का फल अनन्त होता है । लिङ्ग-पुराण ८५।१०७-१०८ के अनुसार पवित्र आश्रमों, देवालयों, पर्वत-शिखर पर, देव-हृदय पर, समुद्र तट पर यह लाभ करोड़ गुना हो जाता है । ध्रुवतारा, सूर्य के अभिमुख होकर और गौ, अग्नि, दीपक और जल के सामने जप करने का भी फल श्रेष्ठ माना गया है । सुविधा के लिये घर का स्वच्छ और सात्विक स्थान ग्रहण करना अभीष्ट है ।

सात्विक उपासना में तुलसी की माला ही श्रेष्ठ मानी गई है । सात्विक उपासना के लिये इसी का प्रयोग करना चाहिये ।

जप-साधना में आसन भी विशेष महत्व रखता है । हंस माहेश्वर तन्त्र में वस्त्र, पल्लव, तृण, पाषाण, वंशकुश, कम्बल, कृष्णाजिन, व्याघ्रचर्म आदि के आसनों की चर्चा की गई है परन्तु सात्विक उपासना में कुश का आसन ही श्रेष्ठ माना गया है । यदि बिना आसन भूमि पर बैठकर जप किया जाय, तो जप-साधना में उपार्जित शक्ति के पृथ्वी में प्रवेश करने की सम्भावना रहती है,इसलिए साधक को अभीष्ट लाभ की प्राप्ति नहीं होती । कुश के आसन पर बैठकर साधना करने से यह लाभ है कि वह शक्ति को पृथ्वी में प्रविष्ट करने से रोकने और उसे सुरक्षित रखने की सामर्थ्य रखता है । इसलिए प्रायः इसी का प्रयोग किया जाता है ।

कुछ सफल प्रयोग

गायत्री एक शक्ति है। इससे विवेक बुद्धि की जागृति, सतोगुण की वृद्धि, दोषों, दुर्गुणों व दुष्प्रवृत्तियों का विनाश होकर सद्‌गुणों का विकास और आत्मोत्थान कुछ ऐसे लाभ हैं जिनका निष्काम साधना से प्राप्त होना निश्चित है। यही कारण है कि जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति के लिये इसी महामन्त्र की ऋषि मुनि साधना किया करते थे। गायत्री से केवल निष्काम ही नहीं, सकाम साधनायें भी सफल होती देखी गई हैं। कुछ प्रयोजनों की सिद्धि का विधि-विधान यहाँ दिया जा रहा है। इसका यह अर्थ नहीं है कि गायत्री से केवल उन्हीं उद्‌देश्यों की पूर्ति होना सम्भव है। वास्तव में इसे किसी भी कार्य की सफलता के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है। विश्वास और भावना से की गई हर साधना में सफलता मिलेगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

१. बुद्धि का विकास :

गायत्री बुद्धि को शुद्ध व पवित्र करने का विशिष्ट मन्त्र है। इससे मन्द बुद्धि वाला बालक प्रखर बुद्धि सम्पन्न हो जाता है। जिन बालकों को स्कूल का पाठ भली प्रकार याद नहीं हो पाता वे निश्चित रूप से इस साधना से लाभान्वित हो सकते हैं। महर्षि विरजानन्द सरस्वती प्रज्ञाचक्षु थे, उन्होंने किसी विद्यालय में शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। वे ऋषिकेश में गङ्गाजल में खड़े होकर गायत्री मन्त्र का जप किया करते थे, फलस्वरूप वह चारों वेदों के प्रकाण्ड पण्डित बने और दयानन्द जैसे शिष्य का निर्माण कर सके। महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती बाल्यकाल में बड़े मन्द-बुद्धि के थे। स्कूल मे पढ़ने योग्य न समझ कर इनके पिता ने उन्हें केवल पशु चराने का ही काम सौंप दिया था परन्तु गायत्री जाप से उनका इतना विकास हुआ कि उन्होंने जीवन भर "मिलाप" दैनिक का लाहौर व दिल्ली से सफल सम्पादन किया

और आज वह वेद, शास्त्रों व आध्यात्मिक विषयों के उत्तम वक्ता माने जाते हैं।

साधना इस प्रकार करें कि मस्तक को जल से भिगोयें और सूर्योदय की प्रथम किरणें उस पर पड़ने दें। पूर्व की ओर मुख करके बैठें, आँखों को अध खुला रखें और गायत्री मन्त्र से पहले ३ बार 'ॐ' का पाठ करते हुए गायत्री मन्त्र का श्रद्धा पूर्वक जप करें। जप १०८ मंत्रों का अर्थात् एक माला का तो होना ही चाहिये। अधिक सुविधा हो तो ३, ५, ७, ६, ११ मालाओं का जप किया जा सकता है।

जप के बाद दोनों हाथों की हथेलियों को सूर्य की ओर करें और भावना करें कि उनमें सूर्य की शक्ति प्रविष्ट हो रही है। गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते हुए हथेलियों को आपस में रगड़े और उनको मस्तक, सर, नेत्रों, मुख, गले कान आदि सभी गले से ऊपरी भागों पर फेरें और यह भावना करें कि मेरे मस्तिष्क के तंतु खुल रहे हैं।

२. लक्ष्मी की प्राप्ति :

आर्थिक रूप से गिरे व्यक्तियों के लिए यह साधना रामवाण का सा काम करती है। व्यापार में घाटा हो या परिवार के पालन-पोषण के उपयुक्त आमदनी न हो पाती हो, व्यापार में हर काम में हानि ही हानि होती हो, नौकरी न मिलती हो या मिलने में कोई अड़चन पड़ जाती हो, ऋण की निवृत्ति न हो पा रही हो तो नीचे दिये विधान से गायत्री साधना करनी चाहिए:–

लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये गायत्री मन्त्र के अन्त में ३ बार 'श्रीं' बीज मन्त्र का सम्पुट लगाकर जप करना चाहिये। जप कम से कम एक माला का होना चाहिए। जप जितना अधिक किया जाएगा, उतना ही लाभ शीघ्र होगा।

पीत वर्ण लक्ष्मी का प्रतीक माना जाता है। हाथी पर सवार, पीताम्बरधारी गायत्री का ध्यान करें। पूजा में आसन, यज्ञोपवीत, वस्त्र, पुष्प सभी पीले होने चाहिए। भोजन में पीली वस्तुओं का ही प्रयोग करना चाहिए। रविवार को उपवास करें। शुक्रवार को तेल में हल्दी मिला कर शरीर पर मालिश करें।

जप साधना करते हुए इस प्रकार का ध्यान करें कि गायत्री माता प्रसन्न होकर सफलता का आशीर्वाद दे रही हैं और मेरे ऊपर लक्ष्मी की वर्षा हो रही है।

३. रोग निवृत्ति :

रोगी यदि स्वयं साधना पर बैठ सके तो हरे वस्त्र धारण किये हुए वृषभ वाहिनी गायत्री का ध्यान करना चाहिये। बैठना सम्भव न हो तो गायत्री का मानसिक जप करते रहना चाहिये और मन्त्र के अंत में बीज मन्त्र का सम्पुट लगाना चाहिए। रोग निवारण के लिए ३ प्रकार के सम्पुट लगाये जाते हैं। आयुर्वेद के अनुसार रोगों के ३ कारण होते हैं—कफ, पित्त, वात। इन्हीं के अनुसार ३ बीज मन्त्रों का विधान बनाया गया है। कफ प्रधान रोगों में "ऐ" बीज मन्त्र, पित्त प्रधान रोगों में "ऐं" बीज मन्त्र, वात प्रधान रोगों में "ह्रूँ" बीज मन्त्र का सम्पुट लगाना चाहिए और भावना करनी चाहिए कि गायत्री की सविता शक्ति मन्त्रोच्चारण के साथ मेरे शरीर में प्रविष्ट हो रही है और रोग को नष्ट कर रही है,परिणामस्वरूप मेरा शरीर स्वस्थ व सबल हो रहा है।

यदि कोई गायत्री सिद्ध साधक किसी दूसरे रोगी का उपचार करना चाहता हो तो ध्यान और बीज मन्त्रों का प्रयोग उपरोक्त विधि से ही रहेगा। उपचार कर्त्ता को मन्त्र का उच्चारण करते हुए पीड़ित अङ्ग पर हाथ फेरना चाहिए और अभिमन्त्रित जल का मार्जन करना

चाहिए। उस विशिष्ट रोग के लिये आयुर्वेद या अन्य दवा का उपचार चल रहा हो तो वह चलता ही रहना चाहिए।

४. रक्षा कवच :

मानसिक सुख शान्ति, शारीरिक रोगों से निवृत्ति, आर्थिक अड़चनों को दूर करने के लिए यह कवच धारण किया जाता है। भूत, प्रेत बाधा, चोर, डकैत, शत्रु, राजदण्ड, बुरे भविष्य की चिन्ता, हानि की आशंका, अकाल मृत्यु व रोगादि के भय से यह कवच रक्षा करता है।

किसी रविवार या अन्य शुभ दिन देखकर उपवास रखना चाहिए। गोरोचन, जायफल, जावित्री, कस्तूरी, केशर—इन ५ वस्तुओं को मिला कर स्याही बनावें, भोजपत्र पर अनार की कलम से ५ प्रणव (ॐ) लगाकर गायत्री मन्त्र लिखें। बिना पालिश किये कागज पर भी यह लिखा जा सकता है। इसे चाँदी के ताबीज में बन्द कर धारण करना चाहिए। यह हर प्रकार के भय से रक्षा करता है।

५. सुखी प्रसव के लिए :

कांसे की थाली में अनार की कलम से उपरोक्त विधि से बनी स्याही से पाँच प्रणव युक्त गायत्री मन्त्र लिखें और प्रसव कष्ट के समय प्रसूता को दिखावें, फिर थाली में जल डालकर गायत्री मन्त्र का उच्चारण करें और घोलकर प्रसूता को पिलादें। इससे कष्ट की निवृत्ति होती है और प्रसव सुखपूर्वक होता है।

६. भूत बाधा की निवृत्ति :

भूत बाधा के लिए गायत्री हवन श्रेष्ठ माना गया है। इसमें सतोगुणी हवन सामग्री लेनी चाहिए। हवन का विधान मन्त्र महा-विज्ञान द्वितीय खण्ड में देख लें। गायत्री मन्त्र से आहुतियाँ दें और

हवन कुण्ड के पास रखा हुआ जल जो अग्नि से तप चुका है, रोगी को पिलावें। यज्ञ भस्म रोगी के विभिन्न अङ्गों—मस्तक, नेत्र, हृदय, मुख, नासिका, कान आदि पर लगावें, इससे लाभ होगा। गायत्री यज्ञ की भस्म को सुरक्षित रख लेना चाहिए। अकस्मात किसी को भूत बाधा हो जाय तो इसका प्रयोग करना चाहिए।

७. पुत्र प्राप्ति के लिए :

गर्भ गिर जाते हों गर्भ की स्थापना ही न होती हो या केवल लड़कियाँ ही होती हों और पुत्र की आकांक्षा हो तो गायत्री की इस प्रकार साधना करनी चाहिए:—

इस साधना को पति-पत्नी दोनों करें। कमल पुष्प हाथों में धारण किये हुए, किशोर अवस्था वाली, श्वेत वस्त्र व आभूषणों से विभूषित गायत्री माता का ध्यान करना चाहिए। माला चन्दन की होनी चाहिए। 'यं' बीज मंत्र के ३ सम्पुट लगाकर गायत्री जप करें। प्राणायाम की विधि इस प्रकार है:—

पूरक में धीरे-धीरे पेडू तक पूरी सांस भरलें। अन्तर कुम्भक में जब श्वांस रोकें तो ३ बार "यं" बीज मन्त्र का सम्पुट लगाकर गायत्री का जप करना चाहिए। ३ बार अधिक प्रतीत हो तो कम से कम एक बार तो जप करना ही चाहिए। फिर धीरे-धीरे श्वांस को बाहर निकाल दें। रेचक में उतना ही समय लगाना चाहिए जितना कि पूरक में लगाया था। बाह्य कुम्भक में भी अन्तर कुम्भक के समान समय लगाना चाहिये। इस प्रकार १० बार नित्य प्राणायाम करने का विधान है। इस प्रकार पेडू में गायत्री शक्ति का आकर्षण किया जाता है और गर्भाशय या वीर्य कोष में शुभ्र वर्ण ज्योति का ध्यान किया जाता है।

जब तक साधना चले, प्रत्येक रविवार को भोजन में श्वेत

वस्तुओं का ही प्रयोग करना चाहिये । इनमें दूध, दही, चावल श्रेष्ठ माने जाते हैं ।

गायत्री शक्ति को धारण कराने वाली इस साधना से चरित्रवान्, बुद्धिमान और स्वस्थ बालक की आशा करनी चाहिये ।

८. विरोधियों को अपने अनुकूल बनाना :

विरोधी कितना भी शक्तिशाली, उच्चपद पर आसीन हो और अपने हर काम में बाधा उपस्थित कर रहा हो तो उसे अपने अनुकूल बनाने के लिये ३ प्रणव (ॐ) लगा कर गायत्री का जप करना चाहिए । जप काल में इस प्रकार ध्यान करना चाहिए कि हमारे मस्तिष्क में से नील वर्ण का विद्युत प्रवाह निकल कर उसके मस्तिष्क में जा रहा है जिसे अपने अनुकूल बनाना है और वह उससे प्रभावित होकर हाथ जोड़ कर हमारे सामने खड़ा होकर प्रसन्न मुद्रा में हमारे अनुकूल विचारों में बातचीत कर रहा है और अपनी मित्रता व सहयोग का आश्वासन दे रहा है । किसी व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये यह ध्यान अत्यन्त सफल सिद्ध हुआ है ।

९. राजकीय कार्यों में सफलता के लिए :

नौकरी के लिए किसी अधिकारी के समक्ष उपस्थित होना, कोई आवश्यक आवेदन पत्र स्वयं देना हो,कोई मुकदमा या इसी प्रकार का कोई और कार्य हो तो इस प्रकार साधना करें:—

इन कार्यों में सफलता प्राप्त करने के लिए स्वरयोग का प्रयोग किया जाता है । पहले यह देखना चाहिये कि अपना बायां या दायां कौन सा स्वर चल रहा है । बायां स्वर चलने पर हरित वर्ण ज्योति का ध्यान करें और दाहिना स्वर चलने पर पीत वर्ण प्रकाश का ध्यान करें और सप्त व्याहृतियां (ॐभूः भुवः स्वः तपः जनः महः सत्यम्) सहित मानसिक रूप से गायत्री का कम से कम १२ बार जप करें । जप करते

समय उसी हाथ के अंगूठे के नाखून पर दृष्टि बनी रहे जो स्वर चल रहा है। इस प्रकार कार्यालय में प्रविष्ट हों और धारणा करें कि वह अधिकारी अपनी इच्छा के अनुरूप हमसे वार्तालाप कर रहे हैं। जब तक कार्यालय में रहें, इसी प्रकार का मानसिक जप व भावना करते ही रहना चाहिये। यह साधना प्रतिकूल विचारों को अनुकूल बना देती है।

१०. विष निवृत्ति :

सर्प, बिच्छू, वर्र ततैया आदि विषैले जीवों के काटने पर अनेकों प्रकार के प्रयोग व औषधियों का प्रयोग किया जाता है। गायत्री का निम्न प्रयोग भी लाभदायक सिद्ध होता है:—

प्रयोग करते समय जो भी स्वर चल रहा हो, उसी हाथ पर थोड़ी सी पीपल वृक्ष की समिधाओं से किये हवन की भस्म को लेकर दूसरे हाथ से उसे अभिमन्त्रित करें और बीच में 'हुँ' बीजमन्त्र का सम्पुट लगाते चलें और रक्त वर्ण अश्वारूढ़ा गायत्री का ध्यान करते हुए भस्म को काटे स्थान पर मसलना चाहिये। कष्ट शीघ्र ही कम हो जाता है। सर्प काटे पर प्रयोग करना हो तो चन्दन की समिधाओं से किये गये गायत्री हवन की भस्म को मसलना चाहिये। अभिमन्त्रित करके रोगी को शुद्ध घी पिलावें। इसके साथ-साथ पीली सरसों को उपरोक्त विधि से अभिमन्त्रित करें और उसे पीस करके सभी इन्द्रियों के मुखों पर लगा दें। इससे सर्प विष का नाश होता है।

११. शत्रुता का परिहार :

शत्रु के नित्य हानि पहुँचाने वाली मनोवृत्ति व द्वेष भाव का परिवर्तन करना हो तो इस प्रकार गायत्री की साधना करनी चाहिये:—

साधना में लाल वस्त्र धारण करें, ऊन का आसन बिछावें। जिस व्यक्ति की द्वेष भावना को दूर करना हो, उसका नाम पीपल के पत्ते पर

ल:ल चन्दन की स्याही और अनार की कलम से लिखें। इसे उलटा करके अपने सामने रख दें। चार 'क्लीं' बीजमन्त्रों का सम्पुट लगा कर गायत्री मन्त्र का उच्चारण करें और प्रत्येक मन्त्र के उच्चारण के पश्चात् चम्मच से कुछ जल उस पत्ते पर छोड़ते जायें और यह भावना करें कि वह व्यक्ति कट्टर शत्रुता को भूल कर हम से मित्र भाव से बात-चीत कर रहा है। इस तरह कम से कम १०८ मन्त्रों का जप करना चाहिये। ध्यान सिंह की सवारी किए हुए, हाथ में खड्ग लिए, विकराल भाव बनाए हुए दुर्गा वेषधारी गायत्री का करना चाहिए। जप लाल चन्दन की माला से करना चाहिए। वर्षों की शत्रुता इस साधना से समाप्त हो जाती है।

१२. चोरी डकैती से सुरक्षा के लिए :

प्रातःकाल शौचादि से निवृत होकर पूर्वाभिमुख होकर पूर्व निर्देशित विधि से कम से कम एक माला गायत्री का जप करें और इस प्रकार ध्यान करें कि लक्ष्मण रेखा की तरह मकान के चारों ओर विद्युत की एक चमकती हुई रेखा खिंची हुई है जिसे पार करना किसी आसुरी प्रवृत्ति वाले व्यक्ति के लिये सम्भव नहीं है। मुख द्वार पर सिंहारूढ़, खड्ग हस्ता, विकराल वदना, दुर्गा वेषधारी गायत्री सुरक्षा में तत्पर है और द्वार की ओर आने वालों को वह अपने अस्त्र शस्त्रों व तेज से नष्ट कर रही हैं। रात्रि को सोते समय भी ३ बार गायत्री का मानसिक उच्चारण करते हुए यही ध्यान करना चाहिये।

१३. दुःस्वप्नों का निवारण :

कभी-कभी ऐसे स्वप्न आते हैं जो बुरे भविष्य का संकेत करते हैं या जिनके स्मरण आते ही मन में भय उत्पन्न होता है। यदि इस की आशंका बनी रहे तो नित्य प्रति १० माला गायत्री का जप करना चाहिते। गायत्री सहस्रनाम का पाठ भी बुरे स्वप्नों के नाश के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है।

१४. अनिष्टों के नाश के लिए :

किसी बुरे शकुन या मुहूर्त के उपस्थित होने पर जब किसी कार्य को आरम्भ करने में आशङ्का हो तो गायत्री की एक माला का जप करके वह कार्य आरम्भ किया जा सकता है। विवाह आदि में चन्द्रमा, वृहस्पति व सूर्यादि की कोई बाधा बताई जाती हो, विवाह न बन रहा हो या ऐसी ही और कोई रुकावट हो तो गायत्री का नौ दिन का २४००० जप का एक लघु अनुष्ठान कर लेना चाहिए। इससे इस प्रकार की सभी बाधायें शान्त हो जाती हैं और किसी भी अनिष्ट का भय नहीं रहता और बुरे मुहूर्त व शकुनों का परिहार हो जाता है।

यहाँ कुछ थोड़े से ही सकाम प्रयोजनों की सिद्धि का विधान दिया गया है। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि गायत्री शक्ति का क्षेत्र इन्हीं तक सीमित है। वास्तव में किसी भी उद्देश्य की पूर्ति के लिये इस शक्ति का उपयोग किया जा सकता है और श्रद्धापूर्वक की गई साधना सफल ही होती है।

महामृत्युंजय मन्त्र साधना

गायत्री मन्त्र के अनुष्ठान के बाद महामृत्युञ्जय मन्त्र का अनुष्ठान ही अधिक प्रचलित है क्योंकि इसमें रोग निवारण की अपार शक्ति निहित मानी जाती है। इसे ग्रहों के बुरे प्रभावों को दूर करने और मृत्यु से रक्षा के लिए भी प्रयुक्त किया जाता है। तान्त्रिक साधना में भी इसका प्रमुख स्थान है और सिद्धि प्राप्त करने के विस्तृत विधि विधान मिलते हैं। वास्तव में इसकी उपासना अमृत की प्राप्ति के उद्देश्य से ही की जाती है। यही इसके अर्थों से भी लक्षित है।

मंत्रार्थ :

त्रयम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।

(ऋ० ७।५९।१२, यजुर्वेद ३।६०)

अर्थात्—"हम तीन नेत्रों वाले ईश्वर की उपासना करते हैं। मैं सुगन्धि से युक्त और पुष्टि प्रदान करने वाले उर्वारुक की तरह मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाऊँ, अमृत से नहीं।"

त्रिनेत्र का स्पष्टीकरण :

दो नेत्र तो हर शरीरधारी के होते हैं। तीसरा नेत्र अस्वाभाविक सा जान पड़ता है। अतः उसकी व्याख्या आवश्यक है।

तृतीय नेत्र हर व्यक्ति में सुप्तावस्था में विद्यमान रहता है। इन्द्रिय निग्रह और काम पर विजय प्राप्ति के लिये इसका जाग्रत होना

आवश्यक होता है। वास्तविकता यह है कि जब तक साधक स्वयं को शरीर, प्राण, मन, चित्त, अहङ्कार मानता रहता है, तब तक उसका तृतीय नेत्र सुप्त ही रहता है और वह कामदेव के आक्रमणों से प्रभावित होता रहता है क्योंकि काम प्रकृति का एक गुण है और शरीर आदि भी प्रकृति के अन्तर्गत आते हैं। तब तक वह काम के प्रभाव से नहीं बच सकता। जब वह अपने वास्तविक रूप को जान जाता है और शुद्ध चैतन्य भाव में सदैव स्थित रहता है, तभी काम को भस्म करने की स्थिति में आता है। इसी अवस्था को तृतीय नेत्र का जागरण कहते हैं।

त्रिनेत्र की भौतिक व्याख्या इस प्रकार है:---

रुद्र के दो नेत्र सूर्य और चन्द्रमा हैं और तीसरा अग्नि है।

आप्याननस्तमोहन्ता विद्यया दोषदाहकृत्।
सोमसूर्याग्नि नयनस्त्रिनेत्रस्तनेन शंकरः॥

"शिव चन्द्रमा की तरह विश्व को आनन्द देने वाले, सूर्य की तरह अज्ञान और तम को नाश करने वाले और अग्नि की तरह रागादि दोषों को जलाने वाले हैं। इसलिए चन्द्रमा,सूर्य और अग्नि इनके त्रिनेत्र कहे गये हैं।"

शरभोपनिषद् में कहा है—"जिसने लीला मात्र से त्रिपुर को दग्ध कर दिया, जिसके सूर्य, चन्द्र और अग्नि तीन नेत्र हैं, उस रुद्र को नमस्कार है।" यजुर्वेद में कहा है—"जो रुद्र स्वर्ग में विद्यमान हैं, जिनके वाण वृष्टि रूप हैं, उन रुद्रों को नमस्कार है (१७।६४)।" जो रुद्र अन्तरिक्ष में वास करते हैं, जिनके वाण पवन हैं, उन रुद्रों को नमस्कार है (१७।६५)।" जो रुद्र पृथ्वी पर विद्यमान हैं,जिनके वाण अन्न हैं, जो अन्न के मिथ्या आहार-विहार द्वारा रोगोत्पत्ति करते हैं. उन रुद्रों को नमस्कार है (१७।६६)।" इसका अभिप्राय यह है कि

रुद्र स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथ्वी तीनों लोकों में विद्यमान हैं । यही उनके तीन नेत्र हैं ।

वेद में रुद्र को अग्नि की संज्ञा दी गई है । वेद ने ही अग्नि के तीन नेत्र बताए हैं । ऋग्वेद (१०।४५।१) में कहा है–'अग्नि का प्रथम जन्म द्योलोक में आदित्य रूप से हुआ, उनका द्वितीय जन्म पृथ्वी लोक में अग्नि रूप से हुआ । तीसरा जन्म अन्तरिक्ष में मेघों में हुआ ।' अगले मन्त्र में कहा है—"हे अग्ने ! हम तुम्हारे तीनों रूपों के ज्ञाता हैं । जहाँ-जहाँ तुम्हारा निवास है, उन स्थानों को भी हम जानते हैं, हम तुम्हारे निगूढ़ नाम और तुम्हारे उत्पन्न होने के स्थानों को जानने वाले हैं । तुम जहाँ से आते हो, यह भी हम जानते हैं (१७।४५।२) ।" हे अग्ने ! वरुण ने तुम्हें समुद्र के जल में प्रज्वलित कर रखा है, तुम आकाश के स्तन रूप सूर्य में भी अपने तेज से प्रज्ज्वलित हो । तुम ही मेघस्थ जल में विद्युत रूप से स्थित हो (१७।४५।३)।' ऋग्वेद (१०।८८।८) में भी यही भाव प्रकट किए गए हैं—"पहले आकाश पृथ्वी का निरूपण करने वाले देवता ने अग्नि के निमित्त हव्य प्रदान किया, वही देवता हविरन्न के भी उत्पादक हैं । देवताओं के यजनीय अग्नि उनके शरीर की रक्षा भी करते हैं । आकाश पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्योलोक—अग्नि रूपी रुद्र के तीन नेत्र हैं ।

अथर्ववेद में अग्नि के तीन रूपों का भी वर्णन है–"आह्वानीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि उनके अनुगामी हुए और यज्ञ, यजमान, पशु भी पीछे-पीछे चले (१५।६।१४) ।" इस बात को जानने वाला आह्वानीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, यज्ञ, यजमान और पशुओं का भी प्रिय धाम होता है । यह तीन प्रकार की अग्नि प्रसिद्ध है । यही रुद्र का त्रिनेत्र है । तीन स्थानों में जिसका नयन–प्रणयन–स्थापन हो, उसे त्रिनयन कहा जाता है ।

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ---तीन आश्रमों में ही अग्निहोत्र

की आज्ञा है। चौथे आश्रम सन्यास में इसका त्याग कर दिया जाता है। तीन ही आश्रमों में अग्नि का निवास है। "त्रिषुआश्रमेषु नीयते प्रण्णेन स त्रिनयनः इसलिये अग्नि—रुद्र त्रिनयन कहे जाते हैं। अग्नि के यह तीन भौतिक नेत्र हैं। इसलिये महादेव के चित्र में प्रतीक रूप में तीन नेत्र दिखाये जाते हैं।

शिव के त्रिनेत्र त्रिकाल अर्थात् भूत, भविष्यत, वर्तमान के ज्ञान या सर्वज्ञता के द्योतक हैं।

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने आज्ञा चक्र का प्रतिपादन करते हुये लिखा है--"मस्तिष्क प्रदेश में भ्रूमध्य या त्रिकुटी में योगी इसका स्थान मानते हैं। यहाँ सुषुम्ना का अन्त हो जाता है। यहाँ मन, बुद्धि और अहङ्कार का निवास है। इसी स्थान पर ज्ञान चक्षु है जो तृतीय नेत्र है।"

योगीजन इसकी विवेचना इस प्रकार करते हैं—

रुद्र ग्रन्थि को खोलने के लिए उसकी बीज शक्ति-'क्लीं' को जगाना पड़ता है जिसकी अग्रिम नोंक से वेधन क्रिया की जाती है। इससे रुद्र ग्रन्थि के ऊपरी भाग में 'क्लीं' बीज की अग्नि जिह्वा प्रकट होती है जैसे ज्वालामुखी पर्वत के उच्च शिखर पर धूम मिश्रित अग्नि निकलती है। इसी को शिव का तीसरा नेत्र कहते हैं।

यही कारण है कि भगवान् शंकर को त्र्यम्बक कहा जाता है। ऋग्वेद (७।५९।१२) में कहा है—"सुरभित, पुष्टिवर्धक, त्र्यम्बक का पूजन करते हैं। हे रुद्र ! हमें मृत्यु के पाश से छुड़ाओ और अमृत से दूर मत रखो।" यजुर्वेद (३।५८) में रुद्र के नेत्र से तीन लोकों का प्रकाशित होना कहा गया है।

अम्बक का शब्दार्थ इस प्रकार से किया जाता है। त्र्यम्बक— त्रि + अम्बक। अम्ब नाम पिता का है। 'त्रयणां लोकानां अम्बकः पिता त्र्यम्बकः', तीनों लोकों का जो पिता है, वह त्र्यम्बक है।

अम्बा माता के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। अमर कोश के अनुसार—"अम्बामाताऽथाबलास्यात्।" ऋग्वेद (६।४६।१२) में कहा है—"रुद्र आकाश, अन्तरिक्ष व पृथ्वीरूपणी तीन माताओं के पुत्र—त्र्यम्बक हैं।"

शंकर के त्रिक में कुछ अन्य भी हैं। शंकर की उपासना में रुद्राक्ष की माला का प्रयोग होता है। इसमें तीन रेखाएं अंकित होती हैं। उनका त्रिशूल तीन शूल वाला है। बिल्व-पत्र की पूजा से शंकर का प्रसन्न होना बताया जाता है। यह तीन दलों से युक्त होता है। शंकर मस्तके क पर त्रिपुण्ड लगाया जाता है जिसमें तीन रेखायें होती हैं। इन तीन रेखाओं का अभिप्राय कालाग्निरुद्रोपनिषद् (३-८) में तीन अग्नियों के लिया गया है 'तीन रेखाओं से प्रथम ही गार्हपत्य, अग्निरूप, अकार रूप, भूलोक रूप, स्वात्मक रूप, क्रियाशक्ति रूप, ऋग्वेद रूप प्रात: सवन रूप और महेश्वर देव के रूप की हैं। दूसरी रेखा 'उ' कार स्वतन्त्र रूप, अन्तरिक्ष रूप, अन्तरात्मा रूप, इच्छा शक्ति रूप, यजुर्वेदरूप, मध्याग्नि सवन रूप और सदाशिव के रूप की है। तीसरी रेखा आह्वनीय रूप, 'म' रूप, तम रूप, परमात्मा रूप, शक्ति रूप, साम वेद रूप, तृतीय सवन रूप और महादेव के रूप की है।

शैव दर्शन में निम्न महत्वपूर्ण तथ्यों का रहस्योद्घाटन होता है:—

ज्ञान इच्छा और क्रिया—किसी सिद्धि के लिए पहले उसका ज्ञान अर्जित करना आवश्यक है फिर उसे व्यवहारिक रूप देने के लिए इच्छा जाग्रत होती है। इच्छा बलवती होने पर क्रिया रूप धारण करती है।

पशुपति, पशु और पाश-जीव रूप हैं, वह अज्ञान के कारण पाश में बँधा हुआ है। शंकर पशुपति हैं, जीवों को ज्ञान का प्रकाश देकर मुक्त करने की क्षमता रखते हैं। पशुपति की आराधना से

जीव रूपी पशु के पाश (बन्धन) खुल जाते हैं और वह मुक्त हो जाता ।

शंकर का त्रिक दर्शन जीवन-उत्थान की प्रेरणाओं से ओत-प्रोत है ।

तीन नेत्रों वाले ईश्वर की उपासना का कुछ उद्देश्य भी होना चाहिए। वह है मृत्यु के बन्धन से मुक्ति । मृत्यु केवल शरीर के नाश का ही नाम नहीं है। इसका वास्तविक अभिप्राय कुछ और है। अतः इसके तत्व ज्ञान को समझना अपेक्षित है ।

जीवन का वास्तविक रहस्य :

इस पंचभौतिक शरीर का आत्मा के साथ संयोग बने रहने पर 'जीवन' और वियोग हो जाने को साधारणतः मृत्यु कहते हैं ।

इस स्थूल शरीर के नाश होने पर मनुष्य छाया शरीर—ईथरिक शरीर धारण करता है और इसी से विभिन्न लोकों में विचरण करता है। ईथरिक शरीर के माध्यम से ही स्थूल शरीर में प्राणों का सञ्चार होता रहता है। इसलिये जैसे-जैसे ईथरिक शरीर का स्थूल शरीर से वियोग होने लगता है, उतनी ही प्राणों के संचार में कमी आ जाती है और उसी अनुपात में शरीर में शिथिलता आती जाती है। जब यह सम्बन्ध सूत्र पूर्णतः नष्ट हो जाता है तो प्राणों का सञ्चार बिल्कुल बन्द हो जाता है और तभी स्थूल शरीर की मृत्यु कही जाती है ।

मृत्यु का अर्थ नाश नहीं है। इसका वास्तविक अर्थ तो यह है कि जीव एक शरीर छोड़कर दूसरा उपयुक्त शरीर धारण कर लेता है। गीता में भगवान् ने एक सुन्दर उपमा द्वारा इसे समझाया है। "जिस तरह कोई व्यक्ति पुराने और जीर्ण-शीर्ण कपड़ों को त्याग कर नये वस्त्र ग्रहण कर लेता है, उसी तरह शरीर का स्वामी आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर नये-नये शरीर धारण करता है।" (२ । २२)।

महाभारत (शान्ति पर्व १५ । १६) में इस प्रकार समझाया गया है कि आत्मा एक घर त्यागकर दूसरे घर में प्रवेश करती है। एक अमरीकन लेखक ने इसे यूँ व्यक्त किया है कि यह पुस्तक की पुरानी जिल्द तोड़कर नई जिल्द बाँधना है।

भौतिकवादी दृष्टिकोण यह कहता है कि इस शरीर के नष्ट होने के साथ-साथ इस जीवन का भी नाश हो जाता है। इसलिये मृत्यु होने पर शोक मनाया जाता है और सम्बन्धी रोते-पीटते हैं। भारतीय तत्व ज्ञानियों ने जीवन का गहन अध्ययन किया है, शरीर के संयोग वियोग की क्रियाओं पर लम्बे समय तक खोजें करते रहे हैं। तत्सम्बन्धी अनुसंधान के परिणामस्वरूप वह इस निर्णय पर पहुँचे कि इस स्थूल शरीर के नष्ट होने पर मनुष्य का नाश नहीं समझना चाहिये, उन्होंने सिद्ध किया है कि मनुष्य एक ऐसा अदृश्य गुप्त तत्व है जो इस पार्थिव शरीर के नष्ट होने पर भी ज्यों का त्यों बना रहता है। यह शरीर तो आत्मा का खोल है। इसके हट जाने से आत्मा के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह तो जैसे पहिले था, वैसा ही बना रहता है। अतः यदि तत्व से समझा जाये तो मृत्यु कोई दुःख का कारण नहीं है। अतः शरीर के वियोग से मृत्यु होने की व्याख्या भ्रममूलक है।

वास्तव में आत्मा, चेतन अथवा विवेक से संयोग को जन्म कहते हैं और चेतन से वियोग होकर जड़ तत्व से संयोग होने पर मृत्यु होती है। अतः यह शरीर रहते हुए भी हमारी मृत्यु हो सकती है। इस व्याख्या के अनुसार तो इस नश्वर जगत में अधिकांश व्यक्ति मृत तुल्य ही रहते हैं। इस मृतक अवस्था को अनुभव करते हुये भी सम्बन्धी कोई शोक नहीं करते, यही खेद है। यदि इस मृत्यु को अमरता में बदलने का प्रयत्न करें तो मृत्यु होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। शरीर के नष्ट होने का जो भय बना रहता है, वह न रहे क्योंकि तब उसे अमर जीवन का सन्देश मिल चुका होगा।

संसार के अणु-अणु में एक चैतन्य तत्व व्याप्त हो रहा है जो जड़ चेतन में एक रूप से समाया हुआ है और सारी सृष्टि का संचालन करता है। अणु में ईश्वर का निवास जानकर प्राणी मात्र को अपने समान समझना ही ज्ञान है। इस ज्ञान को व्यवहारिक रूप देना ही जीवन है। इसके विपरीत चलना ही मृत्यु है। मृत्यु से शरीर का नाश होता है, अज्ञान से चेतना नष्ट होती है, विवेक मृतक अवस्था में पड़ा रहता है। जब मनुष्य क्षुद्र विचारों की गन्दगी को पसन्द करता है तो वह मृत्यु की ओर दौड़ता है। उच्च विचारों की सुगन्ध मिलने पर उसे वास्तविक जीवन की अनुभूति होती है। उच्च आदर्शों के लिए संघर्ष और निम्नगामी प्रवृत्तियों के विरुद्ध निरन्तर लड़ते रहना ही जीवन है। जो सच्चा जीवन जीने की कला जानते हैं, उन्हें शरीर के वियोग से कोई कष्ट नहीं होता है, वह मृत्यु से भय नहीं खाते वरन् उससे दो-दो हाथ लेने के लिये सदैव तैयार रहते हैं। हजार बिच्छुओं के काटने के समान जो कष्ट होना बताया गया है, वह उन्हें अनुभव नहीं होता, वह उसका हँसते-हँसते आलिंगन करते हैं। उनका अन्तः-करण ज्ञान की रश्मियों से आलोकित रहता है। प्रकाश के साथ दुःख का कोई सम्बन्ध नहीं है। अज्ञानान्धकार के साथ ही दुःख का गठ-बन्धन है। अतः भारतीय ऋषियों द्वारा प्रदत्त मृत्यु का तत्व ज्ञान प्राप्त होने पर मृत्यु एक साधारण प्रक्रिया मात्र ही रह जाती है। वह असह्य पीड़ा का कारण नहीं बनती।

महामृत्युञ्जय साधक आत्मा, चेतन और विवेक से संयुक्त रहना चाहता है, वह अणु-अणु में, प्राणी-प्राणी में ईश्वर का निवास मानकर उनसे प्रेम का व्यवहार करके ज्ञान की भूमिका निभाना चाहता है। वह चाहता है कि ज्ञान का सूर्य निरन्तर उसके सामने चमकता रहे। भौतिक सूर्य तो रात्रि में ओझल हो जाता है। यह ज्ञानरूपी सूर्य का जब उदय होता है तो इसके लुप्त होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, इसकी

रश्मियाँ सदैव अन्तःकरण को प्रकाशित करती रहती हैं। जब साधक इस स्तर तक पहुँच जाता है तो उसे प्राणों और शरीर के वियोग का कोई भय नहीं रहता। वह भली प्रकार समझता है कि हाँड़ मांस का पुतला शरीर तो यहीं सड़ गल जायगा। मेरा ज्ञान और विचार संस्कार बनकर निरंतर मेरे साथ रहेंगे। इसलिए वह यमराज के पाशों से मुक्त रहता है। मृत्यु के बन्धन से मुक्त होकर अमृत ही शेष रहता है। यही साधक की ईश्वर से प्रार्थना है। साधक ज्ञानी का जीवन व्यतीत करना चाहता है।

अर्थचिंतन :

मन्त्र में जादू भरी शक्ति होती है। उसके उच्चारण और जप का निश्चित प्रभाव पड़ता है। जप के साथ चिंतन भी साधना का आवश्यक अङ्ग है। नेत्र बन्द करके यह भावना करें कि 'मैं शरीर नहीं, आत्मा हूँ, मेरे शरीर के नष्ट होने, सड़ने और गलने पर मेरी कुछ भी हानि नहीं है। यह रहा मेरा यह भौतिक शरीर जिसको मैंने पाल पोस इतना बड़ा और हृष्ट-पुष्ट किया है, वह धक-धक करके जल रहा है। मैं उसे देख रहा हूँ परन्तु इससे मुझे कुछ कष्ट नहीं हो रहा है क्योंकि वह स्वयं नश्वर है। एक दिन तो उसे मिट्टी में मिलना ही है। इसी से वह बना है। मैं इससे अलग हूँ। इसलिए इसके वियोग का कुछ भी कष्ट नहीं हो रहा है। केवल शरीर ही क्यों, मेरा मकान, जायदाद जिनसे मेरा सांसारिक सम्बन्ध है, वह सभी अग्नि की लपटों में आ चुके हैं। परन्तु उनके वियोग से मेरे जीवन में कुछ भी अन्तर नहीं आने वाला है। सम्पत्ति क्या मेरे सगे सम्बन्धी जिनसे मेरा रक्त का सम्बन्ध है, वह भी साथ छोड़ रहे हैं। एक-एक करके सब मेरे सामने से ओझल हो रहे हैं। यह तो भावी की निश्चित योजना के अनुसार होना ही है। अतः यह मेरी चिन्ता का विषय नहीं है। सभी सांसारिक बंधनों से मैं अलिप्त हूँ। उनके प्रति केवल मेरी कर्तव्य

भावना ही बनी हुई है। मैं शरीर भावना से ऊँचा उठ रहा हूँ। मैं शरीर नहीं, आत्मा हूँ। सुख, दुःख मुझे प्रभावित नहीं कर सकते, विपत्तियाँ, कठिनाइयाँ, संघर्ष मेरे लिए नित्य के खेल मात्र रह गये हैं। जगत की सभी समस्याओं से कदली के पुष्प की तरह मैं इनसे ऊपर अलिप्त और मुक्त हूँ।"

मैं भली प्रकार जानता हूँ कि शरीर का नष्ट होना ही मृत्यु नहीं है, चेतन से वियोग होकर जड़ तत्व से संयोग होना, जड़ तत्वों की उपलब्धि के लिए अनैतिक व अन्यायपूर्ण साधनों का उपयोग करना, धन प्राप्ति के लिए भ्रष्टाचार, बेईमानी, झूँठ, छल, कपट का खुला प्रयोग करना, कामवासना की तृप्ति में ही संलग्न रहना, कुविचारों, कुप्रवृत्तियों, व्यसनों, भोग, असंयम व अज्ञान में फँसना ही मृत्यु है। शोक और चिन्ता इसी मृत्यु की करनी चाहिए।

मुझे शरीर के नाश से कुछ भी भय नहीं है क्योंकि एक शरीर छोड़कर दूसरे को धारण करना उसका सहज स्वभाव है। चिन्ता तो विचारों की गन्दगी की घुटन व सड़ापन से होने वाली चेतन शरीर की मृत्यु से है। मुझे मृत जीवन नहीं व्यतीत करना है। अमर पद पाने की साधना करनी है। कुविचारों, कुप्रवृत्तियों, असंयम, अज्ञान, भोग, अधर्म, अपवित्रता व काम को अपने निकट नहीं आने देना है। इनसे दूर रहकर निरन्तर सद्विचारों, संयम, ज्ञान, धर्म, परमार्थ, पवित्रता की ओर बढ़ना है। इसी से वास्तविक सुख शान्ति व आनन्द की प्राप्ति होती है। यही अमृत प्राप्ति का मार्ग है। मैं इसी की ओर बढ़ रहा हूँ और मुझे अपना लक्ष्य सामने दृष्टिगोचर हो रहा है।

मानस नेत्रों से दृढ़ विश्वास के साथ यह भावना करनी चाहिए। जप करते समय इसे बार-बार दोहराना चाहिए और मनन करना चाहिए। इससे जीवन का कायाकल्प होता है और मृत्यु से छुटकारा प्राप्त करके अमृत की प्राप्ति होती है।

अनुष्ठान :

रोग निवारण अथवा विचारों की शुद्धि के लिए दैनिक जप व मन्त्रार्थ चिन्तन तो करना ही चाहिए। इससे पूर्ण व शीघ्र लाभ उठाने के लिए अनुष्ठान करना चाहिए। पूर्ण अनुष्ठान तो ४० दिनों में १२५००० मन्त्र जप का होता है। लघु अनुष्ठान ६ दिनों में २४००० मन्त्र जप का होता है। एक निश्चित जप संख्या प्रति दिन पूर्ण करके दशांश हवन करना चाहिए। भूमि शयन, ब्रह्मचर्य, चर्म के जूते व दूसरों की सेवाओं का त्याग, एक समय अन्नाहार व एक समय फलाहार आदि नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करना चाहिए। जप करते समय यह भावना करनी चाहिए कि शारीरिक व मानसिक रोग मुझसे भयभीत होकर भाग रहे हैं और हर प्रकार से मैं रोग रहित हो रहा हूँ। यह भावना जितनी दृढ़ होगी, लाभ भी उतना सुनिश्चित होगा।

मन्त्र विद्या और यज्ञ का घनिष्ठ सम्बन्ध

वेदज्ञों का निश्चित मत है कि वेद मन्त्रों का आविर्भाव यज्ञीय साधनाओं को सम्पन्न करने के लिए ही हुआ था। अतः वैदिक मन्त्र विद्या में यज्ञ का प्रमुख स्थान है। इस प्राचीन वैदिक विज्ञान का लोप होते जाना चिंता का विषय है। इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है।

यज्ञ की अपार सामर्थ्य :

यज्ञ भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। हिन्दू धर्म में जितना महत्व यज्ञ को दिया गया है, उतना और किसी को नहीं दिया गया। हमारा कोई भी शुभ-अशुभ धर्म-कार्य इसके बिना पूरा नहीं होता। जन्म से मृत्यु तक सभी संस्कारों में यज्ञ आवश्यक है। हमारे धर्म में वेदों का जो महत्व है, वही महत्व यज्ञों को भी प्राप्त है क्योंकि वेदों का प्रधान विषय ही यज्ञ है। वेदों में यज्ञ के वर्णन पर जितने मन्त्र हैं, उतने अन्य किसी विषय पर नहीं। यदि यह कहा जाये कि यज्ञ वैदिक धर्म का प्राण है तो इसमें भी अत्युक्ति नहीं। वैदिक धर्म से यज्ञ को निकाल दें तो वैदिक धर्म निष्प्राण हो जायेगा। यज्ञ से ही समस्त सृष्टि उत्पन्न हुई। विष्णु को भी अनेक स्थानों पर सृष्टि का रचयिता कहा गया है।

भगवान स्वयं यज्ञ रूप हैं और तदुत्पन्न सम्पूर्ण सृष्टि भी यज्ञ रूप है, तो यज्ञ के अतिरिक्त संसार में कुछ है ही नहीं। चारों वेद भी

इस यज्ञ रूप भगवान से उत्पन्न हुए हैं, अतः यह भी यज्ञ रूप हैं और उनमें जो कुछ है वह भी यज्ञ के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

हमारे वेद शास्त्रों का पन्ना-पन्ना यज्ञ की महिमा से भरा पड़ा है। देखिये ऋग्वेद में विश्व शान्ति का सर्वश्रेष्ठ आधार यज्ञ ही है, (१०।६६।२)······यज्ञ को आगे करके कार्य आरम्भ करो, यज्ञ के साथ आरम्भ किये हुये कार्य सफल होते हैं (१०।१०१।१) यज्ञ से परमात्मा प्रसन्न होते हैं (१।१४।४)···मुक्ति के अधिकारी यज्ञिय देव हैं, सचमुच यज्ञ के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती (४।४५।१··· यह यज्ञ देव (परमात्मा) तक ले जाने वाला है, यह पवित्र है और पवित्र करने वाला है।"

यजुर्वेद में यज्ञ की महत्ता पर इस प्रकार प्रकाश डाला गया है "यज्ञ तप का स्वरूप है (४।२।२६)·· यज्ञ में दी हुई आहुतियाँ कल्याण कारक होती हैं, जिन्हें कल्याण की इच्छा हो, वह यज्ञ में आहुतियाँ दें (१५।३८)···जो असुर प्राण इस पृथ्वी पर असुर रूप से विचरण करते रहते हैं, वह यज्ञ की अग्नि द्वारा शरीर में से निकाल बाहर किये जाते हैं (२ । ३०)···जो यज्ञ को छोड़ता है, उसे यज्ञ रूप परमात्मा भी छोड़ देता है (२ । २३)···यज्ञ ही मुख्य धर्म है (३१।६)·· मन, वाणी, बुद्धि की उन्नति तब होगी जब यज्ञ एवं यज्ञपति की उपासना की जाये। (३०।१)···यज्ञ से सब दिशायें अनुकूल बन जाती हैं (१३।५) यह अग्नि सहस्रों संख्याव ले बल का स्वामी है। धनों का मुख्य दाता और क्रान्ति दर्शक है (१५।२१)। अग्नि विश्व का प्रेरक है (१५।३३)"

अथर्ववेद का कथन है 'यज्ञ करने वाले को स्वर्ग सुख प्राप्त होता है, जिन्हें स्वर्गीय सुख प्राप्त करना अभीष्ट हो, वे यज्ञ किया करें (१८।४।२)·· यज्ञ न करने वाले का तेज नष्ट हो जाता है अथवा अपनी तेजस्विता स्थिर रखने के लिए यज्ञ किया कीजिए···जो इस अग्नि

के चारों ओर बैठ कर दिव्य उद्देश्य से हवि चढ़ाते हैं, उनके हृदय में परमात्मा का तेज प्रकाशित होता है (६।७५)"

ब्राह्मण ग्रन्थों में देखिये 'यज्ञ का पुण्य फल कभी नष्ट नहीं होता, बुद्धिमानी पूर्वक यज्ञ का अक्षय पुण्य संचित करते रहो। (तै०ब्रा० ११४।६ " यज्ञ श्रेष्ठतम् कर्म है।...यज्ञ अग्नि होम निश्चय ही स्वर्ग सुख प्राप्त कराने वाली विशेष नौका है।...यज्ञ ही विष्णु है, यज्ञ ही प्रजापति है, यज्ञ ही सूर्य है। (शतपथ)

गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है "मैं ही यज्ञ हूँ" और कई स्थलों पर उपदेश देते हुए बताया "यज्ञ न करने वाले को यह लोक और परलोक कुछ भी प्राप्त नहीं होता...यज्ञ के निमित्त किये गये कर्मों के करने से यह मनुष्य कर्म बन्धन में बँधता है.. यज्ञ से बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से छूटते हैं।...हवन क्रिया ब्रह्म है,हवि ब्रह्म है, ब्रह्म रूप अग्नि में हवन किया जाता है और ब्रह्म ही हवनकर्त्ता हैं। इस प्रकार जिसकी बुद्धि में सभी कर्म ब्रह्म हो जाते हैं, वह ब्रह्म को ही प्राप्त होता है ..यज्ञ करने योग्य कर्म है।"

मनुजी ने लिखा है—"महायज्ञ और यज्ञ करने से यह शरीर ब्राह्मी या ब्राह्मण बनता है " पुराणों में इस प्रकार उल्लेख है—अग्नि होम (यज्ञ) से बढ़कर और कोई धर्म नहीं, यज्ञ करने वाला ही सच्चा धर्मात्मा है (कूर्म पुराण)। यज्ञ ही कल्याण का हेतु है (विष्णु पुराण)। यज्ञों में सारा संसार निहित है। पृथ्वी यज्ञ से धारण की हुई है। यज्ञ ही प्रजा को तारता है (कालिका पुराण)। अग्नि होम से बढ़कर कोई पवित्र कर्म नहीं हैं। इससे अन्तःकरण पवित्र होता है (पद्म पुराण)। यज्ञ से देवता तथा पितृ जीते हैं (विष्णु धर्मोत्तर पुराण)।"

कठोपनिषद् में यमराज नचिकेता से कहते हैं—"इस अग्नि का शास्त्रोक्त रीति से तीन बार अनुष्ठान करने वाला पुरुष ऋग, यजु,

साम-तीनों वेदों के साथ सम्बन्ध जोड़कर यज्ञ, दान, तप-रूप तीनों कर्मों को करता रहने वाला मनुष्य जन्म मृत्यु से तर जाता है। अग्नि स्वर्ग के प्राप्त करने का, अनंत जीवन का और सम्पूर्ण संसार के स्थिर होने का कारण है। (क्योंकि सूर्य की आकर्षण शक्ति से जगत स्थिर है)" प्रश्नोपनिषद् में यज्ञ को देवताओं, पितरों और ऋषियों का जीवन-प्राण बताया गया है। मुण्डकोपनिषद् का कथन है "अग्निहोत्री को यह आहुतियाँ सूर्य की किरणें बनकर उस स्वर्ग लोक में पहुँचा देती हैं, जहाँ देवताओं का एकमात्र पति निवास करता है।" (द्वितीय खण्ड श्लोक ५) छाँदोग्योपनिषद् में उपकोशल नाम के एक ब्रह्मचारी को, जो सत्यकाम जाबाल के यहाँ ब्रह्मविद्या सीखने गया था, अग्नियों द्वारा ब्रह्मविद्या का उपदेश मिलने का वर्णन मिलता है, क्योंकि उसने बारह वर्षों तक अग्नियों की सेवा की थी।

यज्ञ से आत्म साक्षात्कार, स्वर्ग-सुख, बन्धन मुक्ति, मन-शुद्धि, पाप प्रायश्चित होता है और ऋद्धि-सिद्धियाँ मिलती हैं। अनेक प्रकार के आध्यात्मिक एवं भौतिक शुभ परिणाम प्राप्त होते हैं। अनेकों मानसिक दुर्बलताऐं दूर हो सकती हैं। यज्ञ से प्रसन्न हुए देवता मनुष्य को धन, सौभाग्य, वैभव तथा सुख साधन प्रदान करते हैं। यज्ञ करने वाला कभी दारिद्री नहीं रह सकता। यज्ञ करने वालों की सन्तान बलवान, बुद्धिमान, सुन्दर और दीर्घजीवी होती है। यज्ञ को सर्व-कामना पूर्ण करने वाली कामधेनु और स्वर्ग की सीढ़ी कहा गया है। यज्ञ से अमृतमयी वर्षा होती है। जिससे अन्न, वनस्पति, दूध, खनिज पदार्थों की प्रचुर मात्रा में उत्पत्ति होती है, जिससे प्रणियों का पालन होता है। यज्ञ से सद्भावना पूर्ण वातावरण की उत्पति होने से आकाश में फैले हुए चिन्ता, कलह, क्लेश, शोक, ईर्ष्या, द्वेष, अन्याय लोभ व अत्याचार के भाव नष्ट होते हैं। यज्ञ से वायु शुद्ध होता है। यज्ञ से शत्रु मित्र बन जाते हैं, पापों का नाश होता है, आत्मा

का मैल दूर होता है और लोक के सब दुष्कर्म नष्ट होते हैं। यज्ञकर्ता भय रहित हो जाते हैं। यज्ञ से मल-विक्षेप व कुसंस्कारों का निवारण होता है, मन, वाणी एवं बुद्धि की उन्नति होती है, पवित्र आचरण करने की शक्ति प्राप्त होती है और शान्तिमय वातावरण की उत्पत्ति होती है। यज्ञ करने वाले को माया नहीं सता सकती, उसकी आयु बढ़ती है।

जिस-जिस कामना से जो यज्ञ करता है, उसकी वह सभी कामनाऐं पूर्ण हो जाती हैं। निष्काम भाव से करने वाले को निश्चय ही परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति होती है। पुत्रार्थी को पुत्र लाभ होता है। शरीर, मन तथा आत्मा पवित्र होते हैं। दुःखों से छुटकारा मिलता है। यज्ञ के द्वारा मनुष्य देवता बन सकते हैं, अपनी आसुरी प्रवृत्तियों का शमन कर सकते हैं। यज्ञ से बुद्धि शुद्ध और तीव्र होती है, इन्द्रिय शक्तियाँ बढ़ती हैं। यज्ञकर्ता कष्टों, कठिनाइयों से छूटकर सुख शांति को प्राप्त करता है। यज्ञ प्रसन्नता का स्रोत है, इससे मानसिक शक्तियों का विकास होता है। यज्ञ मनुष्य के अन्दर त्याग समर्पण,परोपकार, आन्तरिक शत्रुओं का दमन, सङ्गठन आदि भावनाओं का संचार करता है। यज्ञ से राजयक्ष्मा (टी० बी०) जैसे रोग ठीक हो सकते हैं। ऋग्वेद भी साक्षी है कि—

"यज्ञ से ज्ञान बुद्धि और बल की वृद्धि होती है। (१।१३।२) यज्ञ सुखों की वर्षा करने वाला है। (१।१६।१)...यज्ञ से सब तरह का कल्याण होता है (५।४।७),जो यज्ञ करता है वह धन ऐश्वर्य से, तेज से तथा यश और कीर्ति से मनुष्य लोक में चमकता है और अन्त में आत्मज्ञानी होकर अमर हो जाता है (६।५।५५)।...हे, वेदपाठ के देवता ! उठो, देवताओं को यज्ञ का संदेश सुनाओ। आयु, प्राण, प्रजा, पशु और कीर्ति बढ़ाओ। यज्ञकर्ता को हर प्रकार से बढ़ाओ। (१०। १६४।२)"। यजुर्वेद में यज्ञ पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है—

"यज्ञ से अशुद्ध तत्वों का नाश होता है। (१।१३)...यज्ञ से आरोग्यता प्राप्त होती है। (१।१४,४।१५)...यज्ञ से दिव्य वातावरण की उत्पत्ति होती है। (१।१५)...यज्ञ से आन्तरिक शत्रुओं का नाश होता है। (१।१७)...यज्ञ नेत्र रक्षक हैं। (२।१६) यज्ञ से असुरों का नाश होता है। (२।३०) यज्ञ सुखों का सचय करने वाला है। (३।४८,४।६)...यज्ञ निश्चम से कल्याणकारी है, वह दीर्घ आयु, उत्तम अन्न, ऐश्वर्य समृद्धि, सुसन्तति व बल पराक्रम प्रदान करता है। (३।६३)..यज्ञ वीरता दायक और कायरता विनाशक है। (४।३७) यज्ञ ऋषियों के हृदय को पवित्र करने वाला है। (३।४) यज्ञ बन्धन का साधन है। (५।३०)...यज्ञ देवताओं, मनुष्यों पितृजनों और अपने प्रति किये गये, जाने या अनजाने किये गये पापों से बचाने वाला है। (८।१३)...यज्ञ करने वाले के लिए वायु और नदियाँ मधुर रस बहाती हैं। (१३।२७)...यज्ञ से आत्मबल की वृद्धि होती है। (१७।६५)..मन, आत्मा, वाणी, प्राण, ज्ञान ज्योति, श्री, वेद, आयु, नेत्र, यज्ञ से सम्पन्न होते हैं। (१८।२६)...यज्ञ से ब्रह्मवर्चस् की प्राप्ति होती है। (१६।१६)...यज्ञ से सद्बुद्धि की प्राप्ति होती है (२०।८५) ...यज्ञ से तीनों छन्दों (तीनो लोकों) जगती, त्रिष्टुप् और गायत्री में कल्याण होता है। (२।२५. ५।१३।१८)"

यजुर्वेद के अठारहवें अध्याय में यज्ञ से अनन्त लाभों का प्रार्थना के रूप में इस प्रकार वर्णन है--"मेरा अन्न, ऐश्वर्य, प्रयत्न, ध्यान, प्रजा, स्वर, प्रशंसा, कीर्ति, ज्ञान, सुख, प्राण, चित्त, विचार, वाणी, मन, चक्षु, चातुर्य, बल, ओज, साहस, स्वामित्व, मानस कोप, क्रोध, उद्वेग, सौम्यभाव. उदार भाव, दीर्घ जीवन, लोक, धनधान्य, वृद्धि, समृद्धि, सत्य, श्रद्धा, तेज, व्यवहार हर्ष, सुन्दर वचन, श्रेष्ठ कर्म, ज्ञान, अमर स्वरूप, आरोग्य, स्वास्थ्य, शत्रु रहित, निर्भयता, संयम शक्ति, धारण शक्ति, धैर्य, प्रेरणा, कल्याण, कामना, प्रसन्नता,

भूत और भविष्य, सुमार्ग और सुपथ्य समर्थ और शक्ति उद्देश्य यज्ञ से सुसम्पन्न होते हैं।"

"यदि रोगी अपनी जीवनी-शक्ति को खो भी चुका हो, निराशा जनक स्थिति को पहुँच गया हो, मरणकाल भी समीप आ पहुँचा हो तो भी यज्ञ उसे मृत्यु के चंगुल से बचा लेता है और सौ वर्ष जीवित रहने के लिए पुनः बलवान् कर देता है। (अथर्व, ३।११।२)"

"गर्भाधान, जात कर्म, चूड़ाकर्म और मौन्जी बन्धन संस्कार करने के समय हवन करने से वीर्य और गर्भ की त्रुटियों और दोनों की परिशुद्धि हो जाती है (मनु०)।" यज्ञ से जनता का कल्याण होता है और उनके बल तथा बुद्धि की शक्ति बढ़ती है।" (ऐतरेय ब्राह्मण ३।२।१।४)। "यज्ञ करने से अपने कर्तव्य का पालन करते हुए प्राणी-मात्र का जो अप्रत्याशित उपकार होता है, उससे स्वर्ग (सुख विशेष) की प्राप्ति होती है। (मीमांसा)।" "आरोग्य प्राप्त करने की इच्छा करने वालों को विधिवत् हवन करना चाहिए (चरक ऋषि)।" "यज्ञ करने वाले को गृह-पीड़ा, बन्धु नाश, धन क्षय, पाप, रोग, बन्धन आदि की पीड़ा नहीं सहनी पड़ती हैं। (कोटि होम पद्धति)।"

ब्रह्माण्ड की सूक्ष्म दिव्य शक्तियों में अव्यवस्था होने पर ही भूकम्प, दुर्भिक्ष, तूफान, अतिवृष्टि, रोग, महामारी आदि सामूहिक विद्वेष, विक्षोभ, युद्ध भय, शोक, सामने आते रहते हैं। यदि इन देव शक्तियों की तुष्टि-पुष्टि होती जाया करे, इनका सन्तुलन बराबर रहे तो कारण नहीं कि इन शक्तियों के ताण्डव को सह कर हम दुःखी हों। ऋग्वेद (१।१६४।३६) की घोषणा है कि—"यज्ञ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की नाभि है—बाँधने वाला है।" अथर्ववेद (६।१०।१४) भी इसका समर्थन करता है। देखिये—"यज्ञ ही समस्त विश्व ब्रह्माण्ड का केन्द्र मूल है।" क्योंकि यज्ञ

से देव शक्तियों को बल मिलता है, जिससे वह सञ्चालन कार्य बड़ी तत्परता से करती रहती है, उसमें कोई गड़बड़ी होने का भय नहीं रहता।

यज्ञ शक्ति विकास का श्रेष्ठ माध्यम है। इसका उपयोग किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया जा सकता है।

यज्ञ का वैज्ञानिक आधार :

आज का युग विज्ञान और बुद्धिवाद का युग है, हर एक बात को विज्ञान और बुद्धि की कसौटी से तोला जाता है, क्यों और कैसे का उत्तर पूछा जाता है। आज का बुद्धिशील मानव केवल विश्वास और श्रद्धा के ही आधार पर किसी कार्य को करने के लिए तैयार नहीं है। वह बुद्धि और विज्ञान पर परखने के पश्चात् ही उस पर आस्था रखना अधिक पसन्द करता है। यज्ञ के सम्बन्ध में भी यही बात है। प्रायः यह सुना जाता है कि यज्ञों में सहस्रों रुपयों का घी और सामग्री होमी जाती है, जिसका कोई लाभ नहीं होता। लोगों को घी खाने को नहीं मिलता, यह बेकार में इसे नष्ट कर देते हैं। जितना यज्ञों में व्यय होता है इतने धन से अनेकों की आवश्यकता पूर्ति हो सकती है, भिखारियों को भोजन आदि खिलाकर पुण्य कमाया जा सकता है। ऐसी धारणाओं का हमारे मनःक्षेत्र में प्रवेश करना स्वाभाविक ही है क्योंकि हम यज्ञ के विज्ञान से बिलकुल परिचित नहीं हैं।

यज्ञ कोई अन्धविश्वास पर आधारित परम्परा नहीं चली आ रही है, यज्ञ करना बुद्धि व विज्ञान रहित नहीं है, बल्कि इसका श्रीगणेश बहुत लम्बे समय की वैज्ञानिक खोजों के पश्चात् ही किया गया था। हमारे प्राचीन ऋषि व महात्मा भौतिकवादी नहीं थे, वे अध्यात्म व सूक्ष्मवादी थे। वे इस तत्व को भलीभाँति जानते थे कि स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म का महत्व अति अधिक होता है, क्योंकि स्थूल सूक्ष्म पर ही आधा-

रित होता है। सूक्ष्म का गुण गतिशीलता है, स्थूल गति रहित है। स्थूल की गति सूक्ष्म के बिना होना असम्भव है।

शरीर और प्राण का उदाहरण ले लीजिये, यदि प्राण हैं तो खाना-पीना, उठना-बैठना, चलना-फिरना, लिखना आदि सब क्रियायें होती रहती हैं, प्राण के शरीर से निकल जाने के पश्चात् शरीर अपने आप एक क्षण के लिए भी कोई कार्य नहीं कर सकता। प्राण के बिना शरीर का कोई महत्व नहीं है। प्राणों के सञ्चार के बिना शरीर में गति होना असम्भव है। प्राण-शक्ति की निर्बलता से ही रोग उत्पन्न होते हैं। प्राण-शक्ति के निर्बल होने से ही शरीर क्षीण होने लगता है। प्राण में शक्ति आने से शरीर में शक्ति आती है। ऐसा होना असम्भव है कि शरीर में शक्ति आने से प्राण में शक्ति आती हो। इसलिए कहा जाता है कि प्राणायाम (वह क्रिया जिससे प्राणों का व्यायाम होता है और जिससे प्राण बलवान होते हैं) से आयु बढ़ती है और ऋषि-मुनि इसके द्वारा अपनी इच्छानुसार आयु बढ़ा लेते थे।

सूक्ष्म में महान् शक्ति है। सिंह और हाथी में शारीरिक शक्ति अधिक होती है, पर मनुष्य अपनी सूक्ष्म बुद्धिशक्ति के सहारे उन्हें अपना गुलाम बना लेता है। ऋषियों के शाप-वरदान सूक्ष्म शक्ति के ही चमत्कार होते थे। सृष्टि-सञ्चालन प्रक्रिया पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि सूक्ष्म शक्तियों के सहारे ही अरबों, खरबों मनों की पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगा रही है। कहने का तात्पर्य यह है कि सूक्ष्मशक्ति स्थूल से अति अधिक होती है। जितना-जितना किसी वस्तु का स्थूलत्व कम होता जाता है, उतनी ही उसमें शक्ति बढ़ती जाती है।

ध्वंस ही सृष्टि का मुख्य कारण है। रगड़ से बिजली पैदा होती है। आप देखते हैं कि बादाम को घिसने से उसकी शक्ति बहुत बढ़ जाती है। कुछ औषधियों को मिलाकर जब सुरमा बनाते हैं तो उसे

वारीक किया जाता है, क्योंकि उसका स्थूलत्व जितना कम होता जाता है, उतनी ही उसमें आरोग्य-शक्ति बढ़ती जाती है। आयुर्वेदिक चिकित्सा में भस्म व कुश्तों को बहुत शक्तिवर्धक बताया जाता है। उनका विद्वान भी यही है कि औषधियों के स्थूलत्व को बहुत कम करने की चेष्टा की जाती है। रोटी के ग्रास आदि खूब चबा-चबा कर खाये जायें तो वह बहुत लाभदायक होते हैं। जल स्थूल है जल में उतनी शक्ति नहीं जितनी कि उसके स्थूलत्व को कम करके वाष्प (भाप) में होती है। आप देखते हैं कि जल का स्थूलत्व कम होकर इसमें इतनी शक्ति आ जाती है कि हजारों मनों के रेलगाड़ी के डिब्बों को तीव्रगति से खींच कर ले जाता है। होमियोपैथिक औषधि बनाने का भी यही विज्ञान है। वह औषधि के स्थूलत्व नष्ट कर देते हैं जिससे वह औषधि बहुत शक्तिशाली बन जाती है। यज्ञ का भी यही विधान है।

औषधियों के स्थूलत्व को नष्ट करके सूक्ष्म बनाकर उनकी शक्ति को सहस्र गुणा बढ़ा दिया जाता है। यज्ञ में होमा हुआ घी और औषधियाँ व्यर्थ नहीं जातीं बल्कि उनका महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। वेद भी इसका साक्षी है। यजुर्वेद (१७।२१) में आया है—"शान्ति॰ कर्त्ता अग्नि हव्य को नष्ट नहीं करता बल्कि वायु आदि देवताओं में विस्तार कर देता है।" आधुनिक विज्ञान भी इस तथ्य को मानता है कि संसार में कोई वस्तु नष्ट नहीं होती, केवल उसका रूप बदल जाता है। यज्ञ स्थूल वस्तुओं को सूक्ष्म बनाने वाला शक्तिशाली यन्त्र है। एक सेर घृत को हजार सेर कर देता है। यह एक ऐसी अद्भुत विज्ञान सम्मत कला है जिससे एक रुपये की वस्तु को एक हजार रुपये मूल्य की बना दी जाती है। डाइनमों बिजली उत्पन्न करता है, यज्ञ हजारों गुना शक्ति बढ़ाने वाला महान् शक्तिशाली डाइनेमो है।

दूसरी बात यह है कि हमारे पूज्य ऋषियों ने जब ध्यानावस्था में देखा कि जब तक आकाशी संसार, पृथ्वी वाले संसार और मनुष्य शरीर वाले संसार में सामंजस्य न हो जाये तब तक मनुष्य परम सुख को प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक तीनों संसारों में एक जैसी बात न हो रही हो, मनुष्य का सुखी रहना असम्भव है क्योंकि जो कुछ आकाश में है, वह इस संसार में है और जो इस संसार में है, वह इस शरीर में है तो शरीर वाले संसार को ठीक रखने के लिए आवश्यक है कि पृथ्वी वाला संसार ठीक हो और पृथ्वी वाले संसार को ठीक रखने के लिए आवश्यक है कि आकाशी संसारिक हो। इससे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि यदि आकाशी संसार ठीक हो तो पृथ्वी व मनुष्य शरीर वाले दोनों संसार अपने आप ठीक हो जाते हैं।

सामञ्जस्य का यह सिद्धान्त प्रकृति का अटल नियम है। आप देखते हैं कि जब तक दो मनुष्यों के विचारों में समता नहीं होती तब तक उनमें मित्रता कदापि नहीं हो सकती। यदि होती भी है तो अस्थायी, स्थायी नही रहती। क्या कभी गँवार और दार्शनिक की, नम्र व अहङ्कारी की, अमीर से गरीब की, सदाचारी व संयमी पुरुष की कपटी-पाखण्डी-व्यसनी और दुराचारी से और श्रेष्ठ की नीच से घनिष्टता हो सकती है ? समता एक ऐसी अद्भुत आकर्षण शक्ति है जो दोनों को एक दूसरे की ओर खींचकर रखती है।

यदि मनुष्य सुखी रहना चाहता है कि सूर्य, चन्द्रमा, वायु, जल, पृथ्वी आदि उसे शक्ति प्रदान कर ऊपर उठावें, यदि वह चाहता है कि सूक्ष्म प्रकृति के अन्तराल में काम करने वाली अदृश्य दिव्य शक्तियों, जिन्हें देवता कहते हैं, को अनुकूल बनाकर और उनसे घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करके, दिव्य गुणों और शक्तियों को धारण करके सुख और शान्ति को प्राप्त करें तो उसे यज्ञ करना होगा, आकाशी संसार को ठीक रखना होगा। चूँकि यह दिव्य शक्तियाँ सूक्ष्म हैं, इसलिए इन

तक पहुँचने के लिए सूक्ष्म की ही आवश्यकता है। यज्ञ स्थूल वस्तुओं को सूक्ष्म बना देता है। यज्ञ इन तीनों संसारों अर्थात् आकाश, पृथ्वी और शरीर में समन्वय परिणाम में सुख और शान्ति का साम्राज्य स्थापित करता है।

आयुर्वेद शास्त्र इसी समन्वय के नियम पर आधारित है। आयुर्वेद का सिद्धान्त यह है कि जिस प्रकार समस्त विश्व भगवान ने पंचतत्व (अग्नि, जल, वायु, आकाश, पृथ्वी) से बनाया है, उसी प्रकार मनुष्य का शरीर भी इन पञ्चतत्वों का समन्वय है, जिनसे वात, पित्त, कफ तीन तत्व बनते हैं। इनके सम अवस्था में रहने से कोई रोग नहीं होता। तीनों की विकृत अवस्था ही रोग का कारण है और इस विकृत अवस्था को समता में लाना ही निरोगता है। सूक्ष्म का ही प्रभाव सूक्ष्म पर पड़ता है, इसी सिद्धान्त पर होमियोपैथिक विज्ञान का आधार है। उनके मतानुसार रोग सूक्ष्म जीवनी शक्ति को होता है, शरीर को नहीं, क्योंकि जड़ शरीर में कोई शक्ति नहीं होती जब तक सूक्ष्म जीवनी शक्ति उसमें गति न दे। उस सूक्ष्म जीवनी शक्ति तक पहुँचने और सूक्ष्म रोग के निवारण के लिए आवश्यक है कि औषधि भी सूक्ष्म हो, क्योंकि स्थूल औषधि स्थूल शरीर पर ही प्रभाव डाल सकती है, सूक्ष्म रोग तक उसकी पहुँच कदापि नहीं हो सकती। इसीलिए होमियोपैथिक औषधियाँ सूक्ष्म होती हैं। उनमें स्थूलत्व बिल्कुल समाप्त हो जाता है। इसी आधार पर होमियोपैथिक डाक्टर कहते हैं कि ऐलोपैथिक आदि स्थूल औषधियां सूक्ष्म जीवनी शक्ति को हुए सूक्ष्म रोग तक न पहुँचने के कारण उसे दबा देती हैं।

होमियोपैथिक विज्ञान के अनुसार यदि रोग और औषधि के लक्षणों में समता न हो तो औषधि सूक्ष्म होते हुए भी उसे आरोग्यता प्रदान नहीं कर सकती क्योंकि समता का नियम भङ्ग होने से आरोग्य शक्ति क्षीण हो जाती है। समता में बहुत शक्ति है। यह मिलाने, जोड़ने, योग सिद्ध करने और मोक्ष दिलाने वाली महान् शक्ति है।

संयोग अर्थात् पदार्थों का परस्पर सङ्गतिकरण ही संसार की स्थिति का कारण है और वियोग विनाश का हेतु। एक दूसरे में प्रेम, एकता, सहयोग और सद्भावों का अविर्भाव तभी होता है जब उनमे समता हो। इसी समता के अटल सिद्धान्त को लेकर हां हमारे प्राचीन ऋषियों ने यज्ञ का महान् आविष्कार किया।

अग्नि के मुख में जो आहुतियाँ दी जाती हैं वह सब देवताओं को प्राप्त होती हैं, जिससे देवता प्रसन्न होते हैं और बदले में हमें उससे अधिक देते हैं। गीता में भी कहा है "इस यज्ञ के द्वारा देवताओं को उन्नत करो और वह देवगण तुम लोगों को उन्नत करें। परस्पर उन्नति करते हुए श्रेय को प्राप्त होगे।" "अग्नि में हवि देने से देवताओं की तृप्ति होती है, वह देवता तृप्त होकर उस मनुष्य को इच्छित समृद्धि के द्वारा सन्तुष्ट करते हैं।" (विष्णु धर्मोत्तर पु०) "यज्ञ से देवता सन्तुष्ट होते हैं।" (कालिका पुराण) "यज्ञ के द्वारा उत्पन्न हुई शक्ति देवताओं को सबल बनाती है और उसी से परिपुष्ट होकर वह सृष्टि रचना से लेकर विश्व कल्याण के समस्त कर्मों का आयोजन करते हैं।" (पद्मपुराण) "यज्ञ से देवों की प्राप्ति होती है।" (मत्स्य पुराण) "यज्ञादि शुभ कर्मों से देवताओं को प्रसन्न करके मनुष्य शक्ति, सुख और सम्पदायें प्राप्त करता है।" (अङ्गिरा)।

जब हम अग्नि के मुख में आहुतियाँ डालते हैं तो अग्नि उन्हें सूक्ष्म बनाकर अदृश्य लोकों में भेज देती है, जहाँ सूक्ष्म दिव्य शक्तियों का निवास होता है। यह स्थूल से सूक्ष्म बनी हुई आहुतियाँ उन सूक्ष्म दिव्य शक्तियों को बलवान बनाती हैं। जैसे कुएँ में आवाज देने से वह टकरा कर वापिस आती है, दीवार पर गेंद फैंकने से वह और अधिक शक्ति से हमारी ओर आती है, जैसा व्यवहार हम किसी से करते हैं, वह वैसा ही करने की कोशिश करता है, प्रेम-प्रेम को खींच लाता है, ईर्ष्या, द्वेष से ईर्ष्या-द्वेष ही बढ़ते हैं, परमार्थ से दूसरों से अधिक अपना

कल्याण होता है, हम जैसे अच्छे या बुरे काम करते हैं वैसे ही परिणाम भोग लेते हैं, वैसे ही वह सूक्ष्म शक्तियाँ जिनको हम बलवान बनने की चेष्टा करते हैं, प्रतिक्रिया में हमें सब प्रकार के लाभों से लाभान्वित करती हैं, हमारे सूक्ष्म शरीर को बलवान बनाती हैं, क्योंकि सूक्ष्म का ही सूक्ष्म पर प्रभाव पड़ सकता है स्थूल का नहीं।

सूक्ष्म शरीर के बलवान होने से मनुष्य चरित्रवान्, परमार्थी, सदाचारी, निर्मल, नम्र, शान्त, प्रेमी साहसी, निर्लोभी, संयमी, चतुर, पराक्रमी, सत्यवान, ईनमादार, दयावान, शीलवान, भाग्यवान, तेजस्वी, देवता, न्यायी, सहनशील, उदार, सन्तोषी, निश्चिन्त, कर्तव्य परायण, विवेकी, निरोगी, निर्भय, और श्रेष्ठ बन जाता है। उसका मन शुद्ध व पवित्र हो जाता है। वह जितना सूक्ष्म बनता जाता है, उतना ही मोक्ष की ओर कदम बढ़ाता जाता है, क्योंकि सूक्ष्म में प्रवेश करने के लिए लिए सूक्ष्म बनना होगा।

पुत्रेष्टि यज्ञ से सुसन्तति की प्राप्ति का भी रहस्य यही है कि स्त्री और पुरुष के रजवीर्य में जो सूक्ष्म दोष होते हैं, उनका निवारण यज्ञ से उत्पन्न सूक्ष्म शक्ति से समता के आधार पर हो जाता है। गर्भाशय और वीर्य रोगों की शुद्धि में यज्ञ विशेष रूप से सहायक होता है। पुरुष अग्नि तत्व प्रधान है और स्त्री चन्द्र (सोम) तत्व प्रधान। इन तत्वों के अभाव से ही सन्तान उत्पत्ति में बाधा पड़ती है। यह तत्व सूक्ष्म होते हैं।

आवश्यकतानुसार सोम व अग्नितत्व प्रधान औषधियाँ होमी जाती हैं। वह सूक्ष्म बनकर इन सूक्ष्म अभावों को दूर करके अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक होती हैं। यज्ञ से आरोग्य का भी यही सिद्धान्त है कि सूक्ष्म पर सूक्ष्म का ही प्रभाव पड़ सकता है। होमियोपैथिक विज्ञान के अनुसार रोग सूक्ष्म होते हैं, स्थूल नहीं। रोग सूक्ष्म जीवनी-शक्ति को होते हैं, शरीर को नहीं। सूक्ष्म जीवनी-शक्ति तक

पहुँचने और उसे रोग से छुड़ाने के लिए सूक्ष्म-शक्ति का होना आवश्यक है। यज्ञ से स्थूल वस्तुएँ सूक्ष्म बनती हैं और समता के सिद्धान्त पर सूक्ष्म जीवनी शक्ति को सूक्ष्म रोग से छुड़ाती हैं।

इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है कि "यज्ञ में दी हुई आहुति के दो रूप बन जाते हैं, वह दो भागों में विभक्त हो जाती है। एक रूप पृथ्वी, आकाश, वायु, जल को शुद्ध करता है, उन्हें शक्ति प्रदान करके मनुष्य के लिए लाभकारी बनाता है। दूसरा भाग मनुष्य के शरीर में प्रवेश करके सूक्ष्म शरीर को निवास स्थान बनाता है। जीवन के अन्त में सूक्ष्म शरीर में लिपटा हुआ आत्मा जब इस शरीर से बाहर निकलता है तो यह आहुतियाँ सूक्ष्म शरीर को लपेटकर उसे ऊपर उठाकर उस लोक में ले जाती हैं जिसकी इच्छा से यह डाली गयी थीं। इन आहुतियों के इस रूप का शक्तिशाली होना इच्छाशक्ति की प्रबलता, श्रद्धा और विश्वास की दृढ़ता पर निर्भर है।"

आज का समाज काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मत्सर स्वार्थ, छल, कपट, ईर्ष्या, द्वेष, राग, बैर, तृष्णा, असहनशीलता आदि के विचारों से गूँज रहा है। विज्ञान कहता है कि विचार कभी नष्ट नहीं होते। वह सूक्ष्म होने के कारण मस्तिष्क से निकल कर आकाश व्यापी ईथरतत्व में प्रवेश करके सारे विश्व में फैल जाते हैं। दूषित विचार वातावरण को दूषित करते हैं। इसलिये केवल अपने मस्तिष्क में बुरे विचार लाना भी महापाप है, क्योंकि जब कोई व्यक्ति ऐसे ही विचार करता है तो वह आकाशव्यापी विचार समता के सिद्धान्त पर आकर्षित होते हैं और उस व्यक्ति के विचारों को उत्तेजित व परिपुष्ट करते हैं जिससे वह उस मार्ग में शीघ्रतिशीघ्र बढ़ने लगता है। तो बुरा सोचना भी दूसरों का बुरा करना है और सद्विचारों का आवाहन करना

परमार्थ है, क्योंकि यह विचार ऐसे ही विचार करने वालों को आगे बढ़ने में सहायक होते हैं। समाज में फैले हुए दुर्गुणों, दुर्विचारों और दुःस्वभावों को दूर करने के लिए आकाश व्यापी दूषित विचारों को नष्ट करने की आवश्यकता है, जिसका सरल और अमोघ साधन यज्ञ है।

यज्ञ से मानो हजारों और लाखों सतोगुण के प्रतीक सूक्ष्म सैनिक आकाश में फैल कर तमोगुण के प्रतीक शत्रुओं को नाश करना आरम्भ कर देते हैं। यज्ञ का जितना अधिक प्रचार होगा और जितने बड़े-बड़े यज्ञ होंगे, उतनी ही मात्रा में यह शत्रु नाश होते जायेंगे। शास्त्रों में देव-असुर संग्राम का वर्णन आता है। यज्ञ से देवता शक्तिशाली बनते हैं और देव-असुर संग्राम का आरम्भ हो जाता है (सद्विचारों और दूषित विचारों में संघर्ष ही देव-असुर संग्राम है), असुर शान्ति को भङ्ग करते हैं। यज्ञ असुरों का नाश करके सुख और शान्ति की स्थापना करते हैं। इस संग्राम के दोनों पक्ष सूक्ष्म होते हैं। इसलिये एक दूसरे पर प्रहार करने की क्षमता रखते हैं। यज्ञ से उत्पन्न हुए शुद्ध और पवित्र सूक्ष्म वातावरण का प्रभाव हमारे सूक्ष्म विचारों पर पड़ता है और वह शुद्ध तथा पवित्र हो जाते हैं। यज्ञ में दूषित विचार को बदलने की अपूर्व शक्ति है। पहले बताया जा चुका है कि सूक्ष्म स्थूल में गति करता है। विचार सूक्ष्म होते हैं, शरीर स्थूल है। शरीर वैसे ही कार्यों में प्रवृत्त रहता है जैसे विचार होते हैं। दूषित विचारों से पाप, अत्याचार, स्वार्थ, व्यभिचार और वैर जैसे कार्य सधते हैं, जिनका भयानक परिणाम होना अनिवार्य है। सद्विचारों, संकल्पों और भावनाओं से परमार्थ, ईमानदारी, भलाई, मित्रता, सहायता, दया, सहानुभूति, सत्य, प्रेम, सन्तोष और प्रसन्नता की प्राप्ति होती है और मनुष्य साधारण से असाधारण, दुरात्मा से महान् आत्मा, महात्मा बन जाता है।

अग्नि अपने भेदक गुणों के कारण स्थूल वस्तुओं को सूक्ष्म बना देती है जिससे सृष्टि संचालन करने वाली ईश्वर की शक्तियों को, जिन्हें देवता नाम से पुकारा जाता है और जिनका सारे संसार की विभिन्न समस्याओं से तथा मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन रोग घनिष्ठ सम्बन्ध है, हम हवि देते हैं, इस के बदले में वह हमें अति अधिक लाभ पहुँचाते हैं। यज्ञ का विधान ठोस वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है।

मन्त्र यज्ञ की आत्मा है

वैदिक काल में यज्ञ का एक ऐसी वैज्ञानिक विद्या के रूप में विकास हुआ था कि इसको किसी भी दिशा में प्रयुक्त करके अनुकूल लाभ उठाये जा सकते थे। वास्तव में यज्ञ शक्ति विकास का एक सरल व सशक्त माध्यम था जिससे हर क्षेत्र में प्रगति की जा सकती थी। भक्ति विकास और आत्म ज्ञान के लिये रुद्र यज्ञ, वृष्टि के लिये विष्णु यज्ञ, शासन व्यवस्था और क्षेत्र विस्तार के लिये अश्वमेध यज्ञ, भूमि सुधार के लिये गोमेध यज्ञ, धन प्राप्ति के लिये सरस्वती यज्ञ, युद्ध में विजय के लिए चण्डी यज्ञ आदि किये जाते थे। जीवन की हर समस्या के समाधान के लिये यज्ञों के ही आयोजन किए जाते थे। इनके विस्तृत व सुनियोजित विधि विधान बने हुए थे।

प्राचीनकाल में यज्ञशक्ति के विशेषज्ञ होते थे। अनेकों प्रकार से इस शक्ति को प्रयुक्त किया जाता था। आसुरी शक्तियों का नाश, चरित्र-विकास, मनोबल की वृद्धि, बुद्धि-प्रखरता और आत्मिक उत्थान तो इसके सहज परिणाम थे ही। अनेकों प्रकार के भौतिक लाभ भी इन से प्राप्त किये जाते थे। धन लाभ, आरोग्य प्राप्ति, विपत्ति-निवारण, आयुवृद्धि, शत्रुओं से रक्षा और उत्तम वर्षा के लाभ भी यज्ञों से उठाए जाते थे। युद्ध के अस्त्र-शस्त्रों में भी यह एक प्रमुख शक्ति मानी जाती थी। मन्त्रों से अभिमन्त्रित दिव्यास्त्र, पाशुपतास्त्र, आग्नेयास्त्र आदि होते

थे । मन्त्र शक्ति से शत्रुसेना में अग्नि को ज्वालायें भड़क उठती थीं और मन्त्र से इस अग्नि को बुझाने के लिये वर्षा भी कर ली जाती थी। मन्त्र से शत्रु-सेना को ज्वर आदि से पीड़ित किया जाता था और सर्प ही सर्प छोड़ दिए जाते थे। मन्त्रों से ऐसे भयंकर अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग होता था, जिनसे प्रलय तक आने की सम्भावना होती थी। इनकी तुलना आधुनिक एटम व हाइड्रोजन बमों से की जा सकती है। यह अभिचार कर्म यज्ञों के माध्यम से ही किए जाते थे।

रामायण और महाभारत में इसकी पुष्टि में अनेकों उदाहरण मिलते हैं। जब रावण को अपनी पराजय स्पष्ट दिखाई देती है, तो वह अपने पुत्र मेघनाद को एक तन्त्र-यज्ञ करने का आदेश देते हैं। मेघनाद निकुम्भला नामक स्थान पर यज्ञशाला बनाकर उसके चारों ओर अपने अस्त्रों को बिछाकर अभिमन्त्रित करने की विधि-व्यवस्था बनाता है, परन्तु उसकी इस योजना को असफल कर दिया जाता है। कहा जाता है कि यदि मेघनाद इसे पूर्ण कर लेता, तो वह अजय हो जाता और आज रामायण का इतिहास कुछ और ही होता।

राजा जन्मेजय के सर्प-यज्ञ में मन्त्र शक्ति द्वारा सारी पृथ्वी से सर्प हवन-कुण्ड में आ-आकर भस्म होते जा रहे थे। राजा पृथु ने १०१ अश्वमेध यज्ञों का संकल्प किया था, जिसमें से १०० पूर्ण हो चुके थे। इन्द्र को अपना आसन छिन जाने का भय उत्पन्न हुआ। वह ब्राह्मण के वेष में आकर यज्ञ में से घोड़े को चुराकर ले गया। दो बार तो घोड़े को वापिस लाया गया, परन्तु जब बाद में इसकी पुनरावृत्ति होने लगी, तो राजा पृथु क्षुब्ध हो उठे और अपने धनुष को उठाया इन्द्र को मारने के लिए। इस पर ऋषियों ने उसे मना किया और कहा कि "यज्ञों में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों द्वारा तुममें इतनी शक्ति उत्पन्न हो गई है कि इससे केवल इन्द्र ही नहीं, सारी इन्द्रपुरी भस्म हो जायगी और संसार में प्रलय आ जायगी।"

राजा बलि ने १०१ अश्वमेध यज्ञों का आयोजन किया था और यज्ञ शक्ति के प्रभाव से शक्ति के रूप में उसे दिव्य अस्त्र-शस्त्र प्राप्त हुए थे, जिनकी सहायता से उसने इन्द्र को पराजित करके इन्द्रासन पर अधिकार प्राप्त किया था। वास्तव में यज्ञ एक शक्ति है। उसका प्रयोग जिस क्षेत्र में भी किया जाए, उधर ही सफलता प्राप्त होती है।

अलंकारिक रूप में यह कथा इस प्रकार वर्णित है कि जब विश्वजित यज्ञ के लिये शुक्राचार्य ने बलि को यज्ञ कराया और उसकी पूर्णाहुति हुई तो अग्नि देवता प्रसन्न हुए और उन्होंने बलि को घोड़ों से जुता एक दिव्य रथ, धनुष, वाण और अभेद्य कवच दिया। बलि ने इन दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करके इन्द्र पर विजय प्राप्त की।

ब्रह्मपुराण के अनुसार बाली ने सहस्रों यज्ञों का आयोजन किया इससे वह परम दुर्जय बन गया।

इन सभी उदाहरणों से एक ही ध्वनि निकलती है कि यज्ञ से शक्ति का विकास होता है, उस शक्ति को किसी भी भौतिक व आत्मिक प्रयोजन के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।

यज्ञ की सफलता के अनेकों स्तम्भ हैं। प्रयोक्ता का दृढ़ निश्चय व संकल्प, मानसिक सबलता और पवित्र भावना का भी प्रमुख हाथ रहता है। विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अलग-अलग हवन सामग्री का विधान है, समिधायें भी उद्देश्य के अनुकूल प्रयुक्त की जाती हैं। आसनों का भी अलग विधान है। कुण्डों का निर्माण भी लक्ष्य के अनुसार ही किया जाता है परन्तु इन सबमें प्रमुख मन्त्र शक्ति है जिसे यज्ञ की आत्मा कहा जाता है। यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले सभी तत्वों में मन्त्र की शक्ति सर्वोपरि है। यज्ञ में सन्निहित शक्ति का आधार मन्त्र ही हैं। अतः यज्ञ की सत्ता मन्त्र में है। इसीलिए इसे वज्र या ब्रह्मास्त्र भी कहते हैं। मन्त्रों का गठन ऐसे चमत्कारी ढङ्ग से हुआ है कि उनके विधिपूर्वक शुद्ध उच्चारण से आकाश में विशेष प्रकार के कम्पन उत्पन्न

होते हैं जो अपनी देह के शक्ति केन्द्रों में झंकार उत्पन्न करते हैं और सूक्ष्म प्रकृति की देव शक्तियों से शरीरस्थ देव शक्तियों का सम्बन्ध स्थापित होता है। यह सम्बन्ध ही शक्तियों के उद्भव का कारण है।

हर मन्त्र की कई नियत ध्वनियाँ होती हैं। उनके समूह को ही मन्त्र की संज्ञा दी गई है। यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों के अर्थ जानने की आवश्यकता नहीं रहती है। उसमें तो शब्दों के शुद्ध उच्चारण पर विशेष ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है। इसीलिए महाभाष्य में लिखा है—

"याज्ञे कर्मणि (प्रयोग –) नियमः।"

अर्थात् यज्ञ कर्म में अर्थ ज्ञान का नियम नहीं रहता परन्तु उस कर्म के प्रयोग का नियम मात्र रहता है। उदाहरण के लिए विवाह संस्कार में जब मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है तो उससे कन्या संस्कृत बनती है। यदि उन मन्त्रों का अनुवाद मात्र पढ़ दिया जाये तो उससे वह शक्ति उत्पन्न होने की आशा कैसे की जा सकती है।

वेदों में मन्त्रों का सग्रह है। काव्य प्रकाश में वेद को शब्द प्रधान स्वीकार किया गया है। कौत्स मुनि के अनुसार वेद मन्त्र अनर्थक होते हैं। इसका भाव बिना अर्थ के नहीं है वरन् यह है कि मन्त्र का उच्चारण विशेष में ही सामर्थ्य है। इसलिये प्रत्येक मन्त्र की शक्ति विशेष की जानकारी होना आवश्यक है। बीजमन्त्र अर्थहीन ही होते हैं परन्तु उनमें शक्ति के भण्डार भरे पड़े रहते हैं।

कुछ लोगों का यह अभिप्राय रहता है कि वेद मन्त्रों में जो अर्थ रहते हैं, लोक में उसकी पूर्ति के लिए उसी मन्त्र की साधना अभीष्ट है। यह भी हो सकता है। परन्तु वास्तव में मन्त्र की शक्ति से उनके अर्थ का कोई सम्बन्ध नहीं है। सूत्रकारों ने मन्त्रों में छिपी शक्तियों को दृष्टि में रखते हुए ही विभिन्न प्रकार के उद्देश्यों के लिये अलग-

अलग विधान बनाए हैं भले ही उनके अर्थ उस विधान के अनुकूल न पड़ते हों।

यज्ञ की सफलता मन्त्र पर निर्भर करती है। परन्तु मन्त्र शक्ति से पूर्ण रूप से लाभ उठाने के लिये उसका विशेषज्ञ बनना आवश्यक है। उसके लिए मन्त्र शक्ति को जाग्रत करना पड़ता है। उसके लिये प्रति दिन श्रद्धा विश्वास से पाठ करना चाहिए। निरन्तर व लम्बे समय का अभ्यास ही सफलता का हेतु बनता है। प्राचीन काल में भी ऐसे ही मन्त्र विशेषज्ञ होते थे। वशिष्ठ की उपस्थिति में दशरथ को पुत्रेष्टि यज्ञ शृङ्गी ऋषि द्वारा कराया जाना इसी तथ्य की ओर ही सकेत करता है। आज तो एक ब्राह्मण सभी प्रकार के कर्मकाण्ड करा देते हैं परन्तु विशेष लाभ उसके विशेषज्ञ द्वारा ही होना सम्भव है जिसने दीर्घकाल तक उसकी साधना की हो।

मंत्र की सफलता का आधार—सस्वर उच्चारण :

वैदिक मन्त्र विद्या का पूर्ण लाभ उनके सस्वर गायन से प्राप्त किया जा सकता है। प्राचीन काल के वृहद् यज्ञों में वातावरण को सङ्गीतमय बनाने के लिये वेद मन्त्रों का मधुर ध्वनि से गायन किया जाता था 'इन्द्र' की प्रसन्नता के लिए 'सामवेद' के अनेकों सूक्तों में 'वृहत् साम' के गायन का वर्णन उपलब्ध होता है। इस उच्चारण-गायन में अनेकों मन्त्र विशेषज्ञ भाग लेते थे। गायन में एकलयता व एकतानता का होना आवश्यक है। इसलिए उनके स्वरों के उतार-चढ़ाव के कुछ नियमों को निर्धारित करना भी आवश्यक जान पड़ा।

वेद को ऋचाओं में अक्षरों के ऊपर और नीचे कई प्रकार की खड़ी और आड़ी रेखायें देकर उनके अनुसार उन अक्षरों के उच्च, मध्यम और मन्द स्वर में बोलने के नियम बनाये गये हैं। इनको 'स्वर' कहा जाता है। इनके मुख्य भेद तीन माने गये हैं, अर्थात् उदात्त,

अनुदात्त और स्वरित । पर इनमें से भी प्रत्येक स्वर अधिक अथवा न्यून रूप में बोला जा सकता है, इसलिए प्रत्येक के दो भेद हो जाते हैं, जैसे उदात्त, उदात्तर, अनुदात्त, अनुदात्ततर, स्वरित स्वरितोदात्त । इनके अतिरिक्त एक स्वर और माना गया है । 'एक श्रुति', जिसमें तीनों का तिरोभाव हो जाता है । इस प्रकार सब मिलाकर सात स्वर माने गये हैं । इनकी व्याख्या महाभाष्यकार महामुनि पतञ्जलि ने इस प्रकार की है :—

"स्वयं राजन्त इति स्वराः । आयामो दारुण्यमणुता खस्येत्युच्चैः कराणि शब्दस्य । आयामो गात्राणां निग्रहः दारुण्यं स्वरस्य दारुतणा रूक्षता अणुता कण्ठस्य कण्ठस्य सवृतला, उच्चैः कराणि शब्दस्य ।

"अन्वय सर्गो गात्राणां शिथिलता, मार्दवं स्वरस्य मृदुता स्निग्धता, उरुता खस्य महत्ता कण्ठस्येति न चै कराणि शब्दस्य ।"

त्रैस्वर्य्येणाधीमहे, त्रिप्रकारै रज्भिरधीमहेः कैश्चादुदात्तगुणैः, कैश्चिदनुदात्तगुणै, कैश्चिदुभयगुणैः । तद्यथा शुक्लगुणः, शुक्लः कृष्णगुणः कृष्णः य इदानीमुभयगुण स तृतीयाख्यां लभते, कल्माष इति वां सारङ्ग इति वा ।"

अर्थात् "जो बिना दूसरे की सहायता के स्वयं ही प्रकाशमान अथवा प्रकट हैं, वे स्वर कहे जाते हैं । अङ्गों का रोकना या वाणी को रूखा करना अथवा उच्च स्वर से बोलना, कंठ को भी कुछ रोक देना ये सब बातें शब्द के "उदात्त" करने वाली होती हैं अर्थात् उदात्त स्वर इन्हीं नियमों के अनुकूल बोला जाता है ।

'शरीर के अङ्गों या गात्रों का ढीलापन, स्वर की कोमलता, कण्ठ को फैला देना, यह सब बातें शब्द को 'अनुदात्त' करने वाली हैं । इस प्रकार हम सब तीन प्रकार के स्वरों से बोलते हैं, अर्थात् कहीं उदात्त, कहीं अनुदात्त और कहीं उदातानुदात्त अर्थात् स्वरित । जैसे श्वेत और

काले रङ्ग अलग अलग होते हैं, परन्तु इन दोनों को मिला देने से जो रङ्ग पैदा होता है, उसका नाम तीसरा ही होता है अर्थात् खाकी अथवा आसमानी। इसी प्रकार उदात्त और अनुदात्त के गुण अलग-अलग हैं पर इन दोनों के मिला देने से एक तीसरा ही स्वर पैदा हो जाता है, जिसे 'स्वरित' कहते हैं।"

"एक श्रुति" में भी उदात्त और अनुदात्त दोनों का सम्मिश्रण होता है, इसलिए "स्वरित" और "एक श्रुति" का भेद करने में कठिनाई पड़ती है। इस सम्बन्ध में प्राचीन व्याख्याकारों ने यह मत प्रकट किया है कि 'स्वरित' में उदात्त और अनुदात्त का सम्मिश्रण इस प्रकार होता है जैसे काठ और लाख का जोड़। ये दोनों एक जान पड़ने पर भी अलग अलग दिखलाये जा सकते हैं और अनुभव किये जा सकते हैं। पर एक श्रुति में दोनों प्रकार के स्वरों का मेल इस प्रकार होता है जैसे दूध और पानी का, जिनको न अलग-अलग किया जा सकता है और न अनुभव में लाया जा सकता है।

इन सात भेदों में भी एक दूसरे का संयोग होने से कई प्रकार के भेद पैदा होते हैं, जिसके लिये स्वर चिह्नों में कुछ परिवर्तन किया जाता है।

"स्वरित" के ही नौ भेद बतलाये हैं :—

(१) संहितज, (२) जात्य, (३) अभिनिहित, (४) क्षैत्र, (५) प्राश्लिष्ट, (६) तैरोव्यञ्जन, (७) वैवृत अथवा पादवृत, (८) तैरो विराम, (९) प्रतिहित।

कई प्राचीन ग्रन्थों में स्वरों के अठारह भेद लिखे हैं और कहते हैं कि आरम्भिक काल में लोग उन सबका स्पष्ट उच्चारण कर लेते थे। पर जैसे-जैसे लोगों के रहन-सहन में कृत्रिमता आती गई और उनका खान पान प्राकृतिक फल, मूल आदि के बजाय तरह-तरह के स्वादिष्ट व्यंजन और पकवान होने लगे, वैसे-वैसे ही उनके कण्ठ स्वर में भी

परिवर्तन होने लगा। इसके फल से विभिन्न प्रकार की सूक्ष्म ध्वनियों के निकालने में उनको कठिनाई होने लगी। तब स्वरों की संख्या सात करदी गयी। फिर जब इनका उच्चारण भी लोग ठीक-ठीक करने में असमर्थ हो गये तब स्वर-सख्या घटाते-घटाते तीन ही रह गई। पर वर्तमान समय में इनको भी शुद्ध रूप से उच्चारण कर सकें, ऐसे वेदपाठी इने-गिने रह गये हैं। इसलिये अब हाथ को ऊपर नीचे करके ही स्वरों का बोध कराया जाता है।

वैदिक छन्दों का ज्ञान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। सभी वैदिक मन्त्र छन्दों में हैं और जब तक छन्दों का ज्ञान नहीं होता तब तक उनको शुद्ध रूप से पढ़ा नहीं जा सकता और न यथोचित फल प्राप्त किया जा सकता है। वेद मन्त्रों में जिन छन्दों का व्यवहार किया गया है, वे मध्यकाल के संस्कृत काव्यों के छन्दों से बहुत भिन्न हैं। वेदों का अनुष्टुप् छन्द तो बाद के संस्कृत ग्रन्थों में भी दिखलाई पड़ता है, पर अन्य छन्द वेद के सिवाय अन्यत्र काम में नहीं आये हैं। सस्कृत में मध्यकालीन और आधुनिक छन्द प्रायः चार चरणों के होते हैं, पर वेदों में तीन चरणों के छन्दों की वहुतायत है। जैसे इन छन्दों के नाम भिन्न हैं उसी प्रकार इन छन्दों का पिंगलशास्त्र भी अन्य ग्रन्थों के छन्दों से भिन्न है वैदिक पिंगल के मुख्य छन्द ये हैं:—

(१) गायत्री (२) उष्णिक् (३) अनुष्टुप् (४) वृहती (५) पंक्ति (६) त्रिष्टुप (७) जगती। ये क्रमशः एक दूसरे से अधिक चरणो के होते हैं। इसमें से प्रत्येक के आठ भेद है (१) आर्षी (२) दैवी (३) आसुरी (४) प्राजापत्या (५) याजुषी (६) साम्नी (७) आर्ची (८) ब्राह्मी। इस प्रकार ५६ भेद तो मुख्य छन्दों के ही हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त शक्वरी अष्टिः ककुभ, कृतिः, धृति, प्रकृति, प्रगाथा, अभिसारिणी आदि नाम के छन्द भी पाये जाते हैं। फिर इसमें से दो-दो और तीन-तीन छन्दों को सम्मिलित करके जो छन्द लिखे गये हैं उनकी गिनती सैकड़ों तक पहुँचती है। उदाहरणार्थ कुछ नाम यहाँ दिये जाते हैं:—

भुरिक त्रिष्टुप, परानुष्टुप् त्रिष्टुप, पुरोवार्हत त्रिष्टुप्, त्रिपदा भुरिगार्ची गायत्री, समविषमा गायत्री, पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा जगती, त्रिष्टुप् बृहती, गर्भाति जगती, विपरीत पाद लक्ष्मा पंक्ति षट्पदा ककुम्भती शक्वरी, पुरोति जगता जगती, पुरस्ताद विराड बृहती, बृहतीगर्भा त्रिष्टुप् उष्णिगू बृहतीगर्भा परात्रिष्टुप् षटपदाऽति जगती, ज्योतिरुष्णिगगर्भा त्रिष्टुप्, विषम पादलक्ष्मा त्रिपदा महाबृहती, चतुष्पदा उष्णिक्, आस्तार पंक्ति, सप्तपदा विराट शक्वरी, पिपीलक मध्या निचृद गायत्री, चतुष्पदा पुरः शक्वरा भुरिग् जगती आदि आदि।

स्वर और छन्दों की उपरोक्त जानकारी से स्पष्ट है कि वैदिक-काल में मन्त्र विद्या को विकसित करने के लिए गहन खोजें हुई थीं। इनको व्यवहार में लाने वाले विशेषज्ञ होते थे। तभी शास्त्रों में वर्णित लाभों को पूर्ण रूप से प्राप्त किया जा सकता था। इस विद्या का लोप होने से इसके विशेषज्ञों का अभाव है। अतः वेद मन्त्रों के उच्चारण से अनुकूल लाभ प्राप्त करना कठिन हो गया है। यदि उनका सस्वर उच्चारण किया जाये तो कोई कारण नहीं कि उनका लाभ निश्चित रूप से प्राप्त न हो। मन्त्र विद्या पर अविश्वास करने वालों को चाहिए कि इस विद्या के नियमों का पालन करने पर ही इनके लाभों की आशा करें। वेद मन्त्र देवता का वरदान नहीं हैं। यह तो शब्दों और ध्वनियों के प्रयोग का एक विज्ञान है। विज्ञान की जानकारी के अभाव में भी उसके चमत्कारी प्रभाव को देखना हास्यप्रद और आश्चर्यजनक है।

यज्ञों में मन्त्रों की ही प्रमुखता है। उनको प्रभावशाली बनाने के लिए आवश्यक है कि वेद मन्त्रों का उच्चारण शुद्ध, स्पष्ट और सस्वर हो।

यजुर्वेद के कुछ विशिष्ट यज्ञीय अनुष्ठान

यजुर्वेद की कर्मकाण्डीय महत्ता—

यजुर्वेद कर्मकाण्ड प्रधान वेद है। इसमें यज्ञों को सम्पादन करने की विधियों का वर्णन किया गया है। पुराणों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि वेद केवल एक ही है और आरम्भ में उसके यज्ञात्मक रूप को ही व्यवहृत देखते हैं। इस तरह से 'यजुर्वेद' ही सर्वप्रथम वेद दिखाई पड़ता है। मत्स्य पुराण के इस श्लोक से भी स्पष्ट है—

> एकोवेदः चतुष्पादः सहृत्यतु पुनः पुनः ।
> संक्षेपादीदायुषश्चैक व्यस्येत द्वापरेष्विह ॥

(अध्याय १४४)

कूर्म पुराण (अध्याय ४९) में भी इस तथ्य की पुष्टि करते हुए कहा गया है—

> एक आसीत् यजुर्वेदस्तच्चतुर्धा व्यकल्पयत् ।
> चातुर्होत्तमभूत मस्मिस्तेन यज्ञमथाकरोत् ॥

इसका अभिप्राय यह है कि आरम्भ में केवल यजुर्वेद ही था जिसका रूप यज्ञात्मक ही था। बाद में जब काल से प्रभावित होकर भूल की सम्भावना हुई तो वेद व्यास ने सुविधा के लिए उसे संक्षिप्त करके चार भागों में बाँट दिया। चार भागों में विभाजित करने की

बात विष्णु भागवत पुराण में भी लिखी है कि भगवान् व्यास रूप में अवतरित हुए और उन्होंने वेद को एक के चार कर दिये।

यजुर्वेद की श्रेष्ठता की छाप विदेशी विद्वानों पर भी पर्याप्त रूप से पड़ी है। उदाहरण के लिए—

"When Yajurved was presented to Voltair he expressed his belief that it was the most precious gift for which the West has been ever indebted to the East."

(Wilson's Essays Vol.III page 304)

अपनी गौरवान्वित गरिमा के कारण ही तो यजुर्वेद पूर्व की अनुपम भेंट, जिसे पढ़कर वालटैर जैसा विद्वान् भी पसीज गया, भारतीय प्रतिभा का प्रज्वलित प्रकाश स्तम्भ, जगत् के भूले भटकों को मार्ग दर्शक के रूप में, वैदिक युग की अनुपम थाती चिरस्मरणीय रहेगी। यजुर्वेद संहिता, अध्वर्यु पुरोहित की अमर प्रार्थना पुस्तक गद्यात्मक मन्त्रों का ही अभिधान है। तभी तो कहा गया है "आनियताक्षरावसानो यजु" तथा "गद्यात्मक यजु" इस अद्वितीय ग्रन्थ के महत्व को आँकना आसान नहीं है। भारतीय संस्कृति के आराधक के लिये आवश्यक है कि इस अमूल्य धरोहर के सँवारे सँजोये रूप को जनता जनार्दन के सम्मुख प्रस्तुत करें। अतः हम अपने इस ग्रन्थ रत्न के विषय में अधिकतम ज्ञान प्राप्त करें।

यजुर्वेद की विशेषता कर्मकाण्ड ही है। इसकी याज्ञिक प्रक्रिया तो सर्वोपरि है। इस विषय में डा० मङ्गलदेव शास्त्री ने लिखा है:—

"यजुर्वेद का घनिष्ट सम्बन्ध याज्ञिक प्रक्रिया से है। "यजुष" और "यज्ञ" दोनों शब्द "देव पूजा सङ्गति करणदानेषु" इस धातु से

निकले हैं। निरुक्तकार यास्क ने भी कहा है—"यजुभिजयन्ति १३।६ तथा "यजुयजते (६।१२) यजुर्वेद संहिता का याज्ञिक कर्मकाण्ड से घनिष्ट सम्बन्ध है। यही सिद्धान्त यजुर्वेद के शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों का तथा प्राचीन भाष्यकारों का है।"

पं० बलदेव उपाध्याय ने भी—"वैदिक साहित्य और संस्कृति" नामक ग्रन्थ में लिखा है कि यजुर्वेद में मुख्यरूपेण वैदिक कर्मकाण्ड का प्रतिपादन है। इसलिए इनकी संहिताएँ—(Diturgical Vedic Sanhita) के नाम से विख्यात हैं।" वास्तव में यदि वाजसनेयी संहिता को देखा जाय तो उसके ४० अध्यायों में २५ अध्याय बड़े-बड़े यज्ञों की क्रिया व विधि-विधान से परिपूर्ण हैं। इस वेद की गरिमा का गान जितना किया जाय वह थोड़ा ही है। डा० शास्त्री के मत में इसकी महत्ता "समस्त वैदिक साहित्य में यजुर्वेद अपना विशिष्ट स्थान रखता है। मनुष्य जीवन के विकास की ज्ञान, कर्म और उपासना तीन सीढ़ियाँ हैं। इनमें कर्म की सीढ़ी या कर्मकाण्ड का प्रतिपादन विशेषत: यजुर्वेद ही करता है। यद्यपि वैदिक कर्मकाण्ड में अन्य वेद भी अपना-अपना स्थान रखते हैं, तो भी उसका प्रधान आधार यजुर्वेद ही कहा जा सकता है।"

अनुष्ठान के नियम :

यजुर्वेद याज्ञिक अनुष्ठानों के लिए प्रसिद्ध है। किसी विशेष उद्देश्य के लिए नियत समय में नियत जप व साधना करना और दैनिक सरल साधना से कुछ कड़े नियमों के पालन करने को ही अनुष्ठान कहते हैं। अनुष्ठान एक ऐसी प्रक्रिया है जो कठिन कार्यों को सरल बनाती है, एक ऐसी साधना प्रणाली है जिससे विशिष्ट शक्तियों का उपार्जन होना सम्भव होता है। आध्यात्मिक भाषा में यूं कह सकते हैं कि सिद्धि प्राप्त करने के लिए अनुष्ठान का सहारा लेना पड़ता है। जितने सिद्ध पुरुषों ने सिद्धियां प्राप्त की हैं, उन्होंने इसी प्रणाली का

अनुकरण किया है और भविष्य में जिन्हें सिद्धि प्राप्त करना अभीष्ट हो, उन्हें भी यही मार्ग अपनाना होगा।

१—अनुष्ठान शुभ दिन और मुहूर्त देख कर शुरू करना चाहिए। प्रतिपदा, पञ्चमी, एकादशी, पूर्णिमा, रविवार, गुरुवार शुभ तिथियाँ मानी जाती हैं। लघु अनुष्ठान चैत्र व आश्विन की नवरात्रियों में उत्तम रहते हैं।

२—जहाँ साधना करनी हो, वहाँ का वातावरण सात्विक हो। स्नानादि से निवृत होकर, स्वच्छ वस्त्रों को ग्रहण करके पूर्व की ओर मुख करके प्रातः काल साधना आरम्भ करनी चाहिये। धूप और दीपक निरन्तर जलते रहें।

३—सतोगुणी साधना में कुश का आसन, सूती वस्त्रों का प्रयोग होता है। रजोगुणी साधना में सूत का आसन, पीले पुष्प, रेशम के वस्त्र प्रयुक्त होते हैं और मुख उत्तर को होता है। तमोगुणी साधना में ऊन का आसन, लाल रङ्ग के पुष्प, ऊन के वस्त्र प्रयुक्त होते हैं और मुख पश्चिम को रहता है।

४—ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिए।

५—चारपाई या पलङ्ग पर न सोवें। भूमि पर या तख्त पर शयन करना चाहिए।

६—जहाँ तक सम्भव हो खड़ाऊँ का प्रयोग करना चाहिए और चमड़े के जूतों का परित्याग करना चाहिए।

७—यथा शक्ति अस्वाद व्रत का पालन करना चाहिए। नमक व मीठा का त्याग हो सके तो करना चाहिए। दोनों में से एक का भी त्याग हो सकता है।

८—अन्न त्याग का भी व्रत लिया जा सकता है। दोनों समय दूध या फलाहार भी लेना चाहिए। एक समय फलाहार व एक समय अन्नाहार भी लिया जा सकता है।

९—सर के बाल न कटावें। ठोड़ी के बाल भी अपने हाथ से ही बनाने चाहिये।

१०--अपने शरीर और वस्त्रों से दूसरों का स्पर्श कम से कम होने दें।

११--इन दिनों दूसरों से कम से कम सेवा लें। अधिकतर काम स्वयं ही करने चाहिए।

१२—नित्यप्रति उत्तम ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिए। स्वाध्याय के सार का मनन, चिन्तन करना चाहिए।

१३—अनुष्ठान के दिनों में सत्य बोलें, किसी की निन्दा न करें, अपशब्द न कहें, अनावश्यक विवाद न करें, किसी को हानि न पहुँचाएं, धन प्राप्ति की अनाधिकार चेष्टा न हो, तमोगुणी प्रकृति वाले व्यक्तियों से अधिक मेलजोल न हो, सात्विक वातावरण व सात्विक विचार हों व व्यवहार हो।

१४—इष्ट मन्त्र को संस्कारित करके ही पुरश्चरण करना चाहिए। मन्त्र जितने अक्षर का है, उतने ही लाख जाप करने से सिद्धि की प्राप्ति बताई गई है।

१५--जिस समय पुरश्चरण आरम्भ किया जा रहा हो, संकल्प करना चाहिये कि आज से इस समय तक यज्ञ साधना शुरू करता हूँ। फिर नित्य प्रति ऐसा संकल्प करना चाहिए। नित्य निश्चित समय और संख्या की आहुतियाँ दें। कभी कम, कभी अधिक, यह क्रम ठीक नहीं है।

यज्ञ की विधि :

हवन में आम, ढाक, गूलर, पीपल, बरगद और छोंकर की समिधायें प्रयुक्त की जाती हैं। हवन के लिए हविष्यान्न के रूप में जौ एक भाग, चावल दो भाग, तिल तीन भाग और शक्कर चार भाग

सामग्री में मिश्रित किये जाते हैं। पञ्च मेवा के लिये बादाम, गोला, छुहारा, किशमिश, चिरोंजी, मुनक्का, पिस्ता, अखरोट, काजू और ताल मखाना में से अपनी सुविधा के अनुसार चुनाव किया जा सकता है। हवन सामग्री में मिलाई जाने वाली विभिन्न औषधियों का विवरण इस प्रकार है:—

चन्दन, अगर, तगर, गूगल, जायफल, जावित्री, दालचीनी, तालीसपत्र, लौंग, बड़ी इलायची, इन्द्र जौ, कपूरकचरी, आँवला, वालछड़, नागकेशर, गिलोय पटोल-पत्र, पँवार के बीज, मुलहठी, लाल चन्दन, मोचरस, केशर, असगन्ध, शीतल चीनी, बावची, चिरायता, ब्रह्मी, शंखपुष्पी, पुष्करमूल, मजीठ, धाय के फूल, खस, गोखरू, शतावर, देवदारु, छारछवीला।

हवन के आवश्यक पात्रों में हैं:--प्रणीता, प्रोक्षणी, स्रुवा, स्रुचि और स्फेय।

प्रात:काल शौच स्नान आदि से निवृत्त होकर और धुले हुए पवित्र वस्त्र ग्रहण करके हवन पर बैठना चाहिये। हवन कर्त्ता यज्ञोपवीत ग्रहण किये हुए हो अथवा हवन से पहले ग्रहण करले। स्थान ऐसा होना चाहिये जहाँ से धुआँ आसानी से बाहर निकल सके और जमा होकर हवन कर्त्ता के लिये असुविधाजनक न हो। वह स्थान जल से धोना चाहिए अथवा गोबर से लीपना चाहिए। चौकी पर नया अथवा धुला हुआ सुन्दर वस्त्र बिछाना चाहिये। उस पर अपने इष्टदेव के चित्र की प्रतिष्ठा होनी चाहिये। यदि कुण्ड बनाने की सुविधा न हो तो पवित्र मिट्टी या बालू की वेदी बनानी चाहिये। समिधायें--पहले से ही वेदी के अनुरूप छोटी कर लेनी चाहिये ताकि समय पर असुविधा न हो। समिधायें--बिलकुल सूखी होनी चाहिए अन्यथा अग्नि ठीक प्रकार से नहीं जल पायेगी और धुँए से असुविधा रहेगी। हवन का सभी सामान जैसे कि समिधायें, हविष्यान्न, सामिग्री, मेवा, पूर्णआहुति

के लिये गोला अथवा सुपारी, मिष्ठान्न, रोली, अक्षत, पुष्प, चन्दन, कुशा, कलावा, धूप, अगरबत्ती, कपूर, रुई, माचिस, कुश के आसन व हवन पात्र आदि पहले से ही एकत्रित करके रखने चाहिये ताकि हवन के बीच में आवश्यक सामान लाने के लिये बार-बार उठना न पड़े। सामग्री में आवश्यकता अनुसार शुद्ध घी मिला लेना चाहिए। वेजीटेबिल घी का प्रयोग इसमें नहीं होना चाहिये। शुद्ध घी की सुविधा न हो तो उसके स्थान पर दूध भी मिलायत जा सकता है।

यज्ञ शक्ति विकास का उच्चतम भारतीय साधन है। अनुष्ठान से विशिष्ट शक्तियों व सफलताओं के प्राप्त होने की आशा करनी चाहिए। २४००० आहुतियों का लघु व सवा लाख आहुतियों का पूर्ण अनुष्ठान होता है। इसे एक निश्चित अवधि में पूरा करना होता है। यज्ञ की सफलता मन्त्र पर निर्भर करती है क्योंकि मन्त्र यज्ञ की आत्मा है। इसलिए साधक का पूरा ध्यान मंत्र के शुद्ध, स्पष्ट व सस्वर उच्चारण की ओर केन्द्रित होना चाहिए।

विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिये यजुर्वेद के विभिन्न मन्त्रों का चयन यहाँ किया गया है जो इस प्रकार है:-

प्रगति पथ पर बढ़ने के लिए :

ॐ उन्नतऽऋषभो वामनस्तऽऐन्द्रा वैष्णवाऽ उन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्टस्तऽऐन्द्रा वार्हस्पत्याः शुकरूपा वाजिनाः कल्माषाऽ आग्निमारुताः श्यामाः पौष्णाः (२४।७)

अग्नि से रक्षा के लिए :

ॐ आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभिगृणीत विश्वे। मा हिꣳसिष्ट पितरः केनचिन्नो यद्वऽआगः पुरुषता कराम (१९।६२)

नष्ट धन की प्राप्ति के लिए :

ॐ अग्नेऽअङ्गिरः शतं ते सन्त्वावृतः सहस्रं तऽ उपावृतः।

अधा पोषस्य पोषेण पुनर्नो नष्टमाकृधि पुनर्नो रयिमाकृधि ॥ (१२ । ८)

सदैव कल्याण बना रहे :

ॐ यथेमां वाचं कल्याणीमा वदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याँ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मापो नमतु ॥ (२६।२) अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासोऽ अग्निम् । घृतस्य धारा समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्षति जातवेदाः ॥ (१७।६६)

जीवन सुखमय हो :

१—ॐ ऋतं च मेऽमृतं मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्चमे दीर्घायुत्वं च मे, ऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे शयनं च मे सूषाश्च मे सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ (१८।६)

२—उपयामगृहीतोऽस्याश्विनं तेजः सारस्वतं वीर्यमैन्द्रं बलम् । एष ते योनिर्मोदाय त्वानन्दाय त्वा महसे त्वा ॥ (१६ । ८)

३—ॐ भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् । सुखं मेषाय मेष्यै ॥ (३।५६)

मंगल कार्यों की सिद्धि के लिए :

ॐ असौ यस्ताम्रोऽ अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः । ये चैनं रुद्राऽअभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषा ँ हेऽऽ ईमहे ॥ (१६।६)

कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्वा काय त्वा ।

सुश्लोक सुमङ्गल सत्य राजन् ॥ (२०.४)

पारिवारिक सुख शान्ति के लिए :

ॐ दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः । अश्रद्धामनृतेऽ

दधाच्छ्रद्धा सत्ये प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्र-मन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ।। (१९।७७)

कष्टों से रक्षा के लिए :

ॐ समुद्रोऽसि विश्वव्यचा अजोस्येकपादहिरुसि बुध्न्यो वाग स्यैन्द्रमसि सदोऽस्यृतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तमध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन्पथि देवपाने भूयात् ।। (५।३३)

नेतृत्व की रक्षा के लिए :

ॐ भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः । दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने च कृषे हव्य-वाहम् ।। (१५।२३)

इन्द्रऽ आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुरऽ एतु सोमः । देवसेन.नामभिञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ।।१७।४०।।

ओजस्वी व्याख्यान की सिद्धि के लिए :

नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं नरिष्ठायै भीमलं नर्माय रेभꣳ हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीषखं प्रमदे कुमारी-पुत्रं मेधायै रथकारं धैर्याय तक्षाणम् ।।३०।६।।

व्यापार या अन्य अभीष्ट कार्यों के विस्तार के लिए :

नर्माय पुंश्चलूꣳ हसाय कारिं यादसे शावल्यां ग्रामण्यं गणकमभिक्रोशकं तान्महसे वीणवादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान्नृत्ता-यानन्दाय तलवम् ।।३०।२२।।

दुःस्वप्नों से रक्षा के लिये :

ॐ यदि जाग्रद्यदि स्वप्नऽ एनाꣳसि चकृमा वयम् । सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ।। (२०।१६)

अभीष्ट कामनाओं की सिद्धि के लिये :

ॐ इष्टो यज्ञो भृगुभिराशीर्दा वसुभिः। तस्य न इष्टस्य प्रीतस्य द्रविणे हागमेः॥ इष्टोऽ अग्निराहुतः पिपर्तु नऽइष्टᳬं हविः। स्वगेदन्देवेभ्यो नमः॥ (१८।५६-५७)

समाज में सम्मान की स्थिरता के लिये :

ॐ याँऽ अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः। निन्दाद्योऽ अस्मान्धिप्याच्च सर्वं तं मस्मसा कुरु॥ (११।८०)

गौरव की स्थिरता के लिये :

ॐ वि नऽ इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः। योऽ अस्माँ शाऽअभिदा सत्यधरं गमद्यातमः॥ (१८।७०)

उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्वन्यमित्राँऽओषतातिग्महेते। यो नोऽ अरातिᳬं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतस न शुष्कम्॥ (१३।१२)

आसुरी शक्तियों से रक्षा के लिये (स्थूल व सूक्ष्म) :

ॐ ये रूपाणि प्रति मुञ्चमानाऽ असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति। परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात्॥ (२।३०)

वीरतापूर्ण आशाओं की पूर्ति के लिए :

ॐ उप प्रागात्सुमन्मेऽ धायि मन्म देवानामाशा उपवीत पृष्ठः। अन्वेनं दिप्र ऽऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे च कृमा सुबन्धुम्॥ (२५।३०) देवस्त्वा सवितोद्वपतु सुपाणिः स्वंगुरिः सुबाहुरुत शक्त्या। अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिशऽ आपृण॥ (११।६३) प्राचीमनु प्रदिश प्रेहि विद्वानग्ने एने पुरोऽअग्निर्भवेह। विश्वाऽ आशा दीद्या नो विमाह्यूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥ (१७।६६)

वाजो नोऽ अद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँ ।। ऋतुभिः कल्पयाति । वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वाऽ आशा वाजपतिर्जयेयम् ।। (१८।३३) वाजः पुरस्तादुत मध्यतोनो वाजो देवान् हविषा वर्धयाति । वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वाऽ आशा वाजपतिर्भवेयम ।। (१८।३४) महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः । मैधीर्विद्युतो गाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ।। (२३।३५) अनाधृष्यो जातवेदाऽ अनिष्ट्रतो विराऽग्ने क्षत्रभृद्दीदिही ह । विश्वाऽ आशाः प्रमुञ्चन्मानुषीर्भियः शिवेभिरद्य परिवाहिनो वृधे (२६।६) विश्वाऽ आशा दक्षिणसद्विश्वान्देवानयाडिह । स्वाहा कृतस्य धर्मस्य मधोः पिवत मश्विना ।। (३८।१०) ।

भयंकर रोगों से रक्षार्थ :

ॐ विदद्यती सरमा रुग्णमद्रेर्महिपाथः पूर्व्यठं० सध्यक्कः । अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छारवं प्रथमा जानती गात् (३३।५९) याः सेनाऽ अभीत्वरीपाव्याधिनीरुगणाऽ उत । ये स्तेना ये च तस्क रास्ताँस्तेऽ अग्नेऽपि दधाम्यास्ये (११।७७) नमः कृत्स्नाय तया धावते सत्वनां पतये नमो नमः सहमानाय निव्याधिनऽ आव्या धिनीनां पतये नमो नमो निषङ्गिणे ककुभायस्तेनानां पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमः (१६।२०) नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो नमोऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्व वो नमो नमऽ आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्चव ो नमो नमऽ उगणाभ्यस्तृठं० हतीभ्यश्च वो नमः ।। (१६।२४) ॐ आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूरऽ इष व्योति व्याधी- महारथो जयतां दोग्ध्री धेनुर्वोढा नड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्ण रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे

निकामेनः पर्यन्यो वर्षतु फलवत्योनऽ ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् (२२।२२)

भक्तिभाव की स्थिरता के लिये :

ॐ यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह। तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहग्निना॥ यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यञ्चौ चरतः सह। तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते॥ (२०।२५)

शङ्का निवृत्ति के लिये :

ॐ वह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्राश्चिश्चाकृणोति समनावगत्य। इषुधिः संकाः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः (२९।४२)

श्रेष्ठ पुरुषों से सम्पर्क स्थापित करने के लिये :

ॐ विनऽ इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः। यो अस्मांश्ऽ अभिदा सत्यधरं गमया तमः। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विभृधऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विमृधे॥ (८।४४)

सांसारिक जीवन नवोत्थान के लिये :

ॐ उपावीरस्युप देवान्दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्यिमान्। देव त्वष्टर्वसु रम रम हव्याते स्वदन्ताम्॥ (६।७)।

यात्रा की सुख सुविधा के लिये :

ॐ स्वयं वाजिस्तन्वं कल्पद्यस्व स्वद्यं यजस्व स्वयं जुषस्व। महिंमातेऽन्येन न संनशे॥ (२३।१५) न वा उऽ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवां २॥ उदेषिपथिभिः सुगेभिः। यज्ञासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वः देवः सविता दधातु॥ (२३।१६)

परिवार में ईश्वर भक्ति बनी रहे :

ॐ पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञभवन्तु देवीरपामतिं दुर्मतिं बाधमानाः । रायस्पोषे यज्ञपति माभजन्ती रायस्पोषेऽ अधि यज्ञोऽ अस्थात् ।। (१७।५४)

सद्‌बुद्धि के विकास के लिये :

ॐ ऋत ँ सत्यमृत ँ सत्यमग्नि पुरीष्यमग्निरस्वद्भ-रामः । ओषधयः प्रतिमोदध्वमग्निमेत ँ शिवमायन्त मभ्यत्र युष्माः । व्यस्यविश्वाऽ अनिराऽ अमीवा निषीदन्नो ऽ अय दुर्मतिं जहि ।। (११।४७)

मित्रों व सम्बंधियों से सहयोग प्राप्ति के लिये :

ॐ मरुता ँ स्कन्धाविश्वेषां देवानां प्रथमावीकसा रुद्राणां द्वितीया वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ कुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्रा बृहस्पतीऽ ऊरुभ्यां मित्रावरुणाव्या वलगाभ्याभाक्रमणं ँस्थूरा-भ्यां वलं कुष्ठाभ्याम् ।। (२५।६)

लेखन कार्यों में सफलता के लिये :

ॐ द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिं ँ सी पृथिव्या संभव । अय ँ हि त्वा स्वधितिस्तेति जानः प्रणिनाय महते सौभगाय । अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शाविवय ँ रुहेम ।। (५।४३)

ईश्वर की कृपा प्राप्ति के लिये :

ॐ पावकया पश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्नुरुचऽ का उषसो न भानुना । तूर्वन्न द्यामन्नेतशस्य नू रणऽ आद्यो धृषाणोऽ अजरः ।। (१७।१०)

अग्नि ँ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसु ँ सूनु ँ सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्। यऽ ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा। घृतस्य विभ्राष्टिमनुवष्टि शोचिषा जुह्वानस्य सर्पिषः॥ (१५।४७)

अभित्यं देव ँ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवं ँ रतधामभिप्रियं मतिं कविम्। ऊर्ध्वा यस्याऽमतिर्भा आदिद्युतत्सवीमनिहिरण्यपाणिमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः प्रजाभ्यस्त्व प्रजाभ्यस्त्वप्रजास्त्वानु प्राणान्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि॥ (४।२५)

शत्रुओं के विरोध की समाप्ति के लिये :

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेश्विनो र्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अश्विनो र्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्च सायाभिषिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभिषि ञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण वलाय श्रियै यशसेऽभिषिञ्चामि॥ (२०।३)

समाज हमारे सहयोग का अभिलाषी हो :

ॐ यमग्ने कव्यवाहनं त्वं चिन्मन्यसे रयिम्। तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम्॥ (१६।६४)

निर्विघ्न गमन के लिये :

ॐ द्रोप ऽ अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित। आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ्मो च नः किञ्चनाममत्॥ (१६।४७)

ईश्वर के सन्देश निरंतर स्मरण रहें :

ॐ कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं तऽ

इत्था । संपृच्छसे सम राणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्तेऽ अस्मे । महां शाऽइन्द्रो यऽ ओजसा कदा चन स्तरीरसि कदा चन प्रयुच्छसि ।। (३३।२७) देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन् । श्रोत्रं न कर्णयोर्यशोजोष्ट्रीभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधयेस्य व्यन्तु यज ।। (२१।५१)

जीवन के उत्थान के लिये :

ॐ पुराक्रूरस्य विसृपो विरप्सिन्नु दादाय पृथिवीं जीवदानुम् । यामैरयंश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामुधीरासोऽ अनुदिश्य यजन्ते । प्रोक्षणीरासादय द्विषतो वधोऽसि ।। (१।२८)

अथर्ववेद के चमत्कारी प्रयोग

अथर्ववेद में विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक विषयों का विवेचन है। इसलिए इसे विज्ञान विषयक वेद की संज्ञा दी जाती है। ऋग्वेद (१०। २१। ५) में भी स्पष्ट कहा है—

"अग्निर्जातो अथर्वणा विद्द विश्वानि काव्या।"

"अथर्वा से उत्पन्न विद्या ने समस्त काव्यों का ज्ञान प्राप्त किया।"

इसका अभिप्राय यह है कि अथर्ववेदीय मन्त्र विद्या का जानने वाला धर्म, अर्थ, काम के अर्जन के साथ मोक्ष को भी प्राप्त कर लेता है, लौकिक उपलब्धियों के साथ वह पारलौकिक सिद्धि को भी प्राप्त करने की क्षमता रखता है। अथर्ववेद का जानने वाला व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का भी समाधान कर सकता है। कहा भी है—

यस्य राज्ञो जनपदे अथर्वा शांति पारगः।
निवसत्यादि तद्राष्ट्रं वर्धते निरुपद्रवम्॥

"जिस राष्ट्र या राज्य में अथर्ववेद का ज्ञाता शान्ति के विधान को जानने वाला विद्वान् रहता है, वह राष्ट्र सब प्रकार के उपद्रवों से बचकर प्रगति करता रहता है।"

अथर्ववेद का नामकरण मन्त्र विद्या की विशेषता के कारण ही हुआ है। वेद मन्त्रों की सफलता यज्ञ पर निर्भर करती है, वेद मन्त्रों का निर्माण यज्ञों के सम्पादन के लिए ही किया गया है। कहा भी है—

यज्ञैरथर्वा प्रथम: पथस्तते।

"अथर्वा ने प्रथम यज्ञ में धर्म मार्ग की स्थापना की। यज्ञ व अग्नि का वाचक होने के कारण ही वेद का नाम अथर्व वेद रखा गया। अथर्वाचार्य ने ही अग्नि विद्या को विकसित किया––

त्वमग्ने पुष्कराद ह्यथर्वा निमरमन्यत:।

यहाँ अग्नि को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि तुम्हें अथर्वाचार्य ने आकाश में मथा, तभी तुम्हारा अविर्भाव हुआ।

अग्निर्जातो अथर्वण:।

"अथर्वा से ही अग्नि विद्या की उत्पत्ति हुई। तभी वृहद् यज्ञीय आयोजनों में ब्रह्मा पद का अधिकारी अथर्ववेद का ज्ञाता ही हो पाता था। वेद का स्पष्ट आदेश है––

ऋग्वेदेन होता करोति यजुर्वेदेनाध्वर्यु: सामवेदोनोद्गाता अथर्वेवा ब्रह्मा।

"ऋग्वेद का जानने वाला होता, यजुर्वेद का अध्वर्यु, सामवेद का उद्‌गाता और अथर्ववेद का ब्रह्मा होना चाहिये।

अथर्ववेदीय मन्त्र विद्या के विशेषज्ञ को 'अथर्वा' नाम से अभिहित किया जाता है। अथर्वा का अर्थ अचंचल भी होता है, जिसने योगाभ्यास करके मन को नियन्त्रण में कर लिया है, और चित्त की वृत्तियों का जिसने निरोध कर लिया है, जिसे स्थिरता, स्थितप्रज्ञता प्राप्त हो गई है, ऐसा योगी ही अथर्ववेद के मन्त्रों का सफल प्रयोग कर सकता है, वही इनके रहस्यों को खोलने का सच्चा अधिकारी है।

अथर्ववेद की महत्ता इसलिये भी है कि अन्य धर्मों ने भी इससे शिक्षाएँ व प्रेरणाएँ प्राप्त की हैं। अरबी के एक ख्याति प्राप्त विद्वान् "सेल" ने अपनी "कुरान" की भूमिका में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि इस्लाम के प्रवर्तक मुहम्मद ने यहूदियों से ज्ञान प्राप्त किया, यहूदियों के गुरु पारसी थे और पारसियों के ज्ञान का स्रोत अथर्ववेद है।

अथर्ववेद की महत्ता केवल लौकिक विद्याओं के कारण ही नहीं है, इसमें अध्यात्म विद्या भी ओत-प्रोत है। तभी इसे 'ब्रह्मवेद', 'अमृतवेद', 'आत्मवेद' की संज्ञा दी गई है। अथर्ववेदीय विद्याओं का विस्तृत उल्लेख इस पुस्तक के एक पूर्व लेख "लौकिक व पारलौकिक विद्याओं के मूल स्रोत—वेद" में कर चुके हैं। उससे विदित होगा कि अथर्ववेद ने मानव जीवन की सभी समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया है। वास्तव में जिसने अथर्ववेद को समझ लिया, उसने जीवन जीने की कला सीख ली।

अथर्ववेद में औषधि विद्या का वर्णन है—

"भेषजं वा अथर्वणानि" ताण्डच महाब्राह्मण।

अथर्ववेद में रोग निवारण व अन्य अनेकों प्रकार के उपचार दिये गये हैं। यह मन्त्र विद्या के चमत्कार हैं। कुछ लोगों को इससे भ्रम हो गया और इसे जादू टोना का वेद कहने लगे। वास्तविकता यह है कि प्राचीन काल में ऋषि बाह्य उपचारों पर विश्वास नहीं करते थे। वे आत्म शक्ति से सम्पन्न होते थे। अतः शारीरिक विद्युत व मानसोपचार की वैज्ञानिक विधियों पर अधिक बल देते थे और उन्हीं के द्वारा वह कठिन से कठिन रोगों को नष्ट कर देते थे। प्राचीन विद्याओं पर तभी विश्वास होने लगता है जब आधुनिक विज्ञान उसमें थोड़ा सा परिवर्तन करके नये रूप में उपस्थित कर देता है। आज विदेशी विद्वानों ने मार्जन या अभिमर्शन (मेस्मरेजिम), आदेश

(हिप्नैटिक सजैसशन), सङ्कल्प या आवेश (सेल्फ हिप्नोटिज्म), मानसोपचार (मैन्टल हीलिंग) आदि की विधियों को आविष्कृत किया है। यह सब भारतीय ग्रन्थों के आधार पर ही किया गया है।

अथर्ववेद में जिन विद्याओं का वर्णन मिलता है। उनका सफल प्रयोग किया जा सकता है। यहाँ कुछ प्रयोग दिये जा रहे हैं। संकेत विधियाँ उनके साथ ही दी गई हैं। मन्त्रों का उच्चारण स्पष्ट व सस्वर होना चाहिए क्योंकि मन्त्र विद्या शब्द विज्ञान पर आधारित है। अनुष्ठान के नियम व यज्ञ की विधि 'यजुर्वेद के कुछ विशिष्ट यज्ञीय अनुष्ठान' प्रकरण में देख लें। प्रयोग इस प्रकार हैं :—

[१]

आयु वृद्धि के लिए

पलाश मणि को निम्न मन्त्रों से १०८ बार अभिमन्त्रित करके तावीज के रूप में धारण करें और नित्य इन मन्त्रों का पाठ करते रहें तो शरीर स्वस्थ व निरोग रहता है और शतायुष्य की प्राप्ति होती है :—

आयगमन् पर्णमणिर्बली बलेन प्रमृणन्त्सपत्नान् ।
ओजो देवानी पय ओषधीनी वर्चसा मा जिन्वत्व प्रयावत् ॥१
मयि क्षत्रं पर्णमणे मयि धारयताद् रयिम् ।
अहं राष्ट्रस्याभीनर्गे निजो भूयाममुत्तमः ॥२
यं निदधुर्वनस्पतौ गुह्यं देवाः प्रियं मणिम् ।
तमस्मभ्यं सहायुषा देवा ददतु भर्तवे ॥३
सोमस्य पर्णः सह उग्रमागन्निन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः ।
तं प्रियासं बहु रोचमानो दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥४
आ मारुक्षत् पर्णमणिर्मह्या अरिष्टतातये ।
यथाहमुत्तरोऽसान्यर्यम्ण उत संविदः ॥५

ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः ।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ।।६
ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये ।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ।।७
पर्णोऽसि तनूपानः सयोनिर्वीरो वीरेण मया ।
संवत्सरस्य तेजसा तेन बध्नामि त्वा मणे ।।८

(अ० ३।५)

[२]

शंख मणि को निम्न मंत्रों से १०८ बार अभिमन्त्रित करके धारण करने से रोगों से रक्षा होती है और आयु की वृद्धि होती है। इन मंत्रों का दैनिक पाठ व हवन भी होना चाहिए।

वाताज्जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिषस्परि ।
स नो हिरण्यजाः शंखः कृशनः पात्वंहसः ।।१
यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे ।
शङ्खेन हत्वा रक्षांस्यत्त्रिणो वि षहामहे ।।२
शङ्खेनामीवाममतिं शङ्खेनोत सदान्वाः ।
शङ्खो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः ।।३
दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्यपर्याभृतः ।
स नो हिरण्यजाः शंख आयुष्प्रतरणो मणिः ।।४
समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः ।
सो अस्मान्त्सर्वतः पातु हेत्या देवासुरेभ्यः ।।५
हिरण्यानामेकोऽसि सोमात् त्वमधि जज्ञिषे ।
रथे त्वमसि दर्शत इषुधौ रोचनस्त्वं प्र ण आयूंषि तारिषत् ।।६
देवानामस्थि कृशनं बभूवः तदात्मन्वच्चरत्यप्स्वन्त ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलायदीर्घायुत्वाय शतशारदाय
कार्शनस्त्वाभिरक्षतु ।। ७ (अ० ४।१०)

[३]

जब रोगी मृत्यु शय्या पर पड़ा हो और किसी प्रकार से रोग निवृत्ति न हो पा रही हो तो निम्न मंत्रों से अभिमन्त्रित जल का नित्य पान करें। इससे प्राणों में शक्ति आती है:—

आवतस्त आवत: परावतस्त आवत: ।
इहैव भव मा नु गा पूर्वाननु गा: पितृनसुं बध्नामि ते दृढम् ।।१
यत् त्वाभिचेरुः पुरुष: स्वो यदरणो जन: ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ।।२
यद् दुद्रोहिथ शेपिषे स्त्रियै पुंसे अचित्त्या ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ।।३
यदेनसो मातृकृताच्छेषे पितृकृताच्च यत् ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ।।४
यत् ते माता यत् ते पिता जामिर्भ्राता च सर्जत: ।
प्रत्यक सेवस्व भेषजं जरिदष्टिं कृणोमि त्वा ।।५
इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह ।
दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपुरा इहि ।।६
अनुहूत: पुनरेहि विद्वानुदयन पथ: ।
आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोऽयनम् ।।७
मा बिभेन मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा ।
निरवोचमह यक्ष्ममगेभ्यो अगज्वरं तव ।।८
अगभेदो अगज्वरो यश्च ते हृदयामय: ।
यक्ष्म: श्येनइव प्रापप्तद् वाचा साढ: परस्तराम् ।।९
ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृवि: ।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम् ।।१०
अयमग्निरुपगद्य इह सर्य उदेतु ते ।
उदेहि मृत्योर्गम्भीरात् कृष्णाच्चित् तमसस्परि ।।११

नमो यमाय नमो अस्तु मृत्यवे नमः पितृभ्य उत ते नयन्ति ।
उत्पारणस्य यो वेद तमग्नि पुरो दधेऽस्मा अरिष्टतातये ।।१२
ऐतु प्राण ऐतु मन चक्षुरथो बलम् ।
शरीरमस्य सं विदां तत् पदभयां प्रति तिष्टतु ।।१३
प्राणेनाग्ने चक्षुषा सं सृजेमं समीरय तन्वा सं बलेन ।
वेत्थामृतस्य मा नु गान्मा नु भूमिगृहो भुवत् ।।१४
मा ते प्राण उप दसन्मो अपानोऽपि धायि ते ।
सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः ।।१५
इयमन्तर्वदति जिह्वा बद्धा पनिष्पदा ।
त्वया यक्ष्मं निरवोचं शतं रोपीश्च तक्मनः ।।१६
अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः ।
यस्मै त्वमिह मृत्यये दिष्ट पुरुष जज्ञिषे ।
स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः ।।१७

(अ० ५ । ३०)

[४]

जब रोगी मृत्यु के मुख में बँधा दिखाई दे रहा हो तो उसे यम के पाश से ऊपर उठाने के लिए निम्न मन्त्रों का पाठ व हवन करना चाहिये :—

अन्तकाय मृत्यवे नमः प्राणा आपाना इह ते रमन्ताम् ।
इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके ।।१
उदेनं भगो अग्रीदुदेनं सोमो अंशुमान् ।
उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये ।।२
इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः ।
उत त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि ।।३
उत् क्रमात्ः पुरुष माव पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः ।
मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः ।।४

तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः।
सूर्यस्ते तन्वे शं तपाति त्वा मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः ॥५
उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षताति कृणोमि।
आ हि रोहेममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥६
मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भून्मा जीवेभ्यः
प्र मदो मानु गाः पितॄन्।
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ॥७
मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम्।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे ॥८
श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ।
अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः ॥९
मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि।
तम एतत् पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक् ॥१०
रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्वन्ता रक्षतु त्वा मनुष्या यमिन्धते।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्र धाग् विद्युता सह ॥११
मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात् संकसुकाच्चर।
रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च।
अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः ॥१२
बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च
त्वानवद्राणश्च रक्षताम्।
गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम् ॥१३
ते वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा ॥१४
जीभेभ्यस्त्वा समुदे वायुरिन्द्रो धाता दधातु सविता त्रायमाणः।
मा त्वा प्राणो बलं हासीदसुं तेऽनु ह्वयामसि ॥१५
मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदन्मा,
जिह्वाबर्हिः प्रमयुः कथा स्याः।

उत् त्वादित्या वसवो भरन्तूदिन्द्राग्नी स्वस्तये ।।१६
उत् त्वा द्यौरुत् पृथिव्युत प्रजापतिरग्रभीत् ।
उत् त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् ।।१७
अयं देवा इहैवास्त्वयं मामुत्र गादितः ।
इमं सहस्रवीर्येण मृत्योरुत् पारयामसि ।।१८
उत् त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः ।
मा त्वा व्यस्तकेश्यो मा त्वाघरुदो रुदन् ।।१९
आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्चतेऽविदम् ।।२०
व्यवात् ते ज्योतिरभूदप त्वत् तमो अक्रमीत् ।
अप त्वन्मृत्युं निर्ऋतिमप यक्ष्मं नि दध्मसि ।।२१
(अ० ८ । १)

[५]

जब कोई बालक मृत्यु के निकट पहुँच गया हो तो निम्न मन्त्र कवच का सा काम करते हैं, यमदूत उसे ले जाने का साहस नहीं करते, मन्त्रशक्ति से वह यम पाशों से निकल आता है और वह शतायुष्य होकर जीता है। पाठा नामक औषधि को अभिमंत्रित करके सेवन कराया जाए तो अधिक लाभ होता है।

आ रभस्वेमाममृतस्य श्नुष्टिमच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते ।
असुं त आयुः पुनरा भरामि रजस्तमो मोप गा मा प्र मेष्ठाः ।।१
जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङा त्वा हरामि शतशारदाय ।
अवमुञ्चन् मृत्युपाशानशस्ति द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि ।।२
वातात् ते प्राणमविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव ।
यत् ते मनस्त्वयि तद् धारयामि सं वित्स्वाङ्गैर्वद जिह्वयालपन्।।३
प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदामग्निमिव जातमभि सं धमामि ।
नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणायातेऽकरम् ।।४

अयं जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि ।
कृणोम्यस्मै भेषज मृत्यो मा पुरुषं वधीः ॥५
जीवलां नघारिषां जीवन्तीपोषधीमहम् ।
त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हवेऽस्मा अरिष्टतातये ॥६
अधि ब्रूहि मा रभथाः सृजेमं तवैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु ।
भवाशर्वौ मृडतं शर्म यच्छतमपसिध्य दुरितं धत्तमायुः ॥७
अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीमं दयस्वोदितो यमेतु ।
अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुज्जरसा शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम् ॥८
देवानां हेतिः परि त्वा वृणक्तु पारयामि
त्वा रजस उत् त्वा मृत्योरपीपरम् ।
आरादग्नि क्रव्यादं निरूह जीवातवे ते परिधिं दधामि ॥६
यत् ते नियानं रजसं मृत्यो अनवधर्ष्यम् ।
पथ इमं तस्माद् रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि ॥१०
कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति ।
वैवस्वतेन प्रहितान् तमदूतांश्चतोऽप सेधामि सर्वान् ॥११
आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ।
रक्षो यत् सर्वं दुर्भूतं तत् तमइवाप हन्मसि ॥१२
अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः ।
यथा न रिष्या अमृतः सजूपसस्तत् ते
कृणोमि तदु ते समृध्यताम् ॥१३
शिवे ते स्तां द्यावापृथिवी असंतापे अभिश्रियौ ।
शं ते सूर्य आ तपतु शं वातो वातु ते हृदे ।
शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥१४
शिवास्ते सन्त्वोषधय वत् त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि ।
तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभा ॥१५
यत् ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम् ।

शिवं ते तन्वे तत् कृण्मः संस्पर्शेऽद्रूक्षणमस्तु ते ।।१६
यत् क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु ।
शुभं मुखं मा न आयुः प्र मोषीः ।। १७
शिवौ ते स्तां व्रीहियबावबलासावदोमधौ ।
एतौ यक्ष्मं वि वाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः ।।१८
यदश्नासि यत्पिबसि धान्यं कृष्याः पयः ।
यदाद्यं यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि ।।१९
अह्ने च त्वा रात्रते चोभाभ्यां परि दद्मसि ।
अरायेभ्यो जिघत्सुभ्य इमं मे परि रक्षत ।।२०
शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ।।२१
शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परि दद्मसि ।
वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि येषु वधन्त ओषधीः ।।२२
मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम् ।
तस्मात् त्वां मृत्योर्गोपतेरुद्भरामि स मा विभेः ।।२३
सोऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा विभेः ।
न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधमं तमः ।।२४
सर्वा वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः ।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ।।२५
परि त्वा पातु समानेभ्योऽभिचारात् सबन्धुभ्यः ।
अमम्रिर्भवामृतोऽतिजीवो मा ते हासिषुरसवः शरीरम् ।।२६
ये मृत्यव एकशतं या नाष्ट्रा अतितार्याः ।।
मुञ्चन्तुः तस्मात् त्वां देवा अग्नेर्वैश्वानरादधि ।।२७
अग्नेः शरीरमसि पारयिष्णु रक्षोहासि सपत्नहा ।
अथो अमीवचातनः पूतुद्रुर्नाम भेषजम् ।।२८
(अथर्व० ८।२)

[६]

दर्भ मणि को निम्न मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके धारण करने से रोगों से रक्षा होती है और आयु वृद्धि होती है। साथ ही पाठ व हवन भी होना चाहिए।

शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः।
दर्भो य उग्र ओषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे ॥१
नास्य केशान प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते।
यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति ॥२
दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः।
त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ॥३
तिस्रो दिवो अत्यतृणत तिस्र इमाः पृथिवीरुत।
त्वयाहं दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि ॥४
त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान्।
उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान् सहिषीमहि ॥५
सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः।
सहस्व सर्वान् दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून् कृधि ॥६
दर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वदित्।
तेनाहं शश्वतो जनाँ असनं सनवानि च ॥७
प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥८
यो जायमानः पृथिवीमदृंहद् यो अस्तभ्नादन्तरिक्षं दिवं च।
यं बिभ्रतं ननु पाप्मा विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो दिवा कः ॥९
सपत्नहा शतकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः सं बभूव।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतस्तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः ॥१०

(अ० १९। ३२)

[७]

जङ्गिड नामक औषधि से बनी मणि को निम्न मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके धारण करने से भयङ्कर रोगों से रक्षा होती है:—

जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः ।
द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिडः ॥१
या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये ।
सर्वान् विनक्तु तेजसोऽरसाञ्जङ्गिडस्करत् ॥२
अरसं कृत्रिमं नादमरसाः सप्त विस्रसः ।
अपेतो जङ्गिडामतिमिषुमस्तेव शातय ॥३
कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः ।
अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥४
स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः ।
विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा ॥५
त्रिष्ट्वा देवा अजनयन् निष्ठितं भूम्यामधि ।
तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः ॥६
न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः ।
विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ॥७
अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य ।
पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ॥८
उग्र इत ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ ।
अमीवाः सर्वाश्चातयञ्जहि रक्षांस्योषधे ॥९
आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम् ।
तक्मानं विश्वशारदमरसां जङ्गिडस्करत् ॥१०
(अ० १९ । ३४)

[८]

कोई भी रोग हो, उसके निवारण के लिए निम्न मन्त्रों का पाठ व हवन लाभदायक रहता है रोग न हो तो भी इनका प्रयोग रोगों से रक्षा करता हुआ सौ वर्ष की आयु तक जीवित रहने की क्षमता वाला बनाता है ।

उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् ।
अगन्म बिभ्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥१

(अ० ७ । ३२)

सं मा सिञ्चन्तु मरुतः सं पूषा सं बृहस्पतिः ।
सं मयमग्निः सिंचतु प्रजया च धनेन च दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥१

(अ० ७ । ३३)

अमुत्रभूयादधि यद् यमस्य बृहस्पते अभिशस्तेरमुञ्चः ।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद् देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥१
सं क्रामतं मा जहीतं शरीरं प्राणापानौ ते सयुजाविह स्ताम् ।
शतं जीव शरदो वर्धमानोऽग्निष्टे गोपा अधिपा वसिष्ठः ॥२
आयर्यत् ते अतिहितं पराचैरपानः प्राणः पुनरा ताविताम् ।
अग्निष्टदाहार्निर्ऋतेरुपस्थात् तदात्मनि पुनरा वेशयामि ते ॥३
मेमं प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ।
सप्तऋषिभ्य एनं परि ददामि त एनं स्वस्ति जरस वहन्तु ॥४
प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
अयं जरिम्णः शेवधिररिष्ट इह वर्धताम् ॥५
आ ते प्राणं सुवामसि परा यक्ष्मं सुवामि ते ।
आयुर्नो विश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्यः ॥६
उद् वयं तमसस्परि रोहन्तो नाकमुत्तमम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥७

(अ० ७ । ५३)

जीवा स्थ जीव्यास सर्वमायुर्जीव्यासम् ।।१
उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ।।२
संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ।।३
जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ।।४

(अ० १६ । ६६)

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् ।
सर्वमायर्जीव्यासम् ।।१

(अ० १६ । ७०)

रोग निवारण के लिये

हाथों में प्राण विद्युत का प्रवाह चलता है। उससे जो भी वस्तु स्पर्श करेगी, उसमें भी वह प्रवाह चलने लगेगा। रोगी अथवा पीड़ित भाग को हाथ की हथेली से ऊपर से नीचे की ओर स्पर्श करते चलें और निम्न मन्त्रों का उच्चारण करते जायँ तो रोग निवृति में सहायता मिलती है :—

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ।।१
द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरापरावतः ।
दक्षं ते अन्य आवातु व्यन्यो वातु यद् रपः ।।२
आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः ।
त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे ।।३
त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः ।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ।।४
आ त्वागमं शन्तातिभिरथो अरिष्टतातिभिः ।
दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते ।।५
अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ।।६

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि ।।७
(अ० ४।१३)

क्षय रोग निवारण के लिये

[१]

निम्न मन्त्रों का दैनिक पाठ व हवन क्षय रोग के नाश में सहायक होता है । हवन सामग्री में मकोय, जीवन्ती, जटामासी, गिलोय, जाविन्नी, शालक पर्णी, आंवला समान मात्रा में ले लें । पंच मेवे भी इसमें डाले जा सकते हैं ।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राणयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम ।।१
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिक नी त एव ।
तमा हरामि निऋतेरुपस्थादस्पार्यमेनं शतशारदाय ।।२
सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हरिवाहार्षमेनम् ।
ईन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ।।३
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान ।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः
शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।।४
प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
व्यन्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितराञ्छतम् ।।५
इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम् ।
शरीरमस्यांगानि जरसे वहतं पुनः ।।६
जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि धुवामि त्वा ।
जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्यन्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरांछतम् ।।७
अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा ।

यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया ।
तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद् बृहस्पतिः ॥८

(अ० ३ । ११)

वि देवा जरासावृतन् वि त्वमग्ने अरात्या ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥१
व्यार्त्या पवमानो वि शक्रः पापकृत्यया ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥२
वि ग्राम्याः पशव आरण्यैर्व्या पस्तृष्णयासरन् ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥३
वीमे द्यावापृथिवी इतो वि पन्थानो दिशंदिशम् ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥४
त्वष्टा दुहित्रे वहतुं युनक्तीतीदं विश्वं भुवनं वि याति ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥५
अग्निः प्राणान् सं दधाति चन्द्रः प्राणेन संहितः ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥६
प्राणेन विश्वतोवीर्यं देवाः सूर्यं समैरयन् ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥७
आयुष्मतामायुष्कृतां प्राणेन जीव मा मृथाः ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥८
प्राणेन प्राणतां प्राणेहैव भव मा मृथाः ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥९
उद युषा समायुषोदोषधीनां रसेन ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥१०
आ पर्जन्यस्य वृष्टयोदस्थामामृता वयम् ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥११

(अ० ३ । ३१)

या वभ्रवो याश्च शुक्रा रोहिणीरुत पृश्नयः ।
असिक्नीः कृष्णा ओषधीः सर्वा अच्छावदामसि ।।१
त्रायन्तामिमं पुरुषं यक्ष्माद् देवेपितादधि ।
यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां वभूव ।।१
आपो अग्रं दिव्या ओषधयः ।
तास्ते यक्ष्ममेनस्य मंगादङ्गादनीनशन् ।।३
प्रस्तृणती स्तम्बिनोरशुङ्गाः प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि ।
अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखा ह्वयामि ते वीरुधो वैश्वदेवीरुग्राः पुरुषजीवनीः ।।४
यद् वः सहः सहमाना वीर्यं यच्च वो वलम् ।
तेनेममस्माद् यक्ष्मात् पुरुष मुञ्चतौषधीरथो कृणोमि भेषजम् ।।५
जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
अरुन्धतीमुन्नयन्तीं पुष्पां मधुमतीमिहम् हुवेऽस्मा अ[illegible]तातये ।।६
इहा यन्तु प्रचेतसो मेदिनीर्वचसो मम ।
यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ।।७
अग्नेर्घासो अपां गर्भो या रोहन्ति पुनर्णवाः ।
ध्रुवाः सहस्रनाम्नीर्भेषजीः सन्त्वाभृताः ।।८
अवकोल्वा उदकात्मान ओषधयः ।
व्यृषन्तु दुरितं तीक्ष्णशृङ्ग्यः ।।९
उन्मुञ्चन्तीर्विवरुणा उग्रा विषदूषणीः ।
अथो वलासनाशनीः कृत्यादूषणीश्च यास्ता इह यन्त्वोषधीः ।।१०
(अ० ८।७)

शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम् ।
सर्वं शीषण्यं ते रोगं वहिर्निर्मन्त्रयामहे ।।१
कर्णाभ्यां ते कङ्कूषेभ्यः कर्णशूलं विसल्पकम् ।
सर्वं शीषण्यं ते रोगं वहिर्निर्मन्त्रयामहे । २

यस्य हेतोः प्रच्यवते यक्ष्मः कर्णत आस्यतः ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥३
यः कृणोति प्रमोतमन्धं कृणोति पूरुषम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥४
अङ्गभेदमङ्गज्वरं विश्वाङ्गयं विसल्पकम् ।
सर्वं शीषण्यं ते रोग बहिर्निर्मन्तयामहे ॥५
यस्य भीमः प्रतीकाश उद्वेपयति पूरुषम् ।
तक्मानं विश्वशारदं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥६
य ऊरू अनुसर्पत्यथो एति गवीनिके ।
यक्ष्मं ते अन्तरङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥७
यदि कामादपकामाद्धृदयाज्जायते परि ।
हृदो बलासमङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥८
हरिमाणं ते अङ्गेभ्योऽप्वामन्तरोदरात् ।
यक्ष्मोधामन्तरात्मनो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥९
आसो बलासो भवतु मूत्रं भवत्वामयत् ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥१०
बहिर्विलं निर्द्रवतु काहावाहं तवोदरात् ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विष निरवोचमहं त्वत् ॥११
उदरात् ते क्लोम्नो नाभ्यो हृदयादधि ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥१२
याः सीमानं विरुजन्ति मूर्धानं प्रत्यर्षणीः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१३
या हृदयमुहर्षन्त्यनुतन्वन्ति कीकसाः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१४
याः पार्श्वे उपर्षन्त्यनुनिक्षन्ति पृष्टीः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१५

यास्तिरश्चीरुपर्षन्त्यर्षणीर्वक्षणासु ते ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१६
या गुदा अनुसर्पन्त्यान्त्राणि मोहयन्ति च ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१७
या मज्ज्ञो निर्धयन्ति परूंषि विरुजन्ति च ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१८
ये अङ्गानि मदयन्ति यक्ष्मासो रोपणास्तव ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विष निरवोचमहं त्वत् ॥१९
विसल्पस्य विद्रधस्य वातीकारस्य वालजेः ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥२०
पादाभ्यां ते जानुभ्यां श्रोणिभ्यां परि भंससः ।
अनूकादर्षणीरुष्णिहाभ्यः शीर्ष्णो रोगमनीशनम् ॥२१
सं ते शीष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः ।
उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो
रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीशमः ॥२२

(अ० ९ । ८)

वरण वृक्ष की मणि को निम्न मन्त्रों से १०८ बार अभिमन्त्रित करके गले या भुजा में धारण किये रहें तो क्षय रोग का निवारण होता है :—

वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः ।
यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥१
इन्द्रस्य वर्चसा वयं मित्रस्य वरुणस्य च ।
देवानां सर्वेषां वाचा यक्ष्मं ते वारयामहे ॥२
यथा वृत्र इमा आपस्तस्तम्भ विश्वधा यतीः ।
एवा ते अग्निना यक्ष्मं वैश्वानरेण वारये ॥३

(अ० ६ । ८५)

कुष्ट रोग दूर करने के लिये

'कूट' नामक औषधि को निम्न मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके प्रातः दोपहर और सायं सेवन करने से कुष्ट रोग दूर होता है :—

ऐतु देवस्त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि ।
तक्नामं सर्वनाशय सर्वाश्च यातधान्यः ॥१
त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यरिषः ।
नद्याय पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवोमि त्वा सायप्रातरथी दिवा ॥२
जीवला नाम तै माता जीवन्तो नाम ते पिता ।
नद्यायं पुरुषो रिषत्
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रात्तरथौ दिवा ॥३
उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव
नद्यायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रात्तरथौ दिवा ॥४
त्रिः शाम्बुभ्यो अंगिरेभ्यस्त्रिरादित्येभ्यस्परि ।
त्रिर्जातो विश्वदेवेभ्य ।
स कुष्ठो वि वभेषजः सार्कं सोमेन तिष्ठति
तक्मानं सर्वं नाशय सर्पाश्च यातुधान्यः ॥५
अश्वत्थो देवसदनस्तृतोयस्यामितो दिवि ।
यत्रामृतस्य चक्षण ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्टो विश्वभेषजः साक सोमेन तिष्ठति ।
तक्मान सर्वं नाशय सर्वा च यातुधान्यः ॥६
हिरण्ययी नौरचद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं तत कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साक सौमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥७

यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो प्रजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्व नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ।।८
य त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं वा त्वा कुष्ठ काम्यः ।
यं वा वसा यमात्स्यस्तेमासि विश्वभेषजः ।।९
शीर्षशोकं तृतीयकं सदान्दिर्यश्च हायनः ।
तक्मानं विश्वधावीर्याधिराञ्चं परा सुव ।।१०

(अ० १९ । ३९)

ज्वर निवृत्ति के लिये

[१]

दावाग्नि के समान शरीर के अङ्गों को जला देने वाले ज्वर की जलन सभी अङ्गों में व्याप्त हो रही हो और रोगी उन्मत्त के समान प्रलाप कर रहा हो और निराशा की सी स्थिति उत्पन्न हो गई हो तो निम्न मन्त्रों के अभिमन्त्रित जल को औषधि रूप में सेवन करने से ज्वर शान्त होता है :—

अग्नेरिवास्य दहत एति शुष्मिण उतेव मत्तो विलपन्नपायति ।
अन्यमस्मदिच्छतु कं चिदव्रतस्तपुर्वधाय नमो अस्तु तक्मने ।।१
नमो रुद्राय नमो अस्तु तक्मने नमो राज्ञे वरुणाय त्विषीमते ।
नमो दिवे नमः पृथिव्यै नमः ओषधीभ्यः ।।२
अयं यो अभिशोचयिष्णुर्विश्वा रूपाणि हरिता कृणोषि ।
तस्मै तेऽरुणाय बभ्रवे नमः कृणोमि वन्याय तक्मने ।।३

(अथर्व० ६ । २०)

[२]

शीत ज्वर, तिजारी, चौथिया, वर्षा, शरद और ग्रीष्म के ज्वर

के साथ खाँसी हो तो निम्न मन्त्रों के अभिमन्त्रित जल के सेवन से ज्वर उतर जाता है :—

अग्निस्तक्मानमप बाधतामितः सोमो ग्रावा वरुणः पूतदक्षाः ।
वेदर्बर्हिः समिधःशीशुचाना अप द्वेषांस्यमुया भवन्तु ॥१
अयं यो विश्वान् हरितान् कृणोष्युच्छोचयन्नग्निरिवाभिदुन्वन ।
अधा हि तक्मन्नरसो हि भूया अधान्य ङ्ङधराङ् वा परेहि ॥२
यः परुषः पौरुषेयोऽवध्वंसइवारुणः ।
तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुवा ॥३
अधराञ्चं प्र हिणोमि नमः कृत्वा तक्मने ।
शकम्भरस्य मुष्टिहा पुनरेतु महावृषान् ॥४
ओको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषाः ।
यावज्जातस्तक्मंस्तावानसि बल्हिकेषु न्योचरः ॥५
तक्मन् व्याल वि गद व्यंग भूरि यावय ।
दासीं निष्टक्वरीमिच्छ तां वज्रेण समर्पय ॥६
तक्मन् मूजवतो गच्छ बल्हिकान् वा परस्तराम् ।
शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं तां तक्मन् वीव धूनुहि ॥७
महावृषान् मूजवतो बन्ध्वद्धि परेत्य ।
प्रैतानि तक्मने ब्रूमो अन्यक्षेत्राणि वा इमा ॥८
अन्तक्षेत्रेन रमसे वशी सन् मृडयासि नः ।
अभूदु प्राथस्तक्मा स गमिष्यति बल्हिकान् ॥९
यत् त्वं शीतोऽथो रूरः सह कासावेपयः ।
भीमास्ते तक्मन् हेतयस्ताभिः स्म परि वृङ्ग्धि नः ॥१०
मास्मैतान्त्सखीन् कुरुथा बलासं कासमुद्युगम् ।
मा स्मातोऽर्वाङ् पुनस्तत् त्वा तक्मन्नुप ब्रुवे ॥११
तक्मन् भ्रात्रा बलासेन स्वस्रा कासिकया सह ।
पाप्मा भ्रातृव्येण सह गच्छामुमरणं जनम् ॥१२

तृतीयकं वितृतीयं सदन्दिमुत शारदम् ।
तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम् ।।१३
गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्यो ङ्गेभ्यो मगधेभ्यः ।
प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परि दद्मसि ।।१४
(अ० ५।२२)

नमो रूराय च्यवनाय चोदनाय धृष्णवे ।
नमः शीताय पूर्वकामकृत्वने ।।१
यो अन्येद्युरुभयद्युपेभ्येतीमं मण्डूकपभ्ये त्वव्रतः ।।२
(अ० ७।११६)

शिर रोग की निवृत्ति के लिये

हिमालय के उत्तर में उत्पन्न होने वाली 'कूट' औषधि को निम्न मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके सेवन करने से सभी प्रकार के शिर रोग नष्ट होते है :—

यो गिरिष्वजायथा वीरुधां बलवत्तमः ।
कुष्ठेहि तक्मनाशक तक्मानं नाशयन्नितः ।।१
सुपर्णसुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि ।
धनरभि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तक्मनाशनम् ।।२
अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षण देवाः कुष्ठमवन्वत ।।३
हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ।।४
हिरण्ययाः पन्थान आसन्नरित्राणि हिरण्यया ।
नावो हिरण्ययीरासन् याभिः कुष्ठं निरावहन् ।।५
इमं मे कुष्ठ पूरुष तमा वह तं निष्कुरु । तमु मे अगदं कृधि ।।६
देवेभ्यो अधि जातोऽसि सोमस्यासि सखा हितः ।
स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मै मृड ।।७

उदङ् जातो हिमवत: स प्राच्यां नीयसे जनम् ।
तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि वि भेजिरे ।।८
उत्तमो नाम कुष्ठास्युत्तमो नाम ते पिता ।
यक्ष्मं च सर्वं नाशय तक्मानं चारसं कृधि ।।९
शीर्षामयमुपहत्यामक्ष्योस्तन्वोरप: ।
कुष्ठस्तत् सर्यं निष्करद् दैवं समह वृष्ण्यम् ।।१०

(अ० ५ । ४)

नेत्र रोग के नाश के लिये

सरसों के तैल में भूने हुए सरसों के शाक को निम्न मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके सेवन करें तो नेत्र रोगों का नाश होता है:—

आवयो अनावयो रसस्त उग्र आवयो ।
आ ते करम्भमद्मसि ।।१
विहल्हो नाम ते पिता मदावती नाम ते माता ।
स हि न त्वमसि यस्त्वमात्मानमावय. ।।२
तौविलिकेऽवेलयावायमैलब एलयीत् ।
बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्चापेहि निराल ।।३
अलसालासि पूर्वा सिलाञ्जालास्युत्तरा ।
नीलागलसाला ।।४

(अ० ६ । १६)

शूल रोग की निवृत्ति के लिए

शूल रोग के नाश के लिए मन्त्रों का पाठ व हवन उपयुक्त रहता है :—

यां ते रुद्र इषुमास्यदङ्गेभ्यो हृदयाय च ।
इदं तामद्य त्वद् वयं विषूचीं वि वृहामसि ।।१
यास्ते शतं धमनयोऽङ्गान्यनु विष्ठिता: ।
तासां ते सर्वासां वयं निर्विषाणि ह्वयामसि ।।२

नमस्ते रुद्रास्यते नमः प्रतिहितायै ।
नमो विसृज्यमानायै नमो निपतितायै ॥३
(अ० ६ । ६०)

त्वचा रोगों के लिए

सैकड़ों रोगों को नष्ट करने में समर्थ शतवार नामक औषधि की मणि बनाकर उसे निम्न मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके गले अथवा भुजा में कवच की तरह धारण करें। इससे सभी त्वचा रोग नष्ट होते हैं :—

शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा ।
आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः ॥१
श्रृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः ।
मध्येन यक्ष्मं वाधते नैनं पाप्माति तत्रति ॥२
ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः ।
सर्वान् दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥३
शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत ।
दुर्णाम्नः सर्वान हत्वाव रक्षांसि धूनुते ॥४
हिरण्यश्रृङ्ग ऋषभ शतवारो अयं मणिः ।
दुर्णाम्न सर्वास्तृड्ढवाव रक्षांस्यक्रमीत् ॥५
शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम् ।
शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये ॥६
(अ० १६ । ३६)

कृमि नाश के लिए

अत्रि, कण्व, जमदग्नि और अगस्त्य नामक ऋषियों के अनुभव व आशीर्वाद से नेत्रों, नाक व दाँतों के कृमियों के पूर्ण नाश के लिए निम्न मन्त्रों का प्रयोग करें। नेत्र रोग में जल को सात बार अभि-

मन्त्रित करके जल से छींटा दें। दांत रोग में सात बार मन्त्र पढ़कर कुल्ला करें।

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमि जम्भयतामिति ॥१
अस्येन्द्र कुमारस्य क्रिमीन् धनपते जहि।
हता विश्वा अरातय उग्रेण वचसा मम ॥२
यो अक्ष्यौ परिर्सपति यो नासे परिसर्पति।
दतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि ॥३
सरूपौ द्वौ विरूहौ द्वौ कृष्णौ रोहितौ द्वौ।
वभ्रुश्च व्रभ्रु कर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः ॥४
ये क्रिमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शिति वाहवः।
ये के च विश्वरूपास्तान क्रिमीन् जम्भयामसि ॥५
उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा।
दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन् ॥६
येवाषासः कष्कषास एजत्काः शिपवित्नुकाः।
दृष्टश्च हन्यतां क्रिमिरुतादृष्टश्च हन्यताम् ॥७
हतो येवाषः क्रिमीणां हतो नदनिमोत।
सर्वान् नि मष्मषाकर दृषदा खल्वांइव ॥८
त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं क्रिमिं सारंगमर्जुनम।
श्रृगाम्यस्य पृष्टारपि वृश्चामि यच्छिरः ॥६
अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत्।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥१०
हतो राजा क्रिमीणामुतेषां स्थपतिर्हतः।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥११
हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः।
अथो ये क्षुल्लकाइव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥१२

सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम् ।
भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम् ।।१३

(अ० ५ । २३)

कास रोग निवारण के लिए

निम्न मंत्रों से २१ बार का अभिमन्त्रित जल रोगी को नित्य पिलाया जाय तो कास रोग में लाभ होता है :—

[१]

यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्र पत मनसोऽनु प्रवाय्यम् ।।१
यथा वाणः सुसंशितः परापतत्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्र पत पृथिव्या अनु संवतम् ।।२
यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत् ।
एवा त्व कासे प्र पत समुद्रस्यानु विक्षरम् ।।३

(अ० ६ । १०५)

[२]

विद्रधस्य वलासस्य लोहितस्य वनस्पते ।
विसल्पकस्योषधे मोच्छिषः पिशितं चन ।।१
यौ ते वलास तिष्ठतः कक्षे मुष्कावपश्रितौ ।
वेदाहं तस्य भेषजं चीपुद्रुरभिचक्षणम् ।।२
यो अङ्ग्यो यः कर्ण्यो यो अक्ष्योर्विसल्पकः ।
वि वृहामो विसल्पकं विद्रधं हृदयामयम् ।
परा तमज्ञातं यक्ष्ममधराञ्चं सुवामसि ।।३

(अ० ६ । १२७)

वात रोग के लिये

पिप्पली नामक औषधि को निम्न मन्त्रों से ७ बार अभि-

मन्त्रित करके रोगी को नित्य सेवन करावें तो बाल रोग का शमन होता है :—

पिप्पली क्षिप्तभेषज्यूतातिविद्धभेषजी ।
तां देवाः समकल्पयन्नियं जीवितवा अलम् ।।१
पिप्पल्यः समवदन्तायतीर्जननादधि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ।।२
असुरास्त्वा न्य खनन् देवास्त्वोदवपन् पुनः ।
वातीकृतस्य भेषजीमथो क्षिप्तस्य भेषजीम् ।।३

(अ० ६ । १०९)

श्लेष्म सम्बन्धी रोग निवारण के लिये

गङ्गाजल को ७ बार निम्न मन्त्रों से अभिमन्त्रित करने पर नित्य सेवन करें तो श्लेष्मा रोग जड़ से नष्ट हो जाते हैं :—

अस्थिस्रंसं परुःस्रंसमास्थितं हृदयामयम् ।
बलासं सर्वं नाशयाङ्गेष्ठा यश्च पर्वसु ।।१
निर्बलासं बलासिनः क्षिणोमि मुष्करं यथा ।
छिनद्म्यस्य बन्धनं मूलमुर्वार्वा इव ।।२
निर्बलासेतः प्र पताशुङ्गः शिशुको यथा ।
अथो इटइव हायनोऽप द्राह्यवीरहा ।।३

(अ० ६ । १४)

विषूचिका निवृत्ति के लिए

विषूचिका से सुरक्षित रहने अथवा इसके निवारण के लिए निम्न मंत्रों के अभिमन्त्रित जल का सेवन करें :—

सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् ।।१

सोमरुद्रा युवमेवतान्यस्मद् विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो असत् तनूषु कृतमेनो अस्मत् ॥२
(अ० ७ । ४२)

माता-पिता से प्राप्त रोगों के नाश के लिए

कृष्ण मृग के शिर में सींग को क्षेत्रीय रोग नाशार्थ निम्न मंत्रों से अभिमन्त्रित करके मणि रूप में धारण करने से माता-पिता से प्राप्त क्षय, कुष्ठ, मृगी, अपस्मार आदि रोग नष्ट होते हैं :—

हरिणस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम् ।
स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत् ॥१
अनु त्वा हरिणो वृषा पद्भिश्चतुर्भिरक्रमीत् ।
विषाणे वि ष्य गुष्पितं यदस्व क्षेत्रियं हृदि ॥२
अदो यदवरोचते चतुष्पक्षमिव च्छदिः ।
तेना ते सर्वं क्षेत्रियमङ्गेभ्यो नाशयामसि ॥३
अमू ये दिवि सुभगे विचृतौ नाम तारके ।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥४
आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥५
यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे ।
वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रिय नाशयामि त्वत् ॥६
अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत ।
अपास्मत् सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ॥७
(अ० ३ । ७)

सर्प विष निवारण मन्त्र

नीम की टहनी से १०८ बार निम्न मन्त्रों से झाड़ना चाहिए । इससे सर्प विष का निवारण तो होता ही है, सर्प का स्तम्भन और

उसकी नेत्र शक्ति का नाश भी हो जाता है। प्रभावशाली क्रिया से सर्प की मृत्यु तक हो जाती है।

ददिर्हि मह्यं वरुणो दिवः कविर्वचोभिरुग्रैर्नि रिणामि ते विषम्।
खातमखातमुत सक्तमग्रभमिरेव धन्वन्नि जजास ते विषम् ॥१
यत् ते अपोदकं विषं तत् त एतास्वग्रभम्।
गृह्णामि ते मध्यममुत्तमं रसमुतावमं भियसा नेशदादु ते ॥२
वृषा मे रवो नभसा न तन्यतुरुग्रेण ते वचसा बाध आदु ते।
अहं तमस्य नृभिरग्रभं रसं तमसइव ज्योतिरुदेत सूर्यः ॥३
चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम्।
अहे म्रियस्व मा जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वा विषम् ॥४
कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्र आ मे श्रृणुतासिता अलीकाः।
मा मे सख्युः स्तामानमपि ष्ठाताश्र वयन्तो नि विषे रमध्वम् ॥५
असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च।
सात्रासाहस्याहं मन्योरव ज्यामिव,
धन्वनो वि मुञ्चामि रथाँइव ॥६
आलिगी च विलिगी च पिता च माता च।
विद्म वः सर्वतो बन्ध्वरसाः किं करिष्यथ ॥७
उरुगूलाया दुहिता जाता दास्यसिक्न्या।
प्रतङ्कं दद्रुषीणां सर्वासामरसं विषम् ॥८
कर्णा श्वावित् तदब्रवीद् गिरेरवचरन्तिका।
याः काश्चेमाः खनित्रिमास्तासामरसतमं विषम् ॥९
ताबुवं न ताबुवं न घेत् त्वमसि ताबुवम्।
ताबुवेनारसं विषम् ॥१०
तस्तुवं न तस्तुवं न घेत् त्वमसि तस्तुवम्।
तस्तुवेनारसं विषम् ॥११
(अ० ५। १३)

सर्प स्तम्भन मंत्र

मन्त्र सिद्धि के बाद १०८ मन्त्र के उच्चारण से सर्प का स्तम्भन हो जाता है। सर्प की ऊपर नीचे की दन्त पंक्तियाँ मिल जाती हैं, ठोड़ी के ऊपर नीचे के भाग सिल से जाते हैं, जीभ से जीभ मिलकर ऊपर का मुख भाग नीचे के भाग से मिल जाता है। यदि सर्प एक से अधिक हों तो उनके फन एक साथ बँध जाते हैं। मन्त्र निम्न हैं :--

मा नो देवा अहिर्वधीत् सतोकान्त्सहपूरुषान्।
संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमन्नमो देवजनेभ्यः ॥१
नमोऽस्त्वसिताय नमस्तिरश्चिराजये।
स्वजाय बभ्रवे नमो नमो देवजनेभ्यः ॥२
सं ते हन्मि दता दतः समु ते हन्वा हनू।
सं ते जिह्वया जिह्वां सम्वास्नाह आस्यम् ॥३

(अ० ६। ५६)

घावों की पूर्ति के लिये

घावों व व्रणों के कष्ट को दूर करने व भरने से लिए लाख को निम्न मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके प्रयुक्त करें तो लाभ होगा:--

रात्री माता नभः पितार्यमा ते पितामहः।
सिलाचो नाम वा असि सा देवानामसि स्वसा ॥१
यस्त्वा पिबति जीवति त्रायसे पुरुष त्वम्।
भर्त्री हि शश्वतामसि जनानां च न्यञ्चनी ॥२
वृक्षंवृक्षमा रोहसि वृषण्यन्तीव कन्यला।
जयन्ती प्रत्यातिष्ठन्ती स्परणी नाम वा असि ॥३
यद् दण्डेन यदिष्वा यद् वारुर्हरसा कृतम्।
तस्य त्वमसि निष्कृतिः सेमं निष्कृधि पूरुषम् ॥४
भद्रात् प्लक्षान्निस्तिष्ठस्यश्वत्थात् खदिराद् धवात्।

भद्रान्न्यग्रोधात् पर्णात् सा न एह्यरुन्धति ॥५
हिरण्यवर्णे सुभगे सूर्यवर्णे वपुष्टमे ।
रुतं गच्छासि निष्कृते निष्कृतिर्नाम वा असि ॥६
हिरण्यवर्णे सुभगे शुष्मे लोमशवक्षणे ।
अपामसि स्वसा लाक्षे वातो हात्मा बभूव ते ॥७
सिलाची नाम कानीनोऽजबभ्रु पिता तव ।
अश्वो यमस्य यः श्यावस्तस्य हास्नास्युक्षिता ॥८
अश्वस्यास्नः सम्पतिता सा वृक्षाँ अभि सिष्यदे ।
सरा पतत्रिणी भूत्वा सा न एह्यरुन्धति ॥९

(अ० ५ । ५)

केश वृद्धि के लिये

काचमाची नामक औषधि को अभिमन्त्रित करके जल में मिला कर सिर धोएँ तो केश दृढ़ होते हैं, जहाँ उत्पन्न न हुए हों, वहाँ उत्पन्न होने लगते हैं, लम्बे होते हैं और केश रोग दूर होते हैं। मन्त्र इस प्रकार हैं :—

देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योषधे ।
तां त्वा नितत्नि केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि ॥१
दृंह प्रत्नाञ्जनयाजाताञ्जातानु वर्षीयसस्कृधि ॥२
यस्ते केशोऽवपद्यते समूलो यश्च वृश्चते ।
इदं तं विश्वभेषज्याभि षिञ्चामि वीरुधा ॥३

(अ० ६ । १३६)

यां जमदग्निरखनद् दुहित्रे केशवर्धनीम् ।
तां वीतहव्य आभरदसितस्य गृहेभ्यः ॥१
अभीशुना मेया आसन् व्यामेनानुमेयाः ।
केशा नडाइव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असितः परि ॥२
दृंह मूलमाग्र यच्छ वि मध्यं यामयौषधे ।
केशा नडाइव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥३

केशा नडाइव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि ।।३

(अ० ६।१३७)

टूटे अंगों को जोड़ने के लिए

जब किसी व्यक्ति को शस्त्रादि से घायल किया गया हो और उसका सारा शरीर वेदना से चूर-चूर हो रहा हो, प्रहार के कारण मज्जा अलग हो गई हो अथवा हड्डी टूट गई हो, मांस कट गया हो, कोई अङ्ग पृथक हो गया हो तो लाल रङ्ग वाली लाख को निम्न मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके उस स्थान पर लगा दें तो यह अथर्व मन्त्र मज्जा को मज्जा से, चर्म को चर्म से मिला देते हैं। हड्डियों पर रक्त प्रवाहित होने लगता है और शरीर के टूटे अङ्ग मिल कर ठीक हो जाते हैं :—

रोहण्यसि रोहण्यस्घ्नश्छिन्नस्य रोहणी ।
रोहयेदमरुन्धति ।।१
यत् ते रिष्ट यत् ते द्युत्तमस्ति पेष्ट्र त आत्मनि ।
धाता तद् भद्रया पुनः सं दर्धत् पुरुषा परुः ।।२
सां ते मज्जा मज्जा भवतु समु ते परुषा परुः ।
सं ते मांसस्य विस्रस्तां समस्थ्यपि रोहतु ।।३
मज्जा मज्जा सं धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु ।
असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ।।४
लोम लोम्ना स कल्पया त्वचा स कल्पया त्वचम् ।
असृक् ते अस्थि रोहतु च्छिन्नं सं धेह्योषधे ।।५
स उत् तिष्ठ प्रेहि प्र द्रव रथः सुचक्रः सुपविः सुनाभिः ।
प्रति तिष्ठोर्ध्वः ।।६
यदि कर्तं पतित्वा संशश्रु यदि वाश्मा प्रहतो जघान ।
ऋभू रथस्येवाङ्गानि स दधत् परुषा परुः ।।७

(अ० ४।१२)

वीर्य वृद्धि व पुष्टि के लिए

कैथ की जड़ को निम्न मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके सेवन किया जाये तो रोगी के वीर्य सम्बन्धी रोग दूर होते हैं, कमजोरी और नपुंसकता का नाश होता है व वीर्य पुष्ट होता है:—

यां त्वा गन्धर्वो अखनद् वरुणाय मृतभ्रजे ।
यां त्वा वयं खनामस्योषधिं शेपहर्षणीम् ।।१
उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः ।
उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना ।
यथा स्म ते विरोहतोऽभितप्तमिवानति ।
ततस्ते शुष्मवत्तरमियं कृणोत्वोषधिः ।।३
उच्छुष्मौषधीनां सार ऋषभाणाम् ।
सं पुंसामिन्द्र वृष्ण्यमस्मिन् धेहि तनूवशिन् ।।४
अपां रसः प्रथमजोऽथो वनस्पतीनाम् ।
उत सोमस्य भ्रातास्युतार्शमसि वृष्ण्यम् ।।५
अद्याग्ने अद्य सवितरद्य देवि सरस्वति ।
अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ।।६
आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।
क्रमस्वर्शइव रोहितमनवग्लायता सदा ।।७
अश्वस्याश्वतरस्याजस्य पेत्वस्य च ।
अथ ऋषभस्य ये वाजास्तानस्मिन् धेहि तनूवशिन् ।।८
(अ० ४ । ३०)

आ वृषायस्व श्वसिहि वर्धस्व प्रथयस्व च ।
यथाङ्गं वर्धतां शेपस्तेन योषितमिज्जहि ।।१
येन कृशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातुरम् ।
तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ।।२
आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।

क्रमस्वर्शइव रोहितमनवग्लायता सदा ।।३

(अ० ६ । १०१)

पुत्र प्राप्ति के लिए

निम्न मन्त्रों से अभिमन्त्रित जल नित्य बन्ध्या को पिलावें तो गर्भ दोषों की निवृत्ति होती है और स्त्री गर्भ धारण करने की क्षमता प्राप्त करती है :—

येन वेहद् वभूविथ नाशयामसि तत् त्वत् ।
इदं तदन्यत्र त्वदह दूरे नि दध्मसि ।।१
आ ते योनिं गर्भ एतु पुमान् बाणइवेषुधिम् ।
आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः ।।२
पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम् ।
भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान् ।।३
यानि भद्राणि वीजान्यृषभा जनयन्ति च ।
तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव ।।४
कृणोमि ते प्राजापत्यमा योनिं गर्भ एतु ते ।
विंदस्व त्वं पुत्रं नारि यस्तुभ्यं शमसच्छमु तस्मै त्वं भव।।५
यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरधां वभूव।
तास्त्वा पुत्राविद्याय दैवीः प्रावन्त्वोषधयः ।। ६

(अ० ३ । २३)

यद्येकवृषोऽसि सृजारसोऽसि ।।१
यदि द्विवृषोऽसि सृजारसोऽसि ।।२
यदि त्रिवृषोऽसि सृजारसोऽमि ।।३
यदि चतुर्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ।।४
यदि पञ्चवृषोऽसि सृजारसोऽसि ।।५
यदि षड्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ।।६
यदि सप्तवृषोऽसि सृजारसोऽसि ।।७

यद्यष्टवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ८
यदि नव वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥६
यदि दशवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥१०
यद्येकादशोऽसि सोऽपोदकोऽसि ॥११
(अ० ५ । ५)

शमीमश्वत्था आरूढ़स्तत्र पुंसुवनं कृतम् ।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वा भरामसि ॥१
पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनु षिच्यते ।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिरब्रवीत् ॥२
प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्य चीक्लृपत् ।
स्त्रैषूयमन्यत्र दधत् पुमांसमु दधदिह ॥३
(अ० ६ । ११)

यन्तासि यच्छसे हस्तावप रक्षांसि सेधसि ।
प्रजां धनं च गृह्णानः परिहस्तो अभूदयम् ॥१
परिहस्त वि धारय योनिं गर्भाय धातवे ।
मर्यादे पुत्रमा धेहि तं त्वमा गमयागमे ॥२
यं परिहस्तमविभरदितिः पुत्रकाम्या ।
त्वष्टा तमस्या आ बध्नाद् यथा पुत्रं जनादिति ॥३
(अ० ६ । ८१)

गर्भ पुष्टि के लिये

गर्भवती स्त्री स्वयं निम्न मन्त्रों का पाठ कर सके तो उत्तम है। यदि वह न कर सके तो २१ बार के अभिमन्त्रित जल का नित्य पान करें। इससे गर्भ पुष्ट होता है, बालक स्वस्थ सुन्दर चरित्रवान व बुद्धिमान होता है।

पर्वताद् दिवो योनेरङ्गादङ्गात् समाभृतम् ।
शेपो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवा दधात् ॥१

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ।
एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे ॥२
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा ॥३
गर्भं ते मित्रावरुणौ गर्भं देवो बृहस्पतिः ।
गर्भं ते इन्द्रश्चाग्निश्च गर्भं धाता दधातु ते ॥४
विष्णुर्योनि कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापति र्धाता गर्भं दधातु ते ॥५
यद् वेद राजा वरुणो यद् वा देवी सरस्वती ।
यदिन्द्रो वृत्रहा वेद तद् गर्भकरणं पिब ॥६
गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्य सो अग्ने गर्भमेह धाः ॥७
अधि स्कन्द वीरयस्व गर्भमा धेहि योन्याम् ।
वृषासि वृष्ण्यावन् प्रजायै त्वा नयामसि ॥८
वि जिहीष्व वार्हत्सामे गर्भस्ते योनिमा शयाम् ।
अदुष्ट देवाः पुत्र सोमपा उभयाविनम् ॥९
वातः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांस पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥१०
त्वष्टः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥११
सवितः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥१२
प्रजापते श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥१३

(अ० ५ । २५)

सुखी प्रसव के लिये

निम्न मंत्रों से पवित्र जल को ८ बार अभिमन्त्रित करके प्रसूता को पिलावें तो प्रसव सुविधा से हो जाता है।

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥१
यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन्।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥२
यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन्।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥३
यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत्।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥४

(अ० ६ । १७)

सब प्रकार के मंगल के लिए

किसी भी प्रकार के अमंगल को मङ्गल में और प्रतिकूलता को अनुकूलता में परिवर्तित करने के लिए निम्न मन्त्रों का नित्य पाठ व हवन करें :—

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शमि द्रा सोमा सुविताय शयो शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१
शं नो भग शमु न. शं सो अस्तु शं नः पुरधिः शमु सन्तु रायः।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः श नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२
शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः।
शं रोदसी वृहती शं नो अ द्रः शं नो देवान सुहवानि सन्तु ॥३
शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि पांतु वातः ॥४
शं नो द्यावापृथिवी पूर्वपूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु।

शं न औषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५
शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभि र्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रंभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह श्रृणोतु ॥६
शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाण शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्त्ररूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदि॥७
शं नः सूर्य उरूचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्त्रः ।
शं नः पवता ध्रुवयोशभवन्तुं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८
शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्गाः ।
शं नो विष्णु शमु पूषा नो अस्तू शं नो भवित्र शम्वस्तु वायु ॥९
शं नो देवः सविता त्रायमाण शं नो भवन्तुषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भु॥१०

(अ० १९ । १०)

[२]

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभव सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१
शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीमिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवा शं नो अप्याः ॥२
शं नो अज एकपाद देवो अस्तु शमहिर्वघ्न्पः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥३
आदित्या रुद्रो वसवो जुषन्तामिदं ब्रह्म क्रियमाण नवीयः ।
श्रृण्वन्तु नो दिव्या पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥४
ये देवनामृत्विजो यज्ञियासो मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ये नो रासन्तामुरुगायमद्य यूय पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५
तदस्तु मित्रावरुण तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशोमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे वृहते सादनाय ॥६

(अ० १९ । ११)

ब्रह्मलोक की प्राप्ति के लिये

तप और कर्म से ब्रह्मज्ञानी पुरुष जहाँ जाते हैं, वहाँ पहुँचने के लिए निम्न मन्त्रों का नित्य पाठ व हवन करना चाहिए :—

यत्र ब्रह्मविदो यान्तिदीक्षया तपसा सह ।
अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे । अग्नये स्वाहा ॥१
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
वायुर्मा तत्र नयतु वायु प्राणान् दधातु मे । वायवे स्वाहा ॥२
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सूर्यो मा तत्र नयत चक्षुः सूर्यो दधातु मे । सूर्याय स्वाहा ॥३
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे । चन्द्राय स्वाहा ॥४
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे । सोमोय स्वाहा ॥५
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
इन्द्रो मा तत्र नयतु वलमिन्द्रो दधातु मे । इन्द्राय स्वाहा ॥६
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षाया तपसा सह ।
आपो मा तत्र वयम्त्वमृत मोप तिष्ठनु अद्भय स्वाहा ॥७
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षाया तपसा सह ।
ब्रह्मा मा तत्र मयतुब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे । ब्रह्मणे स्वाहा ॥८
(अ० १६ । ४३)

आत्म गौरव की साधना

हीन भावनाओं के शमन और आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए निम्न मन्त्रों का नित्य पाठ व हवन करना चाहिए। इनके अर्थों का चिन्तन भी आवश्यक है। अतः अर्थ भी साथ दे रहे हैं:—

अहं रुद्रेभिर्व भिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वेदेवैः ।
अहं मित्रावरुण भा विभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
ता मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भरिस्थात्रां भर्यावेशयन्तः ।।२
अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम् ।
यं कामये ततमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माण तमृषि तं सुमेधाम् ।।३
मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धयं ते वदामि ।।४
अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ।।५
अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणा हविष्मते सुप्रव्या यजमानाय सुन्वते ।।६
अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ।।७
अहमेव वातइव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवो पर एता पृथिव्यैतावती महिम्ना सं बभूव ।।८

(अ० ४ । ३०)

"मैं ग्यारह रुद्र और आठ वसुओं के रूप से विचरती हूँ, धाता आदि द्वादश आदित्य और विश्वेदेवा रूप से भी विचरती हूँ । मैं ब्रह्म-वादिनी परब्रह्मात्मिका हूँ । मैं मित्रावरुण का भरण करती, इन्द्राग्नि और अश्विद्वय को धारण करती हूँ ।।१।। मैं ब्रह्मान्तिका दिखाई पड़ने वाले सम्पूर्ण विश्व की अधीश्वरी हूँ, इसलिए आराधकों को ऐश्वर्य प्राप्त कराती हूँ । मैंने परब्रह्म से साक्षात् किया है, इसलिये यज्ञयोग्य देवताओं में प्रमुख हूँ । ऐसी मुझे, फलदाता देवता अनेक स्थानों में प्रतिष्ठित करते हैं । इस प्रकार देवगण जो कुछ करते हैं, वह सब मेरे निमित्त ही होता है ।।२।। मैं स्वयं आत्मरूपा हूँ । मैं इन्द्रादि देव और मनुष्यों को भी प्रिय ब्रह्मात्मक वस्तु का उपदेश करती हूँ । मैं जिसकी रक्षा करना चाहती हूँ उसे प्रबल बनाती हूँ । मैं उसे ईश्वर, स्रष्टा

और ऋषि बना कर सुन्दर बुद्धि से सम्पन्न करती हूँ ।।३।। अन्न भक्षण करने वाला भोक्ता मेरे द्वारा ही खाता है, देखना, सुनना, श्वास लेना आदि सभी कार्य मेरे द्वारा ही किये जाते हैं, मैं इस प्रकार अन्तर्यामी रूप से व्याप्त हूँ । जो मुझे नहीं जानते, वह उपक्षीण हो जाते हैं । हे मित्र ! यह भक्ति करने के योग्य जो कुछ मैंने कहा है, उसे ध्यान से सुन ।।४।। त्रिपुरासुर को जीतने के लिए मैं ही धनुष उठाती और स्तुति करने वालों के लिए युद्ध करती हूँ । मैं स्वर्ग और आकाश मे अदृश्य रूप से व्याप्त रहती हूँ ।।५।। शत्रुओं का जहाँ नाश हो जाता है, ऐसे स्वर्ग में निवास करने वाले देवताओं से सम्बन्धित सोम का मैं पोषण करती, त्वष्टा, पूषा और भग देवता का भी मैं ही पोषण करती हूँ और मैं ही हविदाता यजमान को भी यज्ञ का फल रूप ऐश्वर्य प्रदान करती हूँ । ।।६।। इस दीखते हुए लोक के शिर रूप सत्यलोक में निवास करने वाले विधाता को मैं ही उत्पन्न करती हूँ । इस संसार की मैं ही कारण रूप हूँ, ब्रह्म चैतन्य की निमित्त भी मैं हूँ । समुद्र में वडवानल और विद्युत रूप तेज भी मेरा है । मैं सब प्राणियों को प्रकट करती, स्वर्ग और ब्रह्म में अध्यस्त विकारों को मायात्मक देह से स्पर्श करती, पृथिवी के ऊपर पिता रूप द्युलोक को प्रेरित करती और अन्तरिक्ष में जल के विकार रूप देवताओं में जो ब्रह्म व्याप्त है, उसके द्वारा मैं सबको छूती हूँ ।।७।। मैं किसी अन्य की सहायता लिये बिना सब प्राणियों को उत्पन्न करती हुई वायु के समान प्रवृत्त होती हूँ । द्युलोक, पृथिवी और सम्पूर्ण विकारों से रहित ब्रह्मचैतन्य रूप वाली मैं अपनी ही महिमा से ऐसी शक्तिशालिनी हो गई हूँ ।।८।।

शान्ति प्राप्ति के लिये

किसी प्रकार की भी अशान्ति के लिये निम्न मन्त्रों का सफल प्रयोग किया जा सकता है । अशान्ति—आर्थिक, पारिवारिक अथवा

सामाजिक हो। उसको शान्ति हो जाती है। विपरीत ग्रहों की भी इससे शान्ति होती है। चन्द्र मण्डल के ग्रह, राहु से ग्रस्त सूर्य, धूमकेतु का अनिष्ट और रुद्र के तीक्षण सन्ताप देने वाले उपद्रव सभी शान्त होते हैं। राष्ट्र में होने वाले विघ्न भी शांत होते है।

शान्ता द्यौः पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम्।
शान्ता उदन्वताराप: शान्ता नः सन्त्वोषधीः ।।१
शान्ता नि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम्।
शान्तं भूत च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ।।२
इ यं या परमेष्ठिनी वाग् देवी ब्रह्मसंशिता।
यथैव संसृजे घोरं तथैव शान्तिरस्तु नः ।।३
इदं यत् परमेष्टिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम्।
येनैव ससृजे घोर तेनैव शान्तिरस्तु नः ।।४

इमानि यानि पंचेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा सशितानि यै रेव ससृजे घोर तैरेव शान्तिरस्तु नः ।।५

शं नो मित्रः श वरुण बिष्णुः शं प्रजापतिः।
शं न इन्द्रो वृहस्पतिः शं नो भवत्वयमा ।।६
शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वांचमन्तकः।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ।।७
शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हंत च यत्।
शं गावा लोहितक्षीराः शं भूमिरव तीर्यतीः ।।८

नक्षत्रमुल्कामिहय शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु शमु सन्तु कृत्या शं ना निखाता वल्गाः शमुल्का देशोहसर्गाः शमु नो भवन्तु ।।६

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्यतेजसः ।।१०
शं रुद्राः शं वसवः शमादित्या शमग्नयः।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवा शं वृहस्पतिः ।।११

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदा सप्तऋषयऽनयो: ।
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छन्तु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु ।
विश्वे मे देवा: शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवा: शर्म यच्छतु ।।१२
यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्त ऋषयो विदु: ।
सर्वाणि शं भवन्त मे शं अस्त्वभय मे अस्तु ।।१३
पृथिवी शान्तिरन्तरिक्ष शांतिद्यौ: शान्तिपाप: शान्यिरोषधय शांति वनस्पतय: शांतिविश्वे भ देवा: शांति: सर्वे मे देवान्लि शांति: शान्ति: शांतिभि । ताभि: शान्तिभि: सर्व शान्तिभि: षमयामोऽहं यदिह घोर यदिह क्रूर यदिह पापतच्छान्तं तच्छिव सर्वमेव-शमस्तु न: ।। १४ (अ० १६ । ६)

मधुरता प्राप्ति के लिए

मधुर भाषण व व्यवहार एक ऐसा अस्त्र है जो शत्रुओं को भी मित्र बना देता है और कटु भाषण से मित्र भी निश्चय रूप से शत्रु बन जाते हैं। अत: हर क्षेत्र में सफलता के लिए मधुर व्यवहार के गुण का होना आवश्यक है। निम्न मन्त्रों की साधना साधक के व्यवहार में मधुरता ओत-प्रोत करने में सहायक होती है:—

एका च मे दश च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला कर: ।।१
द्वे च मे विंशतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋत:वरि मधु मे मधुला कर: ।।२
तिस्रश्च मे त्रिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला कर: ।।३
चतस्रश्च मे चत्वारिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला कर: ।।४
पञ्च च मे पञ्चाशच्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला कर: ।।५

षट् च मे षष्टिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥६
सप्त च मे सप्ततिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥७
अष्ट च मेऽशीतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥८
नव च मे नवतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥९
दश च मे शतं च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥१०
शतं च मे सहस्रं चापवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥११॥

(अ० ५ । १५)

पाप निवृत्ति के लिए

पुराने अथवा वर्तमान के पापजनित संस्कारों को नष्ट कर पवित्र जीवन व्यतीत करने और आत्म ज्ञान के मार्ग को प्रशस्त करने के लिए निम्न मन्त्रों का दैनिक पाठ व हवन करना चाहिए:—

[१]

मरुतां मन्वे अधि मे ब्रवन्तु प्रेमं वाजं वाजसाते अवन्तु ।
आशूनिव सुयमानह्व ऊतये ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१
उत्समक्षितं व्यचन्ति ये सदा य आसिञ्चन्ति रसमोषधीषु ।
पुरो दधे मरुतः पृश्निमातृंस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२
पयो धेनूनां रसमोषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ ।
शग्मा भवन्तु मरुतो नः स्योनास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥३
अपः समुद्राद् दिवमुद् वहन्ति दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति ।

ये अद्भिरीशाना मरुतश्चरन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४
ये कीलालेन तर्पयन्ति ये घृतेन ये वा वयो मेदसा संसृजन्ति ।
ये अद्भिरीशाना मरुतो वर्षयन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥५
यदीदिदं मरुतो मारुतेन यदि देवा दैव्येनेदृगार ।
यूयमीशिध्वे वसव स्तस्य निष्कृतेरते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥६
तिग्ममनीकं विदितं सहस्वन् मारुत शर्धः पृतनासूग्रम् ।
स्तौमि मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥७

(अ० ४ । २७)

[२]

मन्वे वां मित्रावरुणावृतावृधौ सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे ।
प्र सत्यावानमवथो भरेषुतो नो मुञ्चतमंहसः ॥१
सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे प्र सत्यावानमवथो भरेषु ।
यौ गच्छथो नृचक्षसौ बभ्रुणा सुतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥२
यावङ्गिरसमवथो यावगस्ति मित्रावरुणा: जमदग्निमत्रिम् ।
यौ कश्यपमवथो यौ वसिष्ठं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥३
यौ श्यावाश्वमवथो वध्र्यूश्वं मित्रावरुण पुरुमीढमत्रिम् ।
यौ विमदमवथः सप्तवध्रिं तौ नो मुञ्चतमहसः ॥४
यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम् ।
यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं तौ नो मुञ्चतमहसः ॥५
यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणावुशनां काव्यं यौ ।
यौ गौतममवथः प्रोत मुद्गलं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥६
ययो रथःसत्यवर्त्मर्जु रश्मिर्मिथुया चरन्तमभियाति दूषयन् ।
स्तौमि मित्रावरुणौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥७

(अ० ४ । २९)

[३]

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् । अप नः शोशुचदघम् ॥१
सुक्षत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । अप नः शोशुचदघम् ॥२

प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः।अप नः शोशुचदघम् ।।३
प्र यत् ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम्। अप नः शोशुचदघम् ।४
प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वता यन्ति मानवः। अप नः शोशुचदघम् ।।५
त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि। अप नः शोशुचदघम् ।।६
द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय। अप नः शोशुचदघम् ।।७
स नः सिन्धुमिव नावाति पर्षा स्वस्तये। अप नः शोशुचदघम् ।।८

(अ० ४। ३३)

[४]

त्रिते देवा अमृजतैतदेनस्त्रित एनन्मनुष्येषु ममृजे।
ततो यदि त्वा ग्राहिराशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ।।१
मरीचीर्धूमान् प्र विशानु पाप्मन्नुदारान् गच्छोत वा नीहारान्।
नदीनां फेनाँ अनु तान् वि नश्य भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ।।२
द्वादशधा निहितं त्रितस्यापमृष्टं मनुष्यैनसानि।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ।।३

(अ० ६। ११३)

[५]

यद् देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम्।
आदित्यास्तस्मान्नो यूयमृतस्यर्तेन मुञ्चत ।।१
ऋतस्यर्तेनादित्या वजत्रा मुञ्चतेह नः।
यज्ञं यद् यज्ञवाहसः शिक्षन्तो नोपशेकिम ।।२
मेदस्वता यजमानाः स्रू चाज्यानि जुह्वतः।
अकामा विश्वे वो देवाः शिक्षन्तो नोप शेकिम ।।३

(अ० ६। ११४)

[६]

यद् विद्वांसो यद्विद्वांस एनांसि चकृमा वयम्।
यूयं नस्तस्मान्मुञ्च विश्वे देवाः सजोषसः ।।१

यदि जाग्रद् यदि स्वपन्नेन एनस्योऽकरम् ।
भूतं मा तस्माद् भव्यं च द्रुपदादिव मुञ्चताम् ॥२
द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्यं विश्वे शुम्भन्तु मैनसः ॥३
(अ० ६ । ११५)

[७]

याद् यामं चकृर्निखनन्तो अग्र कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया ।
वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम् ॥१
वैवस्वत कृणवद् भागधेयं मधभागो मधुना सं सृजाति ।
मातुर्यदेन इषित न आगन् यद् वा पितापराद्धो जिहीडे ॥२
यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन् ।
यवन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषा शिवो अस्तु मन्युः ॥३
(अ० ६ । ११६)

[८]

इदं तत् कृष्णः शकुनिरभिनिष्पतन्नपीपतत् ।
आपो मा तस्मात् सवस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः ॥१
इद यत् कृष्णः शकुनिरवामृक्षन्निर्ऋते ते मुखेन ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्र मुञ्चतु ॥२
(अ० ७ । ६४)

[९]

प्रतीचीनफलो हि त्वमपामार्ग रुरोहिथ ।
सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया इतः ॥१
यद् दुष्कृत यच्छमलं यद् वा चेरिम पापया ।
त्वया तद् विश्वतोमुखापामागपि मृज्महे ॥२
श्यावदता कुनखिना वण्डेम यत्सहासिम ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्मये ॥३
(अ० ७ । ६५)

[१०]

अप्सु ते राजन् वरुण गृहो हिरण्ययो मिथः ।
ततो घृतव्रतो राज सर्वा धामानि मुञ्चतु ॥१
धाम्नोधाम्ना राजन्नितो वरुण मुञ्च नः ।
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ततो वरुण मुञ्च नः ॥२
उदुत्तमं वरुण पाशमस्म दवाधमं वि मध्यम श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥३
प्रास्मत् पाशान् वरुण मुंच सर्वान् य उत्तमा अधमा वारुणा ये ।
दुःष्वप्न्यं दुरितं निःष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥४

(अ० ७ । ८३)

[११]

शुम्भनी द्यायापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते ।
आपः सप्त स्रुवर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१
मुञ्चन्तु मा शपज्यादथो वरुण्या दुत ।
अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वास्माद् देवकिल्विषात् ॥२

(अ० ७ । ११२)

[१२]

अग्निं ब्रूमो वनस्पतीनोषधीरुत वीरुधः ।
इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१
ब्रूमो राजनं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम् ।
अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्ते नो मुंचन्त्वहसः ॥२
ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम् ।
त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥३
गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् ।
अर्यमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४

अहोरात्रे इदं ब्रूपः सूर्याचन्द्रमसावुभा ।
विश्वानादित्यान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।५
वातं ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः ।
आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुंचन्त्वंहस ।।६
मुञ्चन्तु मा शपथ्या दहोरात्रे अथो उषाः ।
सोमो मा देवो मुंचन्तु यमाहुश्चन्द्रमा इति ।।७
पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगाः ।
शकुन्तान् पक्षिण ब्रूमस्ते नो मुंचन्त्वंहसः ।।८
भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः ।
इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः ।।९
दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान् ।
समुद्रा नद्यो वेशान्तास्ते मो मुंचन्त्वंहसः ।।१०
सप्तऋषीन् वा इदं ब्रूमोऽपो देवीः प्रजापतिम् ।
पितॄन् यमश्रेष्ठान ब्रूमस्ते नो मुंचन्त्वंहसः ।।११
ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ।
पृथिव्यां शक्रा ये श्रितास्ते नो मुंचन्त्वंहसः ।।१२
आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः ।
अंगिरसो मनीषिणस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।१३
यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा ।
यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।१४
पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः ।
दर्भो भङ्गो यव सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।१५
अरायान् ब्रूमो रक्षांसि सर्पान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
मृत्युनेकशतं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।१६
ऋतून् ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः सवत्सरान् मासांस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।।१७

एत देवा दक्षिणतः पश्चात् प्राञ्च उदेत् ।
पुरस्तादुत्तराच्छक्रा विश्वे देवाः समेत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः।१८
विश्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
विश्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुंचन्त्वंहसः ।१९
सर्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंघानृतावृधः ।
सर्वाभिः पत्नीभि सह ते नो मुंचन्त्वंहसः ।।२०
भूतं ब्रूमो भूतपतिं भूतानामुत यो वशी ।
भूतानि सर्वा सङ्गत्य ते नो मुंचनत्वंहसः ।।२१

(अ० ११। ६)

विचारों की पवित्रता के लिए

अपवित्र विचार बुरे कार्यों की ओर प्रेरित करते हैं जिनका परिणाम सदैव दुःख और संकट रहता है । अतः सुखी जीवन के लिए विचारों और बुद्धि की पवित्रता की अपेक्षा है । निम्न मन्त्रों के पाठ व हवन से इस कार्य की सिद्धि हो सकती हैः—

पुनन्तु मा देवजनाः मनवो धिया ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा ।।१
पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
अथो अरिष्टतातये ।।२
उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।
अस्मान् पुनीहि चक्षसे ।।३

(अ० ६ । १९)

ब्रह्मचर्य की दृढ़ता के लिए

ब्रह्मचारी को निम्न मन्त्रों का नित्य पाठ करना चाहिए । इससे उसे अपार शक्ति की अनुभूति होगी और कामवासना उसका स्पर्श करने का भी साहस न कर पाएगी ।

ब्रह्मचारीण्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवाः संमनसो भवंति ।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं तपसा पिपर्ति ॥१
ब्रह्मचारिण पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनुसंयन्ति सर्वे ।
गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट्सहस्राः
सर्वान्त्स दवांस्तपसा पिपर्ति ॥२
आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रुष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥३
इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
ब्रह्मचारी समिधां मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ॥४
पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी धर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥५
ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ।
स सद्य इति पूर्वस्मादुत्तर समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहराचरिक्रत्॥६
ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम् ।
गर्भो भूत्वासृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्व.सुरांस्ततर्ह ॥७
आचार्य स्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च ।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ॥८
इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवं च ।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ॥९
अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद् गुहा निधी निहितो ब्राह्मणस्य ।
तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान् ॥१०
अर्वागन्यः इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो अन्तरेमे ।
तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढास्ताना तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी ।११
अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिंगो बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार ।
ब्रह्मचारी सिंचति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति
प्रदिशश्चतस्रः ॥१२

अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचर्यप्सु समिधमा दधाति ।
तासामर्चींषि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः ॥१३
आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः ।
जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिदं स्वराभृतम् ॥१४
अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो ,
भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ ।
तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत् स्वान्मित्रो अध्यात्मनः ॥१५
आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशी ॥१६
ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥१७
ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीषति ॥१८
ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥१९
ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥२०
पार्थिव दिव्याः पशवः आरण्या ग्राम्याश्च ये ।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥२१
पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति ।
तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥२२
देवानामेतत् परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं
देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥२३
ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति ,
तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः ।

प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मानो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ।२४
चक्षु श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम् ।।२५
तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य,
पृष्ठे तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे ।
स स्नातो बभ्रुः पिंगलः पृथिव्यां बहु रोचते ।।२६
(अ० ११।५)

बौद्धिक विकास के लिए

प्रातःकाल मस्तक को जल से भिगोयें और सूर्योदय की प्रथम किरणें उस पर पड़ने दें। पूर्व की ओर मुख करके बैठें और निम्नमन्त्रों का सस्वर उच्चारण करें। २१ पाठ नित्य करने चाहिये। पाठ के बाद हवन करना चाहिये।

त्वं नो मेधे प्रथमा गोभरश्वेभिरा गहि ।
त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया ।।१
मेधामहं प्रथमा ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम् ।
प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे ।।२
यां मेधामृभवो विदुर्यां मेधामसुरा विदुः ।
ऋषयो भद्रां मेधां या विदुस्तां मय्या वेशयामसि ।।३
यामृषयो भूतकृतो मेधाविनो विदुः ।
तया मामद्य मेधयाग्गे मेधाविनं कृणु ।।४
मेधां साय मेधां प्रातर्मेधां मध्यन्दिनं परि ।
मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचस वेशयामहे ।।५
(अ० ६।१०७)

धार्मिक कार्यों के सफल सम्पादन के लिए

वेदोक्त कर्म में, प्रतिष्ठा और संकल्प में देवाह्वान एवं आशीर्वादात्मक कर्म के सफल सम्पादन और विघ्नों से रक्षा के लिये चावलों को अभिमन्त्रित करके चारों दिशाओं में फैंक दें—

सविता प्रसवानामधिपति सः मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मन्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥१

अग्निर्वनस्पतीनामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्स्यां पुरोधायाणस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥२
द्यावापृथिवी दातृणामधिपत्नी ते मावताम् ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्याशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥३

वरुणोऽपामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्य.मस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥४
मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपती तौ मावताम् ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामास्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥५
मरुतः पर्वतानामधिपतयस्ते मावन्तु ।
अस्मिन् कर्मण्यस्मिन् कर्मयण्स्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥६
सोमो वीरुधामाधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां

प्रतिष्ठायामास्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्याशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ।।७।।
वायुरन्तरिक्षस्याधिपति. मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ।।८
सर्वश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिम् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्टायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ।।९
चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ।।१०
इन्द्रो दिवोऽधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्यामस्यामाकूत्यामस्याशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ।।११
मरुतां पिता पशूनामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ।।१२
मृत्युः प्रजानामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्या ।
देवहूत्यां स्वाहा ।।१३

यमपितृ्णामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ।।१४
पितर परे ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामास्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ।।१५
तता अवरे ते मावन्तु ।
अस्मिन् क्रर्मण्यस्मिन् कर्मयण्स्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ।।१६
ततस्ततामहास्ते मावतु ।
अस्मिन् बृह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामास्यां
प्रतिष्ठायामास्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्याशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ।।७।।

(अ० ५ । २४)

तोज वृद्धि के लिये

निम्न मन्त्रों के नित्य सस्वर पाठ व हवन से तेजस्विता की प्राप्ति होती है:—

हस्तिवर्चसं प्रथतां बृहद यशो अदित्या यत् तन्वः सम्बभुव ।
तत् सर्वे समदुर्मह्यमेतद् विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ।।१
मितश्च वरुणश्चेन्द्रो रुद्रश्चव चेततु ।
देवासो विश्वधायसस्ते माञ्जन्तु वर्चसा ।।२
येन हस्तौ वर्चसा सम्बभूव येन राजा मनुष्येष्वप्स्वन्तः ।

येन देवा देवतामग्र आयन् तेन ,
मामद्य वचसाग्ने वर्चस्विनं कृणु ।।३
यत् ते वर्चो जातवेदो बृहद् भवत्याहुतेः ।
यावत् सूर्यस्य वर्च आसुरस्य च हस्तिनः ।
तावन्मे अश्विना वर्च आ धत्तां पुस्करस्रजा ।।४
यावच्चतस्रः प्रदिशश्चक्षुर्यावत् समश्नुते ।
तावत् समत्विन्द्रियं मयि तद्धस्तिवर्चसम् ।।५
हस्ती मृगाणां सुषादामतिष्ठावान् बभूव हि ।
तस्य भगेन वर्चसाऽभि षिञ्चामि मामहम् ।।६
(अ० ३ । २२)

विवाद निवृत्ति के लिए

जब दो पक्षों में विवाद इस सीमा तक बढ़ गया हो कि किसी बड़े विस्फोट की आशंका हो, आपसी विद्वेष भाव को दूर करना हो, पुत्र पिता, पति पत्नी, भाई भाई, बहिन भाई में अनबन हो गई हो तो निम्न मन्त्रों की पाठ व हवन साधना दोनों पक्षों को प्रेम सूत्र में बांधती है और समान मन वाला बनाती है:—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभि हर्यंत वत्सं जातमिवाघ्न्या ।।१
अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु सँमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ।।२
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ।।३
येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः ।
तत् कृन्मो ब्रह्म वो गृहे सं ज्ञानं पुरुषेभ्यः ।।४
ज्यायस्वन्ताश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः ।

अन्यौ अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत ,
सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ।।५
समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाये योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ।।६
सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्ठीन्त्स वननेन् सर्वान् ।
देवाइवामृत रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ।।७
(अ० ३ । ३०)

यश प्राप्ति के लिए

निम्नमन्त्रों की जप व हवन साधना से साधक की गतिविधियां इस प्रकार से सञ्चालित होने लगती हैं जिससे उसका यश व कीर्ति चारों ओर फैलने लगे—

गिरावरगराटेषु हिरण्ये गोषु यद् यशः ।
सुरायां सिच्यमानायां कीलाले मधु तन्मयि ।।१
अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती ।
यथा भर्गस्यतीं वाचमावदानि जनाँ अनु ।।२
मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत् पयः ।
तन्मयि प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ।।३
(अ० ६ । ६९)

काम नियन्त्रण के लिये

जिस व्यक्ति के मस्तिष्क पर काम का नियन्त्रण हो, उसके शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक व आत्मिक स्वास्थ्य का निश्चित रूप से विध्वंस होता है । जीवन विकास के लिये आवश्यक है कि काम को नियन्त्रित किया जाये । यह निम्न मन्त्रों से सम्पन्न होता है—

नि शीर्षतो नि पत्तत आध्यो नि तिरामि ते ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ।।१

अनुमतेऽविदं मन्यस्वाकूते समिदं नमः ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ।।२
(अ० ६ । १३१)

यं देवाः स्मरमसिञ्चन्नप्स्वन्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणभ्य धर्मणा ।।१
यं विश्वे देवाः स्मरमसिञ्चन्नप्स्वन्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ।।२
यमिन्द्राणी स्मरमसिञ्चदप्स्वन्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपापि वरुणस्य धर्मणा ।।३
यमिन्द्राग्नी स्मरमसिञ्चतामप्स्वन्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ।।४
यं मित्रावरुणौ स्मरमसिञ्चतामप्स्वन्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ।।५
(अ० ६ । १३२)

विघ्न नाश के लिये

अरलु वृक्ष की मणि बनाकर पीले रङ्ग के डोरे में कवच के समान गले अथवा भुजा में धारण करें। मणि को निम्न मन्त्रों से अभिमन्त्रित करें। इससे सभी प्रकार के विघ्नों का नाश होता है।

कर्शफस्य विशफस्य द्यौष्पिता पृथिवी माता ।
यथाभिचक्र देवास्तथाप कृणुता पुनः ।।१
अश्लेष्माणो अधारयन् तथा तन्मनुना कृतम् ।
कृणोमि वध्रि विष्कन्धं मुष्कावर्हो गवामिव ।।२
पिशगे सूत्रे खृगलं तदा वध्नन्ति वेधसः ।
श्रवस्युं शुष्मं काववं वध्रि कृण्वन्तु बन्धुरः ।।३
येना श्रवस्यवश्चरथ देवा इवासुरमायया ।
शुनां कपिरिव दूषणो बन्धुरा काववस्य ।।४

दुष्ट्यै हि त्वा भत्स्यामि दूषयिष्यामि काबवम् ।
उदाशवो रथाइव शपथेभिः सरिष्यथ ।।५
एकशतं विष्कन्धानि विष्ठिता पृथिवीमनु ।
तेषां त्वामग्र उज्जहरुर्मणि विष्कन्धदूषणम् ।।६
(अ० ३ । ९)

शत्रु भय से रक्षा के लिये

[१]

'पुरुष वृक्ष' पीपल और गायत्री सारोत्पन्न अत्यन्त बली खदिर वृक्ष के संयोग से निर्मित "अश्वत्थमणि" को निम्न मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके धारण करने पर शत्रुओं के मानसिक भावों में परिवर्तन होता है । वह बदला लेने के बजाय मैत्री और समझौते की बात सोचते हैं—

पुमान् पुंसः परिजातोऽश्वत्थः खदिरादधि ।
स हन्तु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् ।।१
तानश्वत्थ निः शृणीहि शत्रून् वैबाध दोधतः ।
इन्द्रेण वृत्रघ्ना मेदी मित्रेण वरुणेन च ।।२
यथाश्वत्थ निरभनोऽतर्महत्यर्णवे ।
एवा तान्त्सर्वान्निर्भङ्ग्धि यानहं द्वेष्मि ये च माम् ।।३
यः सहमानश्चरसि सासहानइव ऋषभः ।
तेनाश्वत्थ त्वया वयं सपत्नान्त्सहिषीमहि ।।४
सिनात्वेनान् निर्ऋतिर्मृत्योः पाशैरमोक्यैः ।
अश्वत्थ शत्रून् मामकान् यानहं च माम् ।।५
यथाश्वथ वानस्पत्यानारोहन् कृणुषेऽधरान् ।
एवा मे शत्रोर्मूर्धानं विष्वग् भिन्द्धि सहस्व च ।।६
तेऽधराञ्चः प्र प्लव तां छिन्ना नौरिव बन्धनात् ।
न वैबाधप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्त्तनम् ।।७

प्रैणान् नुदे मनसा प्र चित्तेनोत ब्रह्मणा ।
प्रैणान् वृक्षस्य शाखायाश्वत्थस्य नुदामहे ।।८
(अ० ३ । ६)

[२]

जिन शक्तिशाली शत्रुओं से हानि की आशंका हो और निरन्तर भय बना रहता हो, उन्हें वशीभूत करने के लिये निम्न मन्त्रों का प्रयोग लाभदायक रहता है । प्रयोग करते समय यह भावना करें कि वह शत्रु हाथ जोड़े मैत्री की भिक्षा माँग रहा है और क्षमा याचना के लिये आतुर है—

तन्त्सत्यौजाः प्र दहत्वग्निर्वैश्वानरो वृषा ।
यो नो दुरस्याद् दिप्साच्चाथ यो नो अरातियात् ।।१
यो नो दिप्सदप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति ।
वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम् ।।२
य आगरे मृगयन्ते प्रतिक्रोशेऽमावास्ये ।
क्रव्यादो अन्यान् दिप्सतः सर्वा स्त्सान्त्सहसा सहे ।।३
सहे पिशाचान्त्सहसैषां द्रविणं ददे ।
सर्वान् दुरस्यतो हन्मि सं म आकूतिर्ऋध्यताम् ।।४
ये देवास्तेन हासन्ते सूर्येण मिमते जवम् ।
नदीषु पर्वतेषु ये सं तैः पशुभिर्विदे ।।५
तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव ।
श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यञ्चनम् ।।६
न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः ।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे ।।७
यं ग्राममाविशत इदमुग्रं सहो मम ।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते ।।८
ये मा क्रोधयन्ति लपिता हस्तिन मशकाइव ।

तानहं मन्ये दुर्हिताञ्जने अल्पशयूनिव ॥६
अभि तं निर्ऋर्धत्तामश्वमिवाश्वाभिधान्या ।
मल्वो यो मह्यं क्रुध्यति स उ पाशान्न मुच्यते ॥१०
(अ० ४ । ३५)

अव मन्युरवायताव बाहू मनोयुजा ।
पराशर त्वं तेषां पराञ्चं शुष्ममर्दयाधा नो रयिमा कृधि।१
निर्हस्तेभ्यो नैर्हस्तं यं देवाः शरुमस्यथ ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् ॥२
इन्द्रश्चकार प्रथमं नैर्हस्तसुरेभ्यः ।
जयन्तु सत्वानो मम स्थिरेणेंद्रेण मेदिना ॥३
(अ० ६ । ६५)

निर्हस्तः शत्रूरभिदासन्नस्तु येसेनाभिर्युधमायन्त्यस्मान् ।
समर्पयेन्द्र महता वधेन द्रात्वेषामघहारो विविद्धः ॥१
आतन्वाना आयच्छन्तोऽस्यन्तो ये च धावथ ।
निर्हस्ताः शत्रवः स्थनेद्रो वोऽद्य पराशरीत् ॥२
निर्हस्ताः सन्तु शत्रवोऽङ्गैषां म्लापयामसि ।
अथैषामिंद्र वेदांसि शतशो वि भजामहै ॥ ३
(अ० ६ । ६६)

[३]

तिलक वृक्ष की मणि को निम्न मन्त्रों से अभिमन्त्रित करने पर भुजा पर धारण करें तो शत्रु भय से रक्षा होती है, शत्रु वशीभूत होता है, कृत्या अपने प्रयोग कर्ता पर ही आक्रमण करती है। इसके धारण कर्ता को देखते ही शत्रु पलायन करते हैं। इस मणि को शत्रु के उत्पीड़न, शरीर रक्षण और बल के लिये धारण करना चाहिये। यह कवच रूप में रक्षक सिद्ध होती है और वृद्धावस्था तक जीवित रहने की क्षमता देती है।

अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।
वीर्यवान्त्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणः सुमङ्गलः ।।१
अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
प्रत्यक् कृत्या दूषयन्नेति वीरः ।।२
अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्ननेनासुरान् पराभावयन्मनीषी ।
अनेनाजयद् द्यावापृथिवी उभे इमे अनेनाजयत् प्रदिशश्चतस्रः ।।३
अयं स्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः ।
ओजस्वान् विमृधो वशी सो अस्मान् पातु सर्वतः ।।४
तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ।।५
अन्तर्दधे द्यावापृथिवी उताहरुत सूर्यम् ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ।।६
ये स्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते ।
सूर्य इव दिवमारुह्य वि कृत्या बाधते वशी ।।७
स्राक्त्येन मणिन ऋषिणेव मनीषिणा ।
अजैषं सर्वाः पृतना वि मृधो हन्मि रक्षसः ।।८
याः कृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीर्याः कृत्याः ।
स्वयंकृता या उ चान्येभिराभृताः ।
उभयीस्ता परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्या अति ।।९
अस्मै मणिं वर्म बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः ।
प्रजापतिः परमेष्ठी विराड् वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे ।।१०
उत्तमो अस्योषधीनामनड्वाञ्जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ;
यमैच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनमन्तितम् ।।११
स इद् व्याघ्रो भवत्यथो सिंहो अथो वृषा ।
अथो सपत्नकर्शनो यो बिभर्तीमं मणिम् ।।१२
नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः ।

सर्वा दिशो वि राजति यो बिभर्तीमं मणिम् ॥ ।३
कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत ।
अबिभस्त्वेन्द्रो मानुषे बिभ्रत् संश्रेषिणेऽजयत् ।
मणिं सहस्रवीर्यं वर्म देवा अकृण्वत ॥१४
यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिर्यज्ञैस्त्वा जिघांसति ।
प्रत्यक् त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा ॥१५
अयमिद् वै प्रतीवर्त ओस्वनात्संजयोमणिः ।
प्रजां धनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः ॥१६
असपत्नं नो अधरादसपत्नं न उत्तरात् ।
इन्द्रासपत्नं नः पश्चाज्ज्योतिः शूर पुरस्कृधि ॥१७
वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः ।
वर्म मे इन्द्रश्चाग्निश्च वर्म धाता दधातु मे ॥१८
ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं धिश्वे देवा नाति विध्यन्ति सर्वे ।
तन्मे तन्वं त्रायतां सर्वतो बृहदायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासानि ॥१९
आ मारुक्षद् देवमणिर्मह्या अरिष्टतातये ।
इमं मेथिमभिसंविशध्वं तनूपानं त्रिवरूथमोजसे ॥२०
अस्मिन्निन्द्रो वि दधातु नृम्णमिमं देवासो अभिसंविशध्वम् ।
दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासत् ॥२१
स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।
इन्द्रो बध्नातु ते मणिं जिगीवाँ अपराजितः
सोमपा अभयंकरो वृषा ।
स त्वा रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः ॥२२

(अ० ८।५)

रक्षा के लिए

निम्न मन्त्रों का दैनिक दैनिक पाठ रक्षा कवच के रूप में सिद्ध

होता है। शत्रु पक्ष से किसी प्रकार के आक्रमण की सम्भावना हो तो इनके ११ पाठ नित्य करके हवन करना चाहिये।

अग्निर्मा पातु वसुभिः पुरस्तात् तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुर प्रैमि। स मा रक्षतु मा गोपायतु तस्मा आत्मान परिददे स्वाहा ॥१

वायुर्मान्तरिक्षेणैतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छये तां पुर प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु यस्मा आत्मानं परिददे स्वाहा ॥२

सोमो मा रुद्रैर्दक्षिणाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परिददे स्वाहा ॥३

वरुणो मादित्यै रेतस्य दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुर प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्माआत्मानं परिददे स्वाहा ॥४

सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छये तां पुर प्रैमि। स मा चक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परिददे स्वाहा ॥५

आपो मौषधीमतीरेतस्या दिश पान्तु तासु क्रमे तासु श्रये ताँ पुरं प्रैमि। स मा रक्षन्तु ता मा गोपायन्तु ताभ्य आत्मानं परिददे स्वाहा ॥६

विश्वकर्मा म सप्तऋषिभिरुदीच्या निशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मि ञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परिददे स्वाहा ॥७

इन्द्रो मा मरुत्वानेतस्या दिशः पातु तस्मिन्न् क्रमे तस्मिञ्छ्रये

तां पुरं प्रैमि । सं मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परिददे स्वाहा ॥८

प्रजापतिर्मा प्रजननवात्न्सह प्रतिष्ठाया ध्रुवाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे यस्मिञ्छ्र्ये तां पुरं प्रैमि । समा रक्षतु स मा गोपायतुतस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥९

बृहस्पतिर्मा विश्वैदेवैरूर्ध्यावा दिशः पातु यस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्ये तां पुरं प्रैमि । सं मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥१०

(अ० १९ । १७)

गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा स्वा पातु वाजिभिः ।
वायुष्ट्वा ब्रह्मणा पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः ॥१
सोमस्त्वोषधोभिर्नक्षत्रै पातु सूर्यः ।
माद्भयस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणन रक्षतु ॥२
तिस्त्रोदिवस्तिस्रः पृथिवीस्त्रोण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान् ।
विवृतं स्तोमं त्रिवृत आप आहस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवद्भिः ॥३
त्रीन्नाकां स्त्रीन् समुदास्त्रीन् वैष्टपान् ।
त्रीन् मातरिवनस्त्रीन्त्सूर्यान् गोपतृन् कल्पयामि ते ॥४

(अ० १९ । २६)

मृत्यु से रक्षा के लिए :

प्राचीन काल में भारतीय अपनी पूर्ण आयु १०० वर्ष की मानते थे । यदि इससे पहले मृत्यु हो जाये तो इसे अशुभ मानते थे और पूर्व जन्म के किन्हीं पापों का परिणाम समझते थे । पूर्व जन्म के असंस्कृत कर्मों को संस्कृत व परिष्कृत करने से ही मृत्यु और उसके भय से रक्षा की जा सकती है जिसके लिये निम्न मन्त्र उपयुक्त हैं—

[१]

यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत् ।
यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात् तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥१
येनातरन् भूतकृतोऽति मृत्युं यमन्वविन्दन् तपसा श्रमेण ।
यं पपाच ब्रह्मणे ब्रह्म पूर्वं तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥२
यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजसं यो अन्तरिक्षमापृणाद् रसेन ।
यो अस्तभ्नाद् दिवमूर्ध्वो महिम्ना तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम्॥३
यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः,
संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः ।
अहोरात्रा यं परियंतो नापुस्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥४
यः प्राणदः प्राणदवान् बभूव यस्मै लोका घृतवंतः क्षरंति ।
ज्योतिष्मतीः प्रदिशो यस्य सर्वास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥५
यस्मात् पक्वादमृतं सम्बभूव यो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव ।
यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥६
अव बाधे द्विषन्तं देवपीयुं सपत्ना ये मेऽप ते भवन्तु ।
ब्रह्मौदनं विश्वजितं पचामि शृण्वन्तु मे श्रद्दधानस्य देवाः ॥७
(अ० ४ । ३५)

[२]

पुरस्ताद् युक्तो वह जातवेदोऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम् ।
त्वं भिषग् भेषजस्यासि कर्ता त्वया गामश्वं पुरुष सनेम ॥१
तथा तदग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर्देवैः सह सम्विदानः ।
यो नो दिदेव यतमो जघास यथा सो अस्य परिधिष्पताति ॥२
यथा सो अस्य परिधिष्पताति तथा तदग्ने कृणु जातवेदः ।
विश्वेभिर्देवैः सह सम्विदानः ॥३
अक्ष्यौनि विध्य हृदयं नि विध्य जिह्वां नि तृन्द्धि प्र दतो मृणीहि ।
पिशाचो अस्य यतमो जघासग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि ॥४

यदस्य हृतं विहृतं यत् पराभृतमात्मनो जग्धं यतमत् पिचाचैः ।
तदग्ने विद्वान् पुनरा भर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः ।।५
आमे सुपक्वे शवले पिवक्वे यो मा पिशाचो अशने ददम्भ ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोयमस्तु ।।६
क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भाकृष्टपच्ये अशने धान्ये यः ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोमस्तु ।।७
अपां मा पाने यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामदोयमस्तु ।।८
दिवा मा नक्तं यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगददोयमस्तु ।।९
क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः ।
तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु च्छिनत्तु
सोमः शिरो अस्य धृष्णुः ।।१०

(अ० ५ । २९)

चोर व हिंसक पशुओं से सुरक्षा के लिए :

किसी निर्जन स्थान में चोर, डाकू, व्याघ्र, भेड़िया, जङ्गली कुत्ता व सर्प आदि का भय हो तो निम्न मन्त्रों का उच्चारण करें और भावना करें कि वह हमारे मार्ग को छोड़कर दूर भाग रहे हैं—

उदितस्त्रयो आक्रमन् व्याघ्रः पुरुषो वृकः ।
हिरुग्धि यन्ति सिन्धवो हिरुम् देवो
वनस्पतिर्हिरुङ् नमन्तु शत्रवः ।। १
परेणैतु पथा वृकः परमेणोत तस्करः ।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ।।२
अक्ष्यो च ते मुखं च ते व्याघ्र जम्भयामसि ।
आत् सर्वान् विंशतिं नखान् ।।३

व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि ।
आदु ष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो कमृत्रकम् ॥४
यो अद्य स्तेन आयति स संपिष्टो अपायति ।
पथामपध्वसेमैत्विन्द्रो वज्रेण हन्तु तम् ॥५
मूर्णा मृगस्य दन्ता अपिशीर्णा उ पृष्टयः ।
निम्रुक् ते गोधा भवतु नीचायच्छशयुर्मृगः ॥६
यत् संयमो न वियमो वियमो यन्न संयमः ।
इन्द्रजाः सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम् ॥७
(अ० ४ । ३)

वशीकरण मंत्र :

[१]

पत्नी यदि निम्न मन्त्र से अभिमन्त्रित वस्त्र धारण करती है तो उसका पति उसकी ओर आकर्षित होता है और वह किसी अन्य स्त्री का ध्यान नहीं करता—

अभि त्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा ।
यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥१
(अ० ६ । ३७)

[२]

शंखपुष्पी नामक औषधि को निम्न मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके यदि पत्नी सेवन करती है तो उसका पति उसकी ओर आकृष्ट होता है। पति के किसी अन्य स्त्री के साथ बढ़ रहे वासनात्मक सम्बन्ध समाप्त हो जायेंगे।

इदं खनामि भेषजं मांपश्यमभिरोरुदम् ।
परायतो निवर्तनमायतः प्रतिनन्दनम् ॥१
येना निचक्र आसुरीन्द्रं देवेभ्यस्परि ।
तेना नि कुर्वे त्वामहं यथा तेऽसानि सुप्रिया ॥२

प्रतीची सोममसि प्रतीच्युत सूर्यम् ।
प्रतीची विश्वान् देवान् तां त्वाच्छावदामसि ॥३
अहं वदामि नेत् त्वं सभायामह त्वं वद ।
ममेदसस्त्वं केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥४
यदि वासि तिरोजनं यदि वा नद्य स्तिरः ।
इयं ह मह्यं त्वामोषधिर्बद्ध्वेव न्यानयत् ॥५
(अ० ७ । ३८)

कृत्या के प्रतिकार के लिए :

किसी शत्रु ने हानि पहुँचाने के लिए यदि कृत्या का प्रयोग किया हो तो उससे रक्षा के लिए निम्न मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए। इनका यह भी प्रभाव होता है कि वह कृत्या लौटकर प्रयोगकर्त्ता पर आक्रमण करके उसका नाश करदे ।

सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा ।
दिप्सौषधे त्वं दिप्सन्तमव कृत्याकृतं जहि ॥१
अव जहि यातुधानानव कृत्याकृत जहि ।
अथो यो अस्मान् दिप्सति तम त्वं जह्यौषधे ॥२
रिश्यस्येव परीशास परिकृत्य परि त्वचः ।
कृत्या कृत्याकृते देवा निष्कमिव प्रति मुञ्चत ॥३
पुनः कृत्यां कृत्याकृते हस्तगृह्य पराणय ।
समक्षयस्मा आ धेहि कृत्याकृतं हनत् ॥४
कृत्याः सन्तु कृत्याकृते शपथः शपथीयते ।
सुखो रथइव वर्तंतां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥५
यदि स्त्री यदि वा पुमान् कृत्यां चकार पाप्मने ।
तामु तस्मै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या ॥६
यदि वासि देवकृता यदि वा पुरुषैः कता ।
तां त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम् ॥७

अग्ने पृतनाषाट् पृतनाः सहस्व ।
पुनः कृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि ॥८
कतव्यधनि विध्य तं यश्चकार तमिज्जहि ।
न त्वामचक्रुषे वयं वधाय सं शिशीमहि ॥९
पुत्रइव पितरं गच्छ स्वजइवाभिष्ठितो दश ।
वन्धमिवावक्रामी गच्छ कृत्ये कृत्याकृतं पुनः ॥१०
उदेणीव वारण्य भिस्कन्दं मृगोव ।
कृत्या कर्तारपृच्छतु ॥११
इष्वा ऋजीयः पततु द्यावापृथिवी तं प्रति ।
सा तं मृगमिव गृह्णातु कृत्याकृतं पुन. ॥१२
अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूलमिवोदकम् ।
सुखो रथइव वर्ततां कृत्या कृत्याकृत पुनः ॥१३
(अ० ५ । १४)

यां ते चक्रामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥१
यां ते चक्रुः कृकवाकावजे वा यां कुरीरिणि ।
अव्यां ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥२
यां ते चक्रु रेकशफे पशूनामुभयादति ।
गर्दभे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥३
यां ते चक्रु रमूलाया वलगं वा नराच्याम् ।
क्षेत्रे ते कृत्या या चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥४
या ते चक्रुर्गार्हपत्ये पुर्वाग्नावुत दुश्चितः ।
शालाया कृत्या यां चक्रु पुनः प्रति हरामि ताम् ॥५
यां ते चक्रुः सभायां यां चक्रुरधिदेवने ।
अक्षेषु कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥६
यां ते चक्रुः सेनायां यां चक्रुरिष्वायुधे ।

दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रुः पुन प्रति हरामि ताम् ।।७
यां ते कृत्यां कूतेऽवदधु श्मशानो वा निचख्नुः ।
सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ।।८
यां ते चक्रुः पुरुषास्थे अग्नौ संक्रसुके च याम् ।
म्रोकं निर्दाहं क्रव्यादं पुनः प्रति हरामि ताम् ।।९
अपथेना जभारैणां तां पथेतः प्र हिण्मसि ।
अधीरो मर्याधीरेभ्यः सं जभावाचित्या ।।१०
यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् ।
चकार भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः ।।११
कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेय्यम् ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया ।।१२
(अ० ५ । ३१)

यां कल्पयन्ति वहतौ वधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः ।
सारादेत्वप नुदाम एनाम् ।।१
शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
सारादेत्वप नुदाम एनाम् ।।२
शूद्र कृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता ।
जाया पत्या नुत व कर्तारं बन्ध्वृच्छतु ।।३
जनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् ।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ।।४
अघमस्त्वघकुते शपथः शपथीयते ।
प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत् ।।५
प्रतीचीन आङ्गिरसोऽध्यक्षो नः पुरोहितः ।
प्रतीचीः कृत्या आकृत्यामून् कृत्याकृतो जहि ।।६
यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम् ।
तं कृत्येऽभिनिवतस्व मास्मानिच्छो अनागसः ।।७

यस्ते परूंषि संदधौ रथस्येव ऋभुर्धिया ।
तं गच्छ तत्र तेऽयनमज्ञातस्तेऽय जनः ॥८
ये त्वा कृत्वालेभिरे विद्वला अभिचारिणः ।
शम्वीदं कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म पुनासरं तेन त्वा स्नपयामसि ॥६
यद् दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम ।
अपैतु सर्वं मत् पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु ॥१०
यत् ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः ।
सदेश्यात् सर्वस्मात् पापादिमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः ॥११
देवैनसात् पित्र्यान्नामग्राहात् संदेश्यादभिनिष्कृतात् ।
मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण ब्रह्मण ऋग्भिः पयस ऋषीणाम् ॥१२
यथ वातश्च्यावयति भूम्यारेणुमन्तरिक्षच्चाभ्रम् ।
एवा मत् सर्व दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति ॥१३
अप क्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव ।
कर्तृन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्यावता ॥१४
अयं पन्थाः कृत्य इति त्वा नतामोऽभिप्रहितां प्रति त्वा प्र हिण्मः ।
तेनाभि याहि भञ्जत्यनस्वतीव वाहिनी विश्वरूपा कुरूटिनी ॥१५
पराक् ते ज्योतिरपथं ते अर्वागन्यत्रास्मदयना कृणुष्व ।
परेणेहि नवतिं नाव्या अति दुर्गाःस्रोत्या मा क्षणिष्ठाः परेहि ॥१६
वातइव वृक्षान् नि मृणीह पादय मा गामश्वं पुरुषमुच्छिष एषाम् ।
कर्तृन् निवृत्येतः कृत्येऽप्रजास्त्वाय बोधय ॥१७
यां ते बर्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यां वलगं वा निचखनुः ।
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः पाकं सन्तंधीरत्तरा अनागसम् ॥१८
उपाहृतमनुबुद्धं निखातं वैरं त्सार्यन्वविदाम कर्त्रम् ।
तदेतु यत आभृतं तत्राश्वइव वि वर्ततां हन्तु कृत्याकृतः प्रजाम्॥१६
स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे विद्मा ते कृत्ये यतिधा परूंषि ।
उत्तिष्ठैव व परेहीतोऽज्ञाते किमिहेच्छसि ॥२०

ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव ।
इन्द्राग्नी अस्मान् रक्षतां यौ प्रजानां प्रजापती ॥२१
सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥२२
भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते ।
दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् ॥२३
यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
सेतोष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने ॥२४
अभ्याक्ताक्तास्वरं कृतासर्वं भरन्ती दुरितं परेहि ।
जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम् ॥२५
परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नयः ।
मृगः स मृगयुस्त्व न त्वा निकर्तु मर्हति ॥२६
उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापर इष्वा ।
उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति ॥२७
एतद्धि शृणु मे वचोऽथेहि यत एयथ ।
यस्त्वा चकार तं प्रति ॥२८
अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः ।
यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि
पर्णाल्लघीयसी भव ॥२९
यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिताश्व ।
सर्वाः संलुप्येत कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि ॥३०
कृत्याकृतो वलगिनोऽभिनिष्कारिणः प्रजाम् ।
मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोऽमून् कृत्याकृतो जहि ॥३१
यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून् ।
एवाह सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं
हस्तीव रजो दुरित जहामि ॥३२

(अ० १०।१)

चुनाव में आसाधारण सफलता के लिए :

निम्न मन्त्रों के बल से साधक में जनता से मेल-जोल की प्रवृत्ति बढ़ती है, लोगों के दुःख दर्द दूर करने की प्रेरणा मिलती है और अप्रत्याशित लोकप्रियता प्राप्त होती है, विरोधी तत्व दबे रहते हैं और वह शासन में उच्चतम पदों पर आसीन होता चलता है:—

इमसिन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इमं विश मेकवृषं कृणु त्वम् ।
निरमित्रानक्ष्णुह्यस्य सर्वास्तान् रन्धयास्मा अहमुत्तरेषु ।।१
एमं भज ग्रामे अश्वेषु गोषु निष्टं भज यो अमित्रो अस्य ।
वर्ष्म क्षत्राणामयमस्तु राजेन्द्र शत्रु रन्धय सर्वमस्मै ।।२
अयमस्तु धनिपतिर्धनानामयं विशां विश्पतिरस्तु राजा ।
अस्मिन्नन्द्र महि वर्चांसि धेह्यवचसं कृणुहि शत्रुमस्य ।।३
अस्मै छावापृथिवी भरि वामं दुहाथां घर्मदुवेइव धेनू ।
अयं राजा प्रिय इन्द्रस्य भूयात् प्रियो गवामोषधीनां पशुनाम् ।।४
युनिज्म त उत्तरावन्तमिन्द्र येन जयन्ति न पराजय ते ।
यस्त्वा करदेकवृषं जनानामुत राज्ञामुत्तमं मानवानाम् ।।५
उत्तरस्त्वमधरे ते सपत्ना ये के च राजन् प्रतिशत्रवस्ते ।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ्छत्रूयतामा भरा भोजनानि ।।६
सिंहप्रतीको विशो अद्धि सर्वा व्याघ्रप्रतीकोऽव बाधस्व शत्रून् ।
एकवृष इन्द्र सखा जिगीवाञ्छत्रूयतामा खिदा भोजनानि ।।७

(अ० ४ । २२)

विवाह हेतु :

जिस व्यक्ति को विवाह होने में कठिनाई उपस्थित हो रही हो, उसे निम्न मन्त्र साधना करनी चाहिए :—

आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायतः ।
इन्द्रस्य वृत्रघ्नो वन्वे वासवस्य शतक्रतोः ।।१

येन सूर्या सावित्रीमश्विनोहतुः पथा ।
तेन मामब्रवीद् भगो जायामा वहतादिति ॥२
यस्तेऽङ्कुशो वसुदानो बृहन्निन्द्र हिरण्ययः ।
तेन जनीयते जायां मह्यं धेहि शचीपते ॥३

(अ० ६।८२)

स्त्रियों की सौभाग्य रक्षा के लिए :

गृहस्थ को हर प्रकार से सुखी व समृद्ध बनाने के लिए स्त्रियाँ निम्न मन्त्रों की साधना करें :—

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवा सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥१
व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्राह्मणा व्यहं कल्पयामि ।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥२

(अ० १२।२)

कुमारियों के लिये श्रेष्ठ पति प्राप्त करने के लिए—

श्रेष्ठ, चरित्रवान्, गुणवान व बुद्धिमान पति प्राप्त करने के लिए कुमारी कन्याएँ निम्न मन्त्रों की नियमित साधना करें :—

अयमा यात्यर्यमा पुरस्ताद् विषितस्तुपः ।
अस्या इच्छन्नग्रुवै पतिमुत जायमजानये ॥१
अश्रमदियमर्यमन्नन्यासां समनं यती ।
अङ्गो न्वर्यमन्नसा अन्याः समनस्यायति ॥२
धाता दाधार पृथिवीं धाता द्यामुत सूर्यम् ।
धातास्या अग्रुवै पतिं दधातु प्रतिकाम्यम् ॥३

(अ० ६।६०)

पति पत्नी में संयोग के लिए :

किसी कारण से पति-पत्नी में कोई विवाद उठ खड़ा हुआ हो,

दोनों के विचार विरोधी दिशाओं में चलते हों और बात बात पर अनबन हो जाती हो तो निम्न मंत्र विरोध को समाप्त करते हैं और मधुरता उत्पन्न करके संयोग करा देते हैं :—

यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः।
एवा कामस्य विच्छिन्नं सं धेहि वीर्यावति ।:१
(अ० ६।११९)

अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम्।
अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति ॥
(अ० ७।३६)

दुःस्वप्न निवारण के लिए :

पर्यावर्ते दुःष्वप्न्यात् पापात् स्वप्न्यादभूत्याः।
ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः ॥१
(अ० ७।१००)

युद्ध में विजय प्राप्ति के लिए :

युद्ध में जिन अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग किया जाने वाला है, उन्हें निम्न मन्त्रों से अभिमन्त्रित करें। वे अस्त्र मन्त्र शक्ति से तीक्ष्ण और मारण कर्म में कुशल हो जाते हैं, शत्रु पर किया गया प्रहार अचूक रहता है। इससे सेना का मनोबल बढ़ता है, उनकी शारीरिक शक्ति की वृद्धि होती है, शत्रु को पराजित करने का एक नया उत्साह जाग्रत होता है। इस प्रयोग में यज्ञ भी आवश्यक है।

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम्।
संशितं क्षत्रमजरयस्तु जिष्णु येषामस्मि पुरोहितः ॥१
समहमेषां राष्ट्रं श्यामि समोजो वीर्यं बलम्।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् ॥२
नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान्।
क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम् ॥३

इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः ।।४
एषामहमायुधा सं श्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि ।
एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्णवेषां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः ।।५
उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनान्युद् वीराणां जयतामेतु घोषः ।
पृथग् घोषा उलुलयः केतुमन्त उदीरताम् ।
देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया ।।६
प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः ।
तीक्ष्णेषवोऽब्रलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः ।।७
अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
जयामित्रान् प्रपद्यस्व जह्येषां वरंवरं मामीषां मोचि कश्चन ।।८

(अ० ३ । १९)

निरमुं नुद ओकसः सपत्नो यः पृतन्यति ।
नैर्बाध्येन हविषेन्द्र एनं पराशरीत् ।।१
परमां तं परावतमिन्द्रो नुदतु वृत्रहा ।
यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः समाभ्यः ।।२
एतु तिस्रः परावत एतु पञ्च जनां अति ।
एतु तिस्रोऽति रोचना यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः
समाभ्यो यावत् सूर्यो असद् दिवि ।।३

(अ० ६ । ७५)

संदानं वो बृहस्पतिः संदानं सविता करत् ।
संदानं मित्रो अर्यमा संदानं भगो अश्विना ।।१
सं परमान्त्समवमानथो सं द्यामि मध्यमान् ।
इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम् ।।२
अमी ये युधमायन्ति केतून् कृत्वानीकशः ।
इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम् ।।३

(अ० ६ । १०३)

उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते वन्वतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दू राद् दवोयो अप सेध शत्रू न ।।१
आ क्रन्दय बलमोजो न आधा अभि ष्टन दुरिता बाधमानः ।
अप सेध दुन्दुभे दुच्छुनामित इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ।।२
प्रामूं जयाभीमे जयन्तु केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीतु ।
समश्वपर्णाः पतन्तु नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ।।३

(अ० ६ । १२६)

वृष्टि के लिये :

निम्न मन्त्रों के सस्वर उच्चारण और यज्ञ से वृष्टि होती है:—

समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः समभ्राणि वातजूतानि यन्तु ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ।।१
समीक्षयन्तु तविषाः सुदानवोऽपां रसा ओषधीभिः सचतन्ताम् ।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तामोषधयो विश्वरूपाः ।।२
समीक्षयस्वआयतो नभांस्यपां वेगासः पृथगुद् विजन्ताम् ।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तां वीरुधो विश्वरूपाः ।।३
गणास्त्वोप गायन्तु मारुताः पर्जन्य घोषिणः पृथक् ।
सर्गा वर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु ।।४
उदीरयत मरुतः समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत् पातयाथ ।
महऋषभस्य नदतो नमस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तपयन्तु ।।५
अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयसा समङ्ग्धि ।
त्वया सृष्टं बहुलयैतु वर्षमाशारैषी कृशगुरेत्वस्तम् ।।६
सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु ।।७
आशामाशां वि द्योततां वाता वान्तु दिशोदिशः ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः सं यन्तु पृथिवीमनु ।।८

आपो विद्युदभ्रं वर्षं सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु ॥९
अपामग्निस्तनूभिः संविदानो य ओषधीनामधिपा बभूव ।
स नो वर्षं वनुतां जातवेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि ॥१०
प्रजापतिः सलिलादा समुद्रादाप ईरयन्नुदधिमर्दयाति ।
प्र प्यायतां वृष्णो अश्वस्य रेतोऽर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेहि ॥११
अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः श्वसन्तु गर्गरा अपां वरुणाव
नीचीरपः सृज । वदन्तु पृश्निबाहवो मण्डूका इरिणानु ॥१२
संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥१३
उपप्रवद मण्डूकि वर्षमा वद तादुरि ।
मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व विगृह्य चतुरः पदः ॥१४
खण्वखा३ खैमखा३ मध्ये तदुरि ।
वर्षं वनुध्वं पितरो मरुतां मन इच्छत ॥१५
महान्तं कोशमुदचाभि षिञ्च सविद्युतं भवतु वातु वातः ।
तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्टा आनन्दिनीरोषधयो भवन्तु ॥१६
(अ० ४।१५)

वैदिक सूक्तों की प्रभावशाली साधनाएँ

मन्त्रों के निर्माण का भी एक स्वतन्त्र विज्ञान है। मन्त्र अर्थपूर्ण तो होते ही हैं और वह उत्तम शिक्षाओं के साथ ही साथ मानवोपयोगी सिद्धान्तों से ओत-प्रोत भी रहते हैं, परन्तु उनमें भी महत्वपूर्ण उनमें भरी शक्तियां हैं, क्योंकि वेदों के प्रत्येक मन्त्र का गठन कुछ ऐसे चमत्कारी ढङ्ग से किया गया है कि उनका सीधा प्रभाव हमारी सूक्ष्म ग्रन्थियों, षट्चक्रों और शक्ति-केन्द्रों पर पड़ता है जिससे सूक्ष्म जगत् के शक्ति-केन्द्र जाग्रत होते हैं। मन्त्रों के विधिपूर्वक गठन से वह शब्द उनसे सम्बन्धित यौगिक ग्रन्थियों को गुदगुदाते हैं। उनकी सोई हुई शक्तियों को जगाते हैं। उन ग्रन्थियों में स्फूर्ति आने से वह क्रियाशील हो जाती हैं। जिस प्रयोजन के लिए जो मन्त्र होते हैं, वह उसी प्रकार की ग्रन्थियों को जगाते हैं, उन्हीं पर वह शब्द आघात करते हैं। इन ग्रन्थियों की क्रियाशीलता से ही साधक को विभिन्न प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, जो दूसरों को चमत्कार दिखाई देती हैं। परन्तु वास्तव में वह शब्दों की वैज्ञानिक प्रक्रिया का परिणाम है। विदेशी विचारक 'आर्टी मे ब्लैकवर्न' ने इस तथ्य की पुष्टि करते हुए लिखा है कि 'संस्कृत भाषा के अक्षरों में भाव और अर्थ दोनों होते हैं। इन अक्षरों के युक्तिपूर्ण गठन से अनेक-बार जादू का-सा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।'

मन्त्र की सफलता उसके शुद्ध उच्चारण में है, तभी उनमें गुथे शब्दों का प्रभाव विभिन्न शक्ति केन्द्रों पर पड़ना सम्भव होता है।

मन्त्र की सफलता में भावना का भी महत्वपूर्ण स्थान है। श्रद्धा और विश्वास इसके मेरुदण्ड हैं।

श्री महर्षि रमण के आश्रम में साधकों को स्पष्ट आदेश था कि वेद मन्त्रों के अर्थ जानने की आवश्यकता नहीं है। उनका प्रभाव तो उनके विधिवत् उच्चारण में ही है।

वेद मन्त्रों का विधिवत् उच्चारण करने वाले जानते हैं कि उनके पाठ से किस प्रकार की प्रसन्नता, उल्लास, स्फूर्ति, आनन्द और अद्‌भुत मस्ती का प्रस्फुरण होता है। भिन्न-भिन्न मन्त्रों से भिन्न प्रयोजन सिद्ध होते हैं। यहाँ कुछ प्रभावशाली वैदिक सूक्तों की साधनाओं का विवरण दिया जा रहा है। इनमें सिद्ध साधकों की अनुभूतियों का मिश्रण है। आशा है पाठक इनसे लाभ उठाने का प्रयत्न करेंगे।

पुरुष सूक्त

पुरुष सूक्त के मन्त्रों में ईश्वर के विराट् रूप का दिग्दर्शन कराया गया है। यह ईश्वर दर्शन की भूमिका सम्पादित करते हैं। इसकी ध्वनि इसके विशिष्ट मन्त्रों के अर्थों में ही सन्निहित है—

सहस्रों शिर, सहस्रों नेत्र वाले, और सहस्रों चरण वाले यह परम पुरुष पञ्चभूतों को व्याप्त करते हुए, दश अंगुल के बराबर प्रदेश को अतिक्रमण कर स्थित हुए हैं ॥१॥

यह वर्तमान विश्व, बीता हुआ विश्व और आगे होने वाला विश्व यह सब परम पुरुष रूप ही है और जो अन्न रूप फल के कारण विश्व रूप को प्राप्त होता है, उस अमृतत्व का स्वामी परम पुरुष ईश्वर ही है ॥२॥

यह त्रिकालात्मक विश्व इस पुरुष की महिमा ही है और वह पुरुष स्वयं तो इस विश्व से अत्यधिक है। सभी प्राणि समूह इस पुरुष

के चतुर्थ भाग हैं। इस पुरुष का त्रिपात् रूप अविनाशी और अपने ही प्रकाशात्मक स्वरूप में स्थित है ।।३।।

संसार के स्पर्श से हीन यह तीन पद वाला परम पुरुष उच्च स्थान में स्थित हुआ है। इसका एक पाद इस संसार में सृष्टि संहार द्वारा बारम्बार आगमन करता है और विविध रूप होकर स्थावर जगम प्राणियों को देखता हुआ व्याप्त करता है ।।४।।

उस आदि पुरुष से विराट् की उत्पत्ति हुई। विराट् का अधिकरण करके एक ही पुरुष हुआ। वह विराट् पुरुष होकर विभिन्न रूप वाला हुआ और उसने पृथिवी की रचना कर सप्तधातु वाले देहों की रचना की ।। ५ ।।

उसी पुरुष के मन से चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य, श्रोत से वायु और प्राण तथा मुख से अग्नि प्रकट हुई ।।१२।। नाभि से अन्तरिक्ष, शिर से स्वर्ग, पावों से पृथिवी, श्रोत्र से सब दिशायें उत्पन्न हुयीं। इसी प्रकार लोकों की कल्पना की गई ।।१३।।

एक कवि ने इन भावों को सुन्दर शब्दों में गूंथा है—

विश्वस म्रट् ! हे महाविराट् ! सब ओर तुम्हारी हैं आँखें।
सब ओर दृष्टिगत गात होती, सब ओर तुम्हारी हैं शाखें ।।
सब ओर तुम्हारे कान लगे हैं, अनन्त-वाहु हे अनन्त-पाद।
सब ओर तम्हारा सौम्य रूप, मधुर भाव से हमको झांके ।।
ऊपर, नीचे, बायें, दायें, सब ओर भासते हो छविधाम।

ईश्वर के तत्व ज्ञान को समझने के लिए आवश्यक है कि उसको सृष्टि के अणु-अणु में व्यापक माना व अनुभव किया जाए और प्राणी मात्र से व्यवहार करते हुए इस अनुभूति को स्थिर रखा जाए। सभी साधनाओं व उपासनाओं की परिणित इसी व्यवहारिक दर्शन में है। शास्त्रों ने भी ईश्वर प्राप्ति का यही साधन बताया है।

वासुदेव शब्द की आध्यात्मिक व्युत्पत्ति करते हुए महाभारत (शान्ति० ३३१।४०) में कहा गया है—'सर्वभूताधिवाश्च वासुदेवस्ततो ह्यम्।' मैं प्राणीमात्र में वास करता हूँ,इसी से मुझको वासुदेव कहते हैं। जब साधक को यह व्यवहारिक अनुभव हो जाता है कि 'जो कुछ है सब वासुदेव ही है'। भगवान ने गीता (७।१६) में आश्वासन दिया है कि ऐसा ज्ञानवान मुझे पा लेता है। ऐसा साधक अद्वैत कृष्ण का ही अनुभव करने लगता है। उसे सर्वत्र अद्वैत ही भासित होता है, द्वैत नहीं। इस ज्ञान को गीता में सात्विक ज्ञान की संज्ञा दी है। जिस ज्ञान से यह विदित होता है कि विभिन्न अर्थात् भिन्न-भिन्न सब प्राणियों में एक ही अविभक्त और अव्यय भाव अथवा तत्व है, उसे सात्विक ज्ञान ही समझना चाहिए।' (१८।२०)

इस भावना के लाभ का वर्णन करते हुए गीता (५।१६) में कहा है "जिसके मन में सर्वभूतान्तर्गत ब्रह्मात्म्यैक्य रूपी साम्य प्रतिबिम्बत हो गया है, वह यहीं-का-यहीं जन्म-मरण की गति प्राप्त कर लेता है।" गीता १३।३० में भी कहा है—'जिसकी ज्ञान-दृष्टि में समस्त प्राणियों की भिन्नता का नाश हो चुका है और जिसे वे सब एकस्थ अर्थात् परमेश्वरस्वरूप दीखने लगते हैं, वह ब्रह्म में मिल जाता है।" तैत्तरीय (२।७) में कहा है "जिसके मन में अपनी आत्मा और मन के बीच कुछ भी परदा या द्वैतभाव शेष नहीं रह जाता, वह ब्रह्म रूप ही है।"

उपनिषद् के ऋषि ने अपनी अनुभूति का वर्णन इस प्रकार किया है—"ब्रह्म अमृतरूप है, वही सामने और वही पीछे है। दायीं और बायीं ओर भी नही है। नीचे और ऊपर की ओर भी वही विस्तृत है। यह सम्पूर्ण विश्व ही महान् ब्रह्म है।' (मुण्डकोपनिषद् २।२।११)

छान्दोग्योपनिषद् (६।२५।२) में इन्हीं भावनाओं को दूसरे शब्दों में व्यक्त किया गया है-'आत्मा ही ऊपर है, आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही पश्चिम की ओर है, आत्मा ही पूर्व की ओर है, आत्मा ही उत्तर में है, आत्मा ही दक्षिण में है, आत्मा ही सब कुछ है।

दूसरे ऋषियों का यह हजारों वर्ष पूर्व का अकाट्य निर्णय था कि सृष्टि में दृष्टिगोचर होने वाली अनेकता सत्य नहीं है। उनके मूल में सर्वत्र एक ही अमृत, अव्यक्त और नित्य तत्व विद्यमान है।' (कठोपनिषद् ११।२०, बृहदारण्यक ४।११)। इसी भाव से विष्णु को पहचाना जाता है। जो इस रूप को नहीं जानता, वह भटकता रहता है।

महोपनिषद् में ऋषि ऋभु ने अपने पुत्र निदाघ को उपदेश देते हुये कहा—'जहाँ मैं नहीं हूँ, ऐसा कोई स्थान नहीं है। यह सब असम्भव है। यह सब निश्चयपूर्वक ब्रह्म ही है। यह सब आत्मा ही व्याप्त हो रहा है। तुम इस भ्रान्ति को त्याग दो कि मैं और हूँ वह कोई और है।'

नारदपरिव्राजकोपनिषद् में नारद के पूछने पर ब्रह्माजी कहते हैं- 'अपना स्वरूप ही ब्रह्म है, ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है। ब्रह्म और अपने में जो अभिन्नता जानते हैं, वे पशु-बुद्धि हैं।

भागवत (११।२।४५ और ३।२४।४६) में परम भागवत उसे माना गया है जो भगवान् और अपने में अभिन्नता का अनुभव नहीं करता है, भगवान और अपने में लकता की अनुभूति करता है और समझता है कि सब प्राणी भगवान और मुझ में भी हैं।

समर्थ गुरु रामदास ने दासबोध (२०।२।३) में स्वानुभवरूप से कहा है—-जिधर देखता हूँ उधर ही वह अपार दिखाई देता है। वह एक ही प्रकार का है और स्वतन्त्र है, उसमें द्वैत नहीं है।' एक कवि ने भी ऐसा ही कहा है—

"जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।"

सन्त कवि तुकाराम के अभङ्गों में भी इस भाव की ही अभि- व्यक्ति हुई है—

'गूँगे का गुड़ है भगवान, बाहर भीतर एक समान।
किसका ध्यान करूँ सविवेक ? जल-तरङ्ग हैं हम एक ॥'

ईसा ने भी कहा है कि—मैं और मेरे पिता एक हैं। दोनों में कोई अन्तर नहीं है।

शङ्कराचार्य का भी मत है कि बाह्य दृष्टि से पदार्थों को दिखाई देने वाली अनेकता सत्य नहीं है। उनमें तो शुद्ध और नित्य ब्रह्म व्याप्त है। उसी की माया से इन्द्रियों की अभिन्नता का आभास होता है। आत्मा ही मूलतः ब्रह्म-रूप है। इस अनुभूति के अभाव में योग की प्राप्ति सम्भव नहीं है। इसी को उन्होंने अद्वैतवाद की संज्ञा दी।

तिलक ने अद्वैत ज्ञान की महत्ता को स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित किया है—'जिसने द्वैत भाव को छोड़कर आत्मस्वरूप को जान लिया है उसे चाहे प्रारम्भ कर्म-क्षय के लिए देहपात होने की राह देखनी पड़े तो भी उसे मोक्ष-प्राप्ति के लिए कहीं भी नहीं जाना पड़ता क्योंकि ब्रह्म-निर्वाण रूप मोक्ष तो उसके हाथ जोड़े खड़ा रहता है।'

इन भावों को मन में ओत-प्रोत करने से साधक एकता और अद्वैत की अनुभूति करता है। यह साधना की उच्चतम स्थिति है। पुरुष सूक्त का पाठ व हवन करते हुये उपरोक्त विचारों का मनन व चिंतन करना आवश्यक है। यही वास्तव में विराट रूप ईश्वर की उपासना है।

मन्त्र इस प्रकार है:—

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
सभूमिँ सर्वत स्पृत्वा त्यतिष्ठ द्दशाङ्गुलम् ॥१
पुरुष एवेद ँ सर्वं यदभूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२
एतावानस्य महिमातो ज्यायां श्चपूरुषः।
पादोस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३
त्रिपादूर्ध्व उदै त्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्राम त्साशनानशने अभि ॥४

ततो विराडजायत विराजो अधिपूरुषः ।
सजातो अत्यरिच्यत पश्चाद्‌भूमि मथोपुरः ।।५
तस्माद्यज्ञा त्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूं स्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्या श्च ये ।।६
तस्माद्यज्ञा त्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजु स्तस्मादजायत ।।७
तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मा त्तस्माज्जाता अजावयः ।।८
तं यज्ञम्बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषञ्जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषय श्च ये ।।६
यत्पुरुषं व्यदधु कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखङ्किमस्यासी त्किम्बाहू किमूरू पादाउच्येते।।१०
ब्राह्मणोस्य मुखमासी द्बाहू राजन्यः कृतः ।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याꣳशूद्रोअजायत ।।११
चन्द्रमा मनसो जात श्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ।।१२
नाभ्या आसी दन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमि र्दिशःश्रोत्रा त्तथालोकां२ अकल्पयन् ।।१३
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोस्यासीदाज्यङ्ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ।।१४
सप्तास्यासन्परिधय स्त्रिः सप्तसमिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञन्तन्वाना अबध्नं पुरुषं पशुम् ।।१५
यज्ञेन यज्ञ मयजन्त देवा स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ।।१६
अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानग्रे ।।१७

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेवं विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते ऽ यनाय ॥१८
प्रजापतिश्चरति गर्भे ऽ अन्तरजायमानो वहुधा वि जायते ।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि
विश्वा ॥१६

यो देवेभ्य ऽ आतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥२०
रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा ऽ अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्र ह्मणो विद्यात्तस्य देवा ऽ असन्वशे ॥२१
श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे
पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।
इष्णन्निषाणामुं म ऽ इषाण सर्वलोकं म ऽ इषाण ॥२२
(यजुर्वेद ३१।१-१६, ऋग्वेद १०।६०।१–१६, अथर्ववेद १६।
६।१–१६, सामवेद पूर्वा० ६-३-७।१–१६)

ब्रह्म सूक्त

जीवन के हर क्षेत्र में जो सत्ता ओत-प्रोत है, वह भौतिक संसार की हर वस्तु को प्रभावित करती है, समस्त गतियाँ और चमत्कार उसके कारण दृष्टिगोचर हो रहे हैं। बाह्य नेत्रों से हमें प्रकृति की ही प्रधानता सब ओर दिखाई देती है परन्तु वस्तुतः प्रकृति के मूल में भी वही सत्ता काम करती है। प्रकृति के अणु-अणु में वह ओत-प्रोत है। विश्व की प्रत्येक शक्ति, वस्तु में उसी तत्व का तेज प्रकाशित हो रहा है। इस मूल तत्व को ब्रह्म की संज्ञा दी गई है। यही सारे बाह्य विश्व का मूल रूप है। मुण्डकोपनिषद् के अनुसार—

"जिस प्रकार मकड़ी अपने भीतर से ही जाला उगलती है और फिर स्वयं ही निगल लेती है, जिस प्रकार पृथ्वी से वनस्पतियाँ उत्पन्न

होती हैं, जिस प्रकार जीवित शरीर से केश, रोम नख आदि उपजते हैं वैसे ही उस ब्रह्म से यह सारा संसार उत्पन्न होता है।"

अत: यह प्रकृति मकड़ी के जाले की तरह ब्रह्म से उत्पन्न होती है और उसी में लीन हो जाती है। इस तरह से ब्रह्म सर्व प्रधान व सर्वोपरि सत्ता सिद्ध होती है। हमारी उन्नति व विकास उसी सत्ता पर निर्भर करता है। यदि जीवन में सुख शान्ति बनाये रखते हुए उत्तरोत्तर गतिशील होना है तो ब्रह्म सत्ता से निरन्तर सम्पर्क स्थापित रहना चाहिए। ऋषियों ने अपनी हजारों वर्षों की साधना और खोज के परिणाम स्वरूप ब्रह्म से एकता प्राप्त करने के उपाय प्रस्तुत किये हैं, इन्हें ही ब्रह्मविद्या कहते हैं। यह विद्या उपनिषदों में हमें विकसित रूप में प्राप्त होती है।

ब्रह्म विद्या की जानकारी हर मानस के लिए आवश्यक है। इसकी आवश्यकता पर बल देते हुए मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है—

"ब्रह्मविद्या के आधार पर उपलब्ध ज्ञान से मनुष्य अपनी निज की वस्तुस्थिति को समझ सकता है। आत्मज्ञान उपलब्ध कर सकता है। ब्रह्म की महानता और उसके सान्निध्य की उपयोगिता भी उसकी समझ में आती है। प्रिय-अप्रिय परिस्थितियों में जो रागद्वेष, हर्ष, शोक भरे आवेश उठते रहते हैं, उनकी उत्तेजनात्मक अशुभ प्रतिक्रियाओं से भी बचे रहना ब्रह्म-ज्ञान के आधार पर ही सम्भव है। बाह्य जीवन में सुख और अन्त:करण में शान्ति का समुचित मात्रा में प्राप्त कर सकना भी ब्रह्म सम्बन्ध की प्रगाढ़ता पर ही निर्भर है। सुख और शान्ति की निर्झरिणी का मूल उद्गम आत्मा है और उस आत्मा का सर्वाङ्गीण ज्ञान ब्रह्मविद्या के द्वारा ही उपलब्ध होता है। भव-बन्धनों से, शोक सन्तापों से छुटकारे का मार्ग ब्रह्मविद्या के अतिरिक्त और कोई नहीं है। उपनिषद् इसी मार्ग की प्रशंसा करते हैं। ब्रह्मज्ञान ही उनका प्रधान विषय है।

:"स ब्रह्म विद्या सर्व विद्या प्रतिष्ठाम् ।"

'ब्रह्म क्या है' की जिज्ञासा करने पर शाण्डिल उपनिषद् में ऋषि ने शिष्य को समझाते हुए कहा है:—

"हे शाण्डिल्य ! ब्रह्म सत्य, विज्ञान और अनन्त स्वरूप है, जिसमें यह सब ओत-प्रोत है। जिसे जानने से यह सब जान लिया जाता है। वह शरीर रहित, ग्रहण न कर सकने योग्य और बताये न जा सकने योग्य है। जिसको पाये बिना वाणी मन के साथ पीछे लौट जाती है, जो केवल ज्ञान से प्राप्त किया जा सकता है, जो एक और अद्वितीय है, आकाश के समान सर्वव्यापी, अत्यन्त सूक्ष्म, निरञ्जन, निष्क्रिय, मात्र सत्य-स्वरूप, चैतन्य और आनन्द रूप, एकरस वाला, मंगलमय अति शांत और अमर है। वह परब्रह्म है। वही तू है। ज्ञान के द्वारा तू उसे जान। जो एक ही देव आत्मा की शक्ति रूप में मुख्य, सर्वत्र, महेश्वर, सब प्राणियों का अन्तरात्मा, सर्व प्राणियों में निवासकर्ता, सर्व भूतों में गुप्त, भूतों का मूल उत्पत्ति-स्थान, केवल योग द्वारा जान सकने योग्य है, जो विश्व की सृष्टि करता है, विश्व की रक्षा करता है, विश्व का संहार करता है, वही आत्मा है। इस आत्मा का विशेष ज्ञान प्राप्त करके ही तू शोक का अन्त कर सकेगा।"

ब्रह्मविद्या के एक उच्च साधक ने ब्रह्मभावना से ओत प्रोत होकर 'एकाक्षरोपनिषद्' में इन्हीं भावों का दिग्दर्शन कराया है और ब्रह्म के रूप का अधिक स्पष्टीकरण भी हो गया है—

"तू ही विश्व के कण-कण में जीवन शक्ति के रूप में व्याप्त विराट् रूप ग्रहण कर भुवन का रक्षक है। तू ही वह्निरूप तथा यज्ञमय है। तू ही एकमात्र व्यापक तथा पुराण पुरुष है। तू ही प्राण रूप धाता, विश्व-कर्त्ता, विधाता, हर्ता है। पवन, गरुड़, विष्णु, बराह, रात-दिन, भविष्य वर्तमान तू ही है, वसु, आकाश, अग्नि और रुद्र रूप में सर्वव्यापी है। अन्तर्यामी रूप में तू ही सर्वत्र ओत प्रोत है। विविध प्रकार की

गतियों और विश्रान्तियों का तथा वेद का स्वरूप तू ही है। हे सहस्र-बाहु, ज्योति स्वरूप ! वेदवेत्ता, ब्रह्मज्ञानी लोग साम गान तथा यजुर्वेदी यज्ञ-प्रार्थनाओं द्वारा तुझे ही गाया करते हैं। तेरी ही प्रार्थना करते हैं। स्त्री-पुरुष, बालक-बालिका, पृथ्वी, धाता, वरुण, अर्यमा आदि जो कुछ दृष्टिगोचर होता है, तू ही है। तेरा ही स्वरूप है।

मानव के उच्चतम विकास के लिये ब्रह्म ज्ञान की अतीव आवश्यकता को अनुभव करते हुए ऋषियों ने उपनिषदों में प्रवचनों के रूप में स्थान-स्थान पर प्रेरणा दी है कि तू ब्रह्म है, अभिन्न है। अपने वास्तविक स्वरूप को समझ और ब्रह्म भावना में निरन्तर निमग्न रह। तेजोबिन्दु उपनिषद् के ऋषि ने ब्रह्म ज्ञान की शिक्षा देते हुए शिष्य से कहा—

"तू सत्य है, सिद्ध है सनातन है, मुक्त है, संकल्प रहित है, आनन्द है, ज्ञानी है, द्रष्टा है, निर्विकार है, निरोगी है, अपने स्वरूप को ही तू देख रहा है, अपने आनन्द में ही तू डूब रहा है, और अन्त में तू स्वयं ही शेष रह जायगा।"

साधक जब ब्रह्म ज्ञान की उपलब्धि के लिए प्रेरित होता है तो निम्न भावना का निरन्तर मनन, चिंतना करता है:—

"मैं अच्युत हूँ, अचिन्त्य हूँ, अजन्मा हूँ, काया से रहित हूँ, अति सूक्ष्म हूँ, अविकारी हूँ, आनन्द अमृत रूप हूँ, उत्तम पुरुष हूँ, उत्कृष्ट हूँ, अन्धकार से परे हूँ, दिव्यदेव स्वरूप हूँ, बुद्ध हूँ, महेश्वर हूँ, विमुक्त हूँ, वैश्वानर हूँ, सब प्राणी मुझ में ही निवास करते हैं।

(ब्रह्मविद्या उपनिषद्)

"मैं केवल परब्रह्म स्वरूप हूँ, परम आनन्द स्वरूप हूँ, केवल ज्ञान रूप हूँ, केवल, सत्य रूप हूँ, सदा शुद्ध स्वरूप हूँ। केवल प्रिय स्वरूप हूँ। इच्छाओं से रहित हूँ, निर्दोष हूँ, ज्योति स्वरूप हूँ, चिन्ता रहित हूँ, स्वयं परमगति रूप हूँ। सदा तृप्त हूँ। मुक्त हूँ, मैं क्या नहीं हूँ ? मैं

स्वयं स्वयं को ही खाता हूँ, स्वयं स्वयं के साथ ही खेलता हूँ, स्वयं ही अपना प्रकाश हूँ। मैं मन नहीं हूँ, बुद्धि नहीं हूँ, देह नहीं हूँ, कामना नहीं हूँ, मेरा कोई सजातीय नहीं, कोई विजातीय नहीं, संसार में जो कुछ उत्पन्न हुआ है, झूँठा है, केवल मैं ही सत्य हूँ।

(तेजोविन्दु उपनिषद्)

ब्रह्म ज्ञान के शुभ परिणामों की चर्चा करते हुए ऋषियों ने अपने अनुभव सिद्ध वाक्यों में उन्हें इस प्रकार निबद्ध किया है -

"जो उस निर्बीज तत्व ब्रह्म को जानता है, वह निर्बीज हो जाता है। वह जन्म नहीं लेता, मरता भी नहीं। मोह नहीं पाता, भेदा नहीं जाता, जलता नहीं, छेदा नहीं जाता, काँपता नहीं और न कुपित होता है। कमल की तरह निर्लेप रहता है। वह सत्य के साथ रहना चाहता है। आत्मा ही सत्य है।

(सुवाल उपनिषद्)

"सब कुछ ब्रह्म है, ऐसा जान लेने पर इन्द्रियों के ऊपर स्वयं-मेव सत्र संयम प्राप्त हो जाता है। इसका बारम्बार अभ्यास करना चाहिए। नियम पूर्वक ऐसा एक ही प्रकार का विचार करना परम आनन्द रूप है।

"मैं तीनों देहों से भिन्न हूँ—शुद्ध चैतन्य हूँ, जिसे ऐसा निश्चय हो गया हो और जो परमानन्द से पूर्ण हो गया हो, वह जीवनमुक्त कहलाता है। जिसमें कुछ भी अहम्-भाव शेष नहीं है, जो आत्मा रूप ही शेष रहा हो, आसक्ति से छूट गया हो, नित्य आनन्द रूप होकर प्रसन्न रहता हो, चिन्तारहित हो, हमारा कुछ है ही नहीं ऐसा मानता हो, वह जीवनमुक्त कहलाता है। मुझे सन्ताप नहीं, लाभ नहीं, मेरे लिये कोई मुख्य नहीं, कोई गौण नहीं, मुझे कोई भ्रान्ति नहीं, कोई गुह्य नही, कोई कुल नहीं, मेरा तू नहीं है और मैं तेरा नहीं हूँ, मैं ब्रह्म

हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, मैं ब्रह्म हूँ । मैं चैतन्य हूँ, मैं चैतन्य हूँ, जिसे ऐसा निश्चय होगया है वह जीवन-मुक्त कहलाता है ।

(तेजोविन्दु उपनिषद्)

"मैं ब्रह्म हूँ" यह मंत्र दृश्य पापों का नाश करता है। देह के दोषों का नाश करता है । मृत्यु पाश का नाश करता है । द्वैत के दुःख का नाश करता है, भेद बुद्धि का नाश करता है, चिंता के दुःखों का नाश करता है, सब व्याधियों का नाश करता है, सब शोकों का नाश करता है, काम, क्रोध, चञ्चलता, कामना और अज्ञानता का नाश करता है । "मैं ब्रह्म हूँ" यही मन्त्र ज्ञान और आनन्द प्रदान करता हुआ संसार से छुड़ा देता है, इसमें सन्देह नहीं ।

(ब्रह्मविद्या उपनिषद्)

इन्हीं विचारों और भावनाओं की ध्वनि प्रस्तुत ब्रह्म सूक्त से निकलती है । इस सूक्त का प्रत्येक शब्द विचारणीय व अनुकरणीय है । उपरोक्त भावों से ओत-प्रोत रहकर इसकी साधना करनी चाहिये । पाठ और हवन दोनों इसकी साधना में सम्मिलित हैं । इससे ब्रह्मज्ञान व ब्रह्म परायणता की प्राप्ति होती है, ब्रह्मलोक गति होती है और ब्रह्म तत्व का साक्षात्कार होता है । अतः यह जीव की सर्वोपरि साधना है ।

आब्रह्मन ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतांभा राष्ट्रे राजन्युः शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्धी धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धियोर्षाजिष्णु रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥१॥

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचोवेनऽआवः । सबुध्न्याऽउपमाऽअस्य विष्ठाः सतश्च योनियमसतश्चविवः ॥२

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीबमाक्रयायाऽअयोगूं कामाय पुँश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ॥३

ब्रह्माणि मेमतयः शँ सुतासः शुष्मऽइयर्ति प्रभृतो मेऽअद्रिः। आशासते प्रति हर्य्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्तानोऽअच्छ ॥४

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः। अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥५

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व। विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेभ विदथे सुवीराः ॥६

ब्रह्मादेवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम। श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥७

ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं गीर्भिः सखायमृग्मितम्। गां न दोहसे हुवे ॥८

ब्रह्म गामश्वं जनयन्त ओषधीवर्नस्पतीन्पृथिवीं पर्वतां अपः। सूर्यं दिविरोहयन्तः सुदानव आर्या व्रता आधि क्षमि ॥९

ब्रह्म क्षत्रं पवते तेजऽइन्द्रियँ सुरया सोमः सुतऽआसुतो मदाय शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि ॥१०

रुद्र सूक्त

तीन भेद—

यजुर्वेद (१४।२०) में रुद्र को देवता कहा गया है। देवता देने वाले को कहते हैं। रुद्र हर तरह का कल्याण करते हैं, भौतिक रूप से अभीष्ट कामनाओं की पूर्ति करते हैं, बौद्धिक रूप से ज्ञान का विकास करते हैं, आध्यात्मिक रूप से मोक्ष प्रदान करते हैं।

शतपथ १४।५।९ में याज्ञवल्क्य और शाकल्य के संवाद में मनुष्य के १२ प्राण और ग्यारहवें आत्मा को आध्यात्मिक रुद्र कहा गया है। दस प्राण यह हैं–दो नेत्र, दो नाक, दो कान, एक मुख, मल-मूत्र विसर्जन के दो मार्ग और दसवीं नाभि।

आधिभौतिक रुद्र हैं—पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत, पवमान, पावक और शुचि।

आधिदैविक रुद्रों का निवास तारामण्डलों में रहता है। १. अज एकपात् २. अहिर्बुध्न्य, ३. विरूपाक्ष, ४. त्वष्टा अयोनिज वा गर्भ ५. वीरभद्र, भैरव, कपर्दी, रैवत, ६. पिंगल, स्थाणु, बकुलीश, हर ७. सेनानी, हरप, गिरीश ८. सुरेश्वर, विश्वेश्वर, भुवनेश्वर, त्र्यम्बक ९. कपाली, भूतेश, सावित्र १०. शम्भु. सन्ध्य. जयन्त. वृषाकपि ११. लुब्धक. शर्व. पिनाकी. मृगव्याध।

ऋग्वेद में रुद्र की निरुक्ति इस प्रकार की गई है—रुद्रो रौतीति सतो रोरुयमाणी द्रवतीति वा रोदयतेर्वा।' जो रोए, रुलाए, रौरव शब्द करे अथवा मेघों को पिघलाकर उनसे वृष्टि कराए, उसे रुद्र कहते हैं।"

रुद्र का अर्थ महान् और प्रशस्त भी किया जाता है। उदाहरण के लिए रुद्राध्याय (भाग ४०) में—

"नमः उग्राय च भीमाय च।

'उग्र' का अर्थ श्रेष्ठ होता है। रुद्र भाष्य में इसकी पुष्टि की गई है।

उग्र। श्रेष्ठाः, उत्पूर्वाद गमेरुद्गच्छतीत्यस्मिन्नर्थे
'ऋज्रेन्द्राग्र०' इति उणादिसूत्रेण 'रन' प्रत्यतः। अतएव
'उग्रोऽस्युग्रोऽहं सजातेषु भूयासम्' इति मन्त्र
ज्ञाति श्रेष्ठ्यप्रशसा विषये स्वस्मिन् 'उग्र' शब्दः प्रयुक्तः।
सर्वश्रेष्ठत्वरूपं विश्वाधिकत्वं सिद्धयति
भीमो भयंकरः 'भीषाऽस्माद्वातः पवते' इति श्रुतेः।

तथा च महानुभावानिन्द्राग्न्यादीन् प्रत्यपि भयकरत्वेन तन्नियन्तुर्भगवतः सर्वोत्तमत्वमिति भावः इयादि ।

अर्थात्--"उग्र का अर्थ श्रेष्ठ है । गम् धातु से उद्गच्छति इस अर्थ में 'ऋज्रेन्द्राय' इस उणादि सूत्र से 'रन' प्रत्यय होता है । इसीलिए 'उग्रोऽस्युग्रोहं सजातेषु भूया सम्' इस मन्त्र में शान्ति की श्रेष्ठता की प्रशंसा के विषय में 'उग्र' शब्द का प्रयोग किया गया है । इससे सब में श्रेष्ठता की स्वरूपता और विश्व की अधिकता अर्थात् विश्व में सबसे अधिक होना सिद्ध होता है ।

अग्नि रूप—

अग्निर्वै द्रः । (शतपथ ब्राह्मणः ५।३।१।१०।६।१।३।१०)

"अग्नि रुद्र है ।"

अतौष सर्वोऽग्निः संस्कृतः स एषोऽया रुद्रो देवता

(शतपथ ब्रा० ६।१।१।१)

"यहाँ पर यह सब अग्नि संस्कार किया हुआ है, वह यहाँ पर रुद्र है ।"

योऽग्नौ रुद्रः (अथर्व० शिर उपनिषद्)

"जो अग्नि में है नह रुद्र हैं ।"

सर्व एतान्यष्टौ अग्निरूपाणि (शतपथ १६।१।३।१८)

ये सब आठ अग्नि रूप है ।

शतपथ १०।१।१ में रुद्र को 'शर्वाग्नि' नाम दिया गया है और उनका हवन 'शतरुद्रिय' और 'सान्ति रुद्रिय' दोनों विधानों से निर्देशित किया गया है । इसी स्थान पर प्रखर अग्नि के 'गिरित्र', 'गिरिष्ट', 'गिदिशं', 'गिरिशान्त' नाम दिये गये हैं ।

शतपथ ३ । १ । ३ में अग्निर्वै रुद्रः कहकर उपरोक्त तथ्यों की पुष्टि की गई है । ६ । १ । ६,१० व १ । ७ । ३-८ से भी यही प्रमाणित होता है ।

'अग्निरपि रुद्र उच्यते' (नि० १०।७२)।

"अग्नि को भी रुद्र कहा गया है।"

अग्नि रित्युच्यते रौद्री घोरा मा तैजसी तनुः

(शिव पुराण)

'अग्नि तत्व को रुद्र का भयानक तेजस शरीर कहा जाता है।'

ऋग्वेद में रुद्र के अग्नि सूचक अनेकों मंत्र मिलते हैं—

अग्नि सुम्नाय दधिरे पुरोजना वागश्रवसमिग्ग वृच्यवर्तिहः।
यतस्त्रुचः सुभ्र विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञाना साधदिष्टिमपसाम् ॥

(ऋग्वेद ३।२।५)

"सुख की कामना वाले ऋत्विग्गण कुश को बिछाते और सुक्र उठाकर अन्न देने वाले, तेजस्वी, हितकारी, दुःखगाता तथा यज्ञा-साधक अग्नि का स्तवन करते हैं।"

अग्नि को रौद्र रूप वाला भी कहा गया है—

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारे सत्यजं रोदस्त्नोः।
अग्नि पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवस कृणुध्वमः ॥

(ऋग्वेद ४।३।१)

"हे पुरुषो! देवताओं के आख्यान करने वाले, यज्ञ के स्वामी, आकाश पृथ्वी को अन्न से पूर्ण करने वाले, सुवर्ण के समान आभा वाले तथा शत्रुओं को रुलाने में समर्थ रौद्र रूप वाले अग्नि देव को, मृत्यु के पूर्व ही रक्षा प्राप्त करने के निमित्त पूजा करो।"

ऋग्वेद में अग्नि और रुद्र के तादात्म्य के प्रमाण भी मिलते हैं:—

त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे

(२।१।६)।

"हे अग्नि देव ! तुम उग्रकर्मा रुद्र एवं मरुद्गण की शक्ति स्वरूप हो ।"

ऋग्वेद ३।२।५ व ४।३।१ में भी यही भाव व्यक्त किये हैं ।

महाभारत वनपर्व अ. २२७ में कहा है :—

रुद्रमग्निं द्विजाः प्राहू रुद्रसूनुस्ततस्तु स ।।१६।।

"हे द्विजो ! पहिले अग्नि को रुद्र कहते थे । वह रुद्र के पुत्र मरुत से है ।"

यजुर्वेद का सारा रुद्राध्याय एक तरह से अग्नि परक ही है और उसके आधार पर सहज रूप से कहा जा सकता है कि अग्नि ही रुद्र है और उसके दो रूप हैं—उग्र और सौम्य ।

तैत्तिरीय संहिता (कृष्ण यजुर्वेद) १।५।१, २।६।६, ३।५।५ में अग्नि और रुद्र का तादात्म्य स्थापित किया गया है ।

अथर्ववेद ७।८७।१ में स्पष्ट रूप से कहा है—

यां अग्नी रुद्रो यो अपस्वतये ओषधीर्वोरुध आविवेश ।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ।।

'जो रुद्रदेव दृष्टव्य रूप से अग्नि में, वरुण रूप से जल में और सोम रूप से लताओं में प्रविष्ट हैं, वे सब प्राणियों को रचते हैं । उन रुद्रात्मक अग्नि और अग्न्यादि गुण वाले रुद्र को हम नमस्कार करते हैं ।'

म० म० गिरधर चतुर्वेदी ने इस सम्बन्ध में लिखा है—'ऐतरेय ब्राह्मण में अग्नि को ही रुद्र कहा है । 'अग्निर्वारुद्रः तस्य द्वै तन्वो घोरा-तमा च' अग्नि मिश्रित वायु को रुद्र मान लेने पर दोनों बातों की उपपत्ति हो जाती है। अर्थात् रुद्र वायु रूप भी है और अग्नि रूप भी । ये अग्नि और वायु भौतिक अग्नि वायु नहीं, प्राणरूप हैं । इनमे परस्पर जन्यजनक भाव है, इसलिए ब्राह्मणों में कहीं अग्नि को वायु-जनक बताया है और कहीं अग्नि को वायु उत्पादक । भौतिक अग्नि दोनों प्राणों के सम्मिश्रण से ही उत्पन्न होती है । इसलिए रुद्र को 'कृशानु-

रेता' कहा जाता है, अर्थात् कृशानु—अग्नि रुद्र का रेत अथवा वीर्य होता है।

यह रुद्र प्राण हमारी त्रिलोकी में व्याप्त है। यह शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के फल पैदा करता है। इसलिए उक्त ब्राह्मण श्रुति ने कहा है कि रुद्रनाथ अग्नि के दोनों रूप हैं—घोर और शिव।

रुद्र के तीन नेत्र माने गये हैं। दो तो हैं—सूर्य और चन्द्रमा और तीसरा नेत्र अग्नि है, जो सम्पूर्ण संसार को भस्मीभूत करने की क्षमता रखता है।

विद्युत रूप—

रुद्र को विद्युत की संज्ञा दी गई है। इसलिए ऋग्वेद (७। ४६।७) में रुद्र से प्रार्थना की गई है कि जो अन्तरिक्षस्थ विद्युत पृथ्वी पर घूमती है, हमें नष्ट न करें।" यजुर्वेद (१६।६४) में उन्हें अन्तरिक्ष में निवास करने वाला बताया गया है। (१६।५५) में उन्हें अन्तरिक्ष के आश्रय में स्थित, १६।५६ में स्वर्ग में आश्रित और १६।५७ में अधोलोक में स्थित घोषित किया गया है।

वृहद्देवता (२।६५) में कहा है—

अरोददिन्तरिक्षे यद्विद्युद्वृष्टिं ददन्नृणाम्।
चतुर्भिऋषिभिस्तेन रुद्रएत्याभि संस्तुतः॥

'जिसके लिए अन्तरिक्ष में यह विद्युत देवता रुदन करता है और प्राणियों के कल्याण के लिए वर्षा भी करता है, अतः इसे रुद्र कहते हैं।'

ग्यारह आधिदैविक रुद्रों का तारामण्डलों में निवास माना गया है। नाम इस प्रकार हैं—१. अज एकपात् २. अहिबुध्न्य ३. विरुपाक्ष ४. त्वष्टा, अमोनिज वा गर्भ ५. रैवत, भैरव, कपर्दी या वीरभद्र ६. हर, नकुलीश, पिंगल वा स्थाणु ७. वहुरूप, सेनानी, गिरीश ८. त्र्यम्बक, भुवनेश्वर, विश्वेश्वर, सुरेश्वर ९. सावित्र, भूतेश, कृपाली १०.

जयन्त, बृषाक, विशम्भु, सन्ध्य १२. पिनाकी, मृगव्याध, लुब्धक तथा शर्व ।

विद्युत रूप होने से ही कहा गया है—

नमो विद्युत्वाय । (रुद्राध्याय मं० ३६)

"विद्युत के लिए नमस्कार है ।"

नमस्ते अस्तु विद्युते । (यजु० ३६।२१)

"आप विद्युत के लिए नमस्कार है ।"

अथर्वेद ११।२।२६ में स्पष्ट रूप से कहा है—

मा नः सं स्त्रा दिव्येनाग्निना ।

अन्यत्रास्मद् विद्युतं पातयैताम् ।।

"हे रुद्र ! आकाश विद्युत रूप अग्नि से भी हमको मत मिलाओ । इस विद्युत रूप अस्त्र को जङ्गली पशु आदि पर हमसे दूर रखो ।"

प्राणदाता—

रुतिं शब्दं राति ददातीति प्राणोरुद्रः ।

रुति का अर्थ शब्द है उसको जो देता है, वह प्राण रुद्र है ।"

प्राणदाता भगवान् की संज्ञा रुद्र है ।

प्रश्नोपनिषद (२।६) में रुद्र को प्राण रूप कहा गया है—

इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता ।

त्वमन्तरिक्ष चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः ।।

"हे प्राण ! तू अपने तेज से सम्पन्न सभी ज्योतियों का अधीश्वर सूर्य है । तू ही अन्तरिक्ष में विचरण करता है, तू ही इन्द्र और रुद्र रूप से सबकी रक्षा करने वाला है ।"

प्रणव रूपा—

'शम्भो प्रणव वाच्यस्य' (लिंग पुराण)

'प्रणव वाचक है शंकर वाच्य है ।'

रुव्याप्रणवरूपया स्वात्मानं प्रापयतीति रुद्रः ।

प्रणव के जप से जीव को जो अपने निकट पहुँचाता है, वह रुद्र है ।'

रुत्या वाग्रूपया वाच्यं प्रापयतीति रुद्रः ।

'रुद्र वह है जो वाणी से, प्रणव जप से प्राप्त होता है । तभी संसार सागर से पार लगाने वाले प्रणव रूप रुद्र को नमस्कार किया गया है—

तारयति संसारमिति तारः । तारः प्रणवः तद्रूपाय
नमः । संसारसागरादुत्तारकं ब्रह्म । (शां० भाष्य)

"संसार से जो तारता है वह तार है । तार प्रणव है, उस प्रणव के रूप वाले के लिए नमस्कार है । संसार रूपी सागर से तारने वाला ब्रह्म है ।"

स ॐ कारस्तार इति प्रस्तुत्य स एको रुद्रः स ईशानः ।
(अथर्वशिर उपनिषद्)

"वह ओङ्कार तार है—यह प्रस्तुति करके वह रुद्र एक ही है । वह ईशान है ।"

ज्ञानदाता :

ग्रासमैन ने और पिशल साहब ने रुद्र का अर्थ प्रकाश किया है । अथर्व शिखोपनिषद् में इसकी पुष्टि होती है । यथा—

सर्वेभ्योऽन्तः स्थानेभ्यो ध्येयः प्रदीपवत्प्रकाशयतीति
प्रकाशः

'रुद्र प्रकाश स्वरूप है । सबके हृदय में ध्यान करने योग्य है ।'

मार्तण्डकोटिप्रभममीश्चरं हरम ।

'शङ्कर कोटि सूर्यों की तरह तेज स्वरूप है ।'

रुक तेजः वर्णव्यावृत्या रुद्रस्तेजस्वोति । तेजस्वी रुद्रः

"रुद्र का अर्थ तेज है, वर्ण की व्यावृत्ति से रुद्र तेजस्वी होते हैं, तेजस्वी रुद्र है।"

असौ यस्ताम्रो अरुण उत वभ्रु: सुमङ्गलः।

(रुद्रा० मं० ६)

"वह जो ताम्र वर्ण है—अरुण है अथवा वभ्रु है, वह सुन्दर मङ्गल करने वाला है।"

यहाँ सूर्य रूप में रुद्र की स्तुति है। द्वादश आदित्यों की तरह द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग की पूजा का कारण भी रुद्र का यह प्रकाश और तेजस्वी स्वरूप है।

'रु गतौ'—ये गत्यर्थास्ते ज्ञानार्थाः। रवणं रुत—ज्ञानम्: भावे क्विपू, तुगागमः। रुत ज्ञान राति ददामीति रुद्रः। ज्ञानप्रदो मोह निवारकः परमेश्वरः।

'र' गति के अर्थ में धातु है। जो धातु के अर्थ वाले हैं, वे ज्ञान के अर्थ वाले भी हैं। रवणं रत् अर्थात् ज्ञान अर्थ होता है। भाव में यहाँ रत्ये क्विप् प्रत्यय किया गया है, फिर तुक् का आगम हो गया है। रत् अर्थात् ज्ञान को देता है, वह रुद्र है। परमेश्वर रुद्र ज्ञान के प्रदान करने वाले और मोह के निवारण करने वाले हैं।'

रुद्रत्या वेव रूपय धर्मादीन् बोधयति वारुद्रः।

'रुद्र वेद-ध्वनि द्वारा धर्म का बोध कराते हैं।'

ईशानः सर्वविधानम्। (अथर्व० नारायणोपनिषद्)

'रुद्र सब विद्याओं के नियामक हैं।

श्लोका वैदिकमन्त्रा यशो वा तत्र भवः।

रुद्र वैदिक मन्त्ररूपी यश के विषय हैं। इसलिए रुद्र भाष्य में ऐसे रुद्र को नमस्कार किया गया है, कल्याण रूप वेद ही जिनकी वाणी है।

शं सुखं गमयतीति शङ्गुः सुखरूपा गावो वाचो
वेदरूपा यस्येति । (रुद्र भाष्य)

सर्वशक्तिमान :

वेद में रुद्र का परमात्मा अर्थ भी लिया गया है । वेदों में विष्णु इन्द्र, रुद्र आदि जिन देवताओं का वर्णन आता है, स्वामी दयानन्द सरस्वती के मतानुसार वह सब परमात्मा के ही नाम हैं । पुराणों में इन्हें एक ही ईश्वर की विभिन्न शक्तियाँ कहा गया है । वेद ने भी वही कहा है, वह एक है, उसे अनेक नामों से पुकारा जाता है ।

ऋग्वेद (१।६४।२) में कहा है—"वे अनन्त रुद्र प्राणवान, निष्पाप, पवित्रकर्त्ता, सूर्य के समान तेजस्वी विकराल रूप वाले हैं। वे उसे एक रुद्र से प्रकट होते हैं ।" ऋग्वेद (३।६६।३) में भी यही भाव व्यक्त किये गये हैं--"एक रुद्र के अनेक रुद्र संज्ञक पुत्र हैं और जिनका निश्चय से भरण—पोषण, पालन करने की सब शक्ति, वह एक अद्वितीय रूप धारण करता है । इस महान् रुद्र को वह मूल प्रकृति रूपी बड़ी माता जनती है अथवा प्राप्त करती है और जीवों की उत्तम अवस्था होने के लिए वह विभिन्न रङ्ग रूप वाली माता निश्चय से जीवों को गर्भ में धारण करती है ।"

अथर्ववेद भी इस सिद्धान्त को पुष्टि करता है--

"वही धाता, विधर्ता, वायु, और उच्छ्रित आकाश है । वही महादेव है। वही अग्नि, वही सूर्य और वही महान यम है ।" (१३ । ४ । १ । ३४) । "वह स्थावर जङ्गम सब प्रजाओं के द्रष्टा साक्षी हैं । यह सब उसे ही प्राप्त होता है । वह एक वृत्त केवल एक है । सब देवता इन एक को ही धारण करते हैं ।"

(१३ । ४। १।१२,१३) ।

श्वेताश्वतरोपनिषद (३।२) में कहा है "जो अपनी शक्तियों से सब लोगों पर प्रभुत्व रखता है, वह रुद्र एक ही है, इसलिये अन्य का आश्रय ज्ञानियों ने नहीं लिया। वह सभी देहधारियों में स्थित होकर लोक रचना करता हुआ सबकी रक्षा करता है और सृष्टि के लयकाल में सबको अपने भीतर समेट लेता है।"

ऋग्वेद (६।४९।१०) में 'भुवनस्य पितर रुद्रं' सृष्टि का पिता रुद्र है, यह कहा गया है।

वह भुवनों के स्वामी भी कहे गए हैं यथा—'बहुत रूप वाले, दृढ़ शरीर वाले, विकराल, पीतवर्ण युक्त रुद्र उज्ज्वल तेज से प्रकाशित हैं। वे सब भुवनों के स्वामी और भरण पोषण करने वाले हैं।'

(ऋग्वेद २।३३।९)

सर्व व्यापक होने के कारण रुद्र को विश्व का रक्षक भी कहा गया है—

"हे धनुर्धारी पूजनीय रुद्र! तुम अनेक रूप वाले हो। तुम अर्चनीय हो। समस्त संसार में व्याप्त हुए रक्षा करते हो। तुम्हारे समान बली अन्य कोई नहीं है।" (ऋग्वेद २।३३।१०)

अथर्ववेद (१८।१।४०) में 'जनानां राजानं' रुद्रं कहकर रुद्र को सब लोगों का राजा कहा गया है।

गोप्ता चैव जगच्छास्ता शक्तः सर्वो महेश्वरः।

(कूर्म पुराण)

सर्व शक्तिमान महेश्वर जगत के पालनकर्ता और शासनकर्ता हैं'

सर्व व्यापक—

रुद्र को वेद में सर्वव्यापक माना है। अथर्ववेद (७।८।७।१) में कहा है 'जो रुद्र देव दृष्टव्य रूप से अग्नि में, वरुण रूप से जल में, और सोम रूप से लताओं में प्रविष्ट हैं, वे सब प्राणियों को रचते हैं। उन

रुद्रात्मक अग्नि और अन्यादि गुण वाले रुद्र को हम नमस्कार करते हैं।"

"हे रुद्र ! तुम प्रचण्ड बल वाले हो। यह चारों दिशायें तुम्हारी ही हैं। यह स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्ष सब दिशायें तुम्हारा शरीर रूप हैं। तुम सब पर कृपा करने वाले तथा पूजनीय हो।

(अथर्व० ११।२।१०)

"अनेक रुद्रों में निवास करने वाले एक रुद्र की हम उपासना करते हैं।" (ऋग्वेद १०।६४।८)

"रुद्र की वह एक महान प्रेरक शक्ति अनेक सनातन स्थानों में निश्चय से चेतना प्रदान करती है।" (ऋग्वेद ८।१३।२०)

यजुर्वेद (१६।५४) में असंख्य और सहस्रों, रुद्रों को पृथ्वी पर निवास करने वाला बताया गया है। सब प्राणी रुद्र का ही रूप हैं, वह उनमें व्याप्त हो रहा है।

यजुर्वेद १६ वें अध्याय में सर्वव्यापक ईश्वर, राजा, सेनापति, सभापति, वैद्य, विद्वान, वायु, विद्युत सेना, वृक्ष, शस्त्र निर्माता, वीर, किसान, बढ़ई, कुत्ता खटमल, नौकर, चोर, धोखेबाज को रुद्र की संज्ञा दी गयी है। यह सब रुद्र का ही रूप हैं। इन सब में वह समान रूप से व्याप्त हैं।

शिव पुराण वायु संहिता (पूर्व भाग) में कहा है—

तत्वादि भूतपर्यन्तं शरीरा दिग्वतन्द्रितः।
व्याप्याधितिष्ठति शिवस्ततो रुद्र इतस्ततः॥

'शिव तत्व से भूमि पर्यन्त देहादि और घटादि को व्याप्त करके अधिष्ठित होने के कारण शिव को रुद्र कहा गया है।"

यजुर्वेद (३।५८) में रुद्र को प्राणियों में आत्मा के रूप में विद्यमान कहा गया है।"

अन्तःप्रविष्ठः शास्ता जनानम्।

'वह समस्त प्राणियों के हृदय में प्रविष्ट होकर शासन करता है'

सर्वाँल्लोकान् व्यप्नोति व्यापनाद् व्यापी महादेवः।

(अथर्वशिखोपनिषद्)

'सब लोकों में व्यापक होने के कारण महादेव नाम पड़ा।'

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात सर्वगतः शिवः॥

(श्वेताश्वतर उपनिषद् ३।११)

'शिव का मुख, शिर और कण्ठ सब ओर हैं और वह सर्वव्यापी सब प्राणियों के हृदय में स्थित रहता है। इसलिये वह सर्वगत एवं कल्याणकारी है।"

दुःख नाशक—

"रुद्र दुःखं द्रावयति विनाशयति इति रुद्रः।"

रुत् अर्थात् दुःख का नाश करने वाले को रुद्र कहते हैं।

वे अभीष्ट की पूर्ति करते हैं और दुःखहर्ता है—ऋग्वेद में कहा है—

"हे मरुद्गण के जनक रुद्र! तुम्हारा सुख-दान हमको प्राप्त हो। हम सूर्य के दर्शन से कभी वंचित न रहें। हमारे वीर पुत्र शत्रुओं से सदा जीते। हम अनेक पुत्र पौत्र वाले हों।" (२।३३।१)।

'हे रुद्र! हम तुम्हारे द्वारा प्राप्त सुख देने वाली औषधि से सौ वर्ष की आयु भोगें। शरीर में व्यापने वाले सभी रोगों को हमसे दूर करो।' (२।३३।२)

'हे रुद्र तुम अभीष्टों की वर्षा करने वाले हो।" (२।३३।४)

"रुद्र अभीष्ट वर्षी हैं। उत्तम अन्न देने को उनसे प्रार्थना

करता हूँ। धूप से व्याकुल मनुष्य द्वारा छाया का आश्रय ग्रहण करने के समान मैं भी पाप रहित हुआ रुद्र का दिया सुख ग्रहण करूँगा।"

(२। ३३। ६)

"हे रुद्र ! तुम्हारा सुख दान करने वाला वाहु कहाँ है ? उसके द्वारा औषधि देते हुए सबको सुखी बनाते हो। तुम अभीष्ट वर्षण में समर्थ हो। मेरे पाप को हटाकर मुझे क्षमा दान दो।'

(२। ३३। ६)

अभीष्टवर्षी पीतवर्ण और श्वेत अ भायुक्त रुद्र के प्रति हम स्तुति करते हैं।" (२। ३३। ८)।

"हे रुद्र ! तुम स्तुति करने पर सुख देने वाले हो।'

(२। ३३। ११)

शिव पुराण वायु संहिता (पूर्व भाग) में कहा है--"रुद्र दुःख अथवा दुःख के कारण को नष्ट करने वाले होने से वे रुद्र कहे जाते हैं।"

यजुर्वेद ३।५९ में कहा—"हे रुद्र ! तुम सब रोगों को औषधि के समान नष्ट करते हो, अतः हमारे गौ, अश्व, पुत्र—पौत्रादि के लिए सर्व रोग नाशक औषधि प्रदान करो। हमारे पशुओं के रोग नाश के लिए भी अच्छी औषधि को प्रकट करो।"

तापत्रयात्मकं संसारदुःखं रुत् दुःखहेतुर्वा
रुत। रुद्रं द्रावयतीति रुद्रः।

"तापत्रय रूपी सांसारिक दुःखों को जो नष्ट करता है, वह रुद्र है।"

त्रयोशूलनिर्मूलनं शूलपाणिम

'शिव तीन प्रकार के शूलों को मूल से नष्ट करने वाले हैं।"

रुत् संसारदुख द्रावयतीति रुद्रः।

'रुद्र ससार दुःख को नष्ट करने वाले हैं।'

रोदन रुद्—दु:ख द्रावयतीति रुद्रः ।

रुद्र दुखों का नाश करने वाले देवता हैं ।

'वि क्षणत्केभ्य:—विविधं क्षिण्वन्ति हिंसन्ति पापम् ।

(रुद्र० मन्त्र ४६)

"रुद्र उपासकों के विभिन्न प्रकार के पापों को निवारण करते हैं ।"

तेन पापापहानिः स्याज्ज्ञात्वा देवं सदाशिवम् ।

(जाबाल्युपनिषद्)

"सदाशिव के ज्ञान से पाप नष्ट हो जाता है और मुक्ति मिलती है ।"

बुद्धिदाता—

रुद्र को बुद्धिदाता माना गया है । तभी उनसे ऐसी प्रार्थना की गई है । "जो रुद्र देवताओं की उत्पत्ति, वृद्धि का कारण रूप तथा संसार का स्वामी है, उसने पहले हिरण्यगर्भ को प्रकट किया था । वह हमें श्रेष्ठ बुद्धि वाला बनावें ।" (श्वेताश्वतरोपनिषद ३।४)

उपदेशक—

"रुत् जानं तत् ददाति इति रुद्रः"

"जो ज्ञान का उपदेशक है, वह रुद्र है । जो पवित्र वाणी द्वारा राक्षसी प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों के अन्तःकरणों को सात्विक बनाने का प्रयत्न करता है, वह रुद्र है ।

जगदादिगुरुः शिवः—

'शिव जगद्गुरु है ।'

शिव एव ह्याचार्य रूपेणानुग्रह्णाति

श्रुति ने शिव को आचार्य और गुरुरूप कहा है ।

निरालम्बोपनिषद में सच्चिदानन्द मूर्ति, सद्गुरु शिव को नमस्कार किया गया है—

नमः शिवाय गुरवे सच्चिदानन्दमूर्तये

रुद्र (शब्द वेदानम्) कल्पादौ ब्रह्मणेददातीति रुद्रः ।

सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा को वेद ज्ञान का उपदेश करने वाले रुद्र ही हैं ।

यो ब्रह्माणं विदिधाति पूर्वं यो वै वेदाश्च प्राहिणोति तस्मै । तं स देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुवैं शरणमहं प्रपद्ये ।। (श्वेताश्वतरोपनिषद् ६।१२)

"जो सर्वप्रथम ब्रह्मा को प्रकट करता है, फिर वेद ज्ञान देता है, उस ज्ञान बुद्धि को प्रकट करने वाले रुद्र भगवान की मोक्षकाम साधक शरण ग्रहण करता हूँ ।"

मोक्षदाता—

रोधिका च बन्धिका शक्ति रुत् । तस्या द्रावयिता भक्तेभ्य इति वा विग्रहः ।

'रोधिका और बन्धिका नाम की मोक्ष मार्ग में बाधक दो शक्तियों को दूर करने वाले की संज्ञा रुद्र है। रोधिका इस मार्ग में आवरण का रूप धारण करती है और बन्धिका विक्षेप डालने के कारण मोक्ष को अत्यन्त कठिन बना देती है। इसीलिए कहा है—

शिव एव सदा ध्येयः सर्वसंसारमोचकः ।

(शरभोपनिषद्)

'इस जगत से मोक्ष दिलाने वाले भगवान् शिव का सदा ध्यान करना चाहिये ।'

ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।

(श्वे० उ० ५।१३, ६।१३)

उनके ज्ञान से सब पापों से मुक्ति मिलती है ।

ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाय । (श्वे० उ० ६।६)

विश्व के आश्रयभूत शिव को अपने हृदय में निवास करते हुए जो जानता है, वह अमृतत्व को प्राप्त होता है।'

श्रेष्ठ :

कौषीतकि ब्राह्मण (२५।१३) में रुद्र को सब देवताओं में अग्र, ज्येष्ठ, पुराण पुरुष और श्रेष्ठ कहा गया है—

रुद्रो वै ज्येष्ठाश्च देवानाम्।

शरभोपनिषद् में भी रुद्र को सर्वश्रेष्ठ और वीर कहा गया है—

स एकः श्रेष्ठश्च सर्वशास्ता स एव वरिष्ठः।

अन्य शास्त्रों से भी इसकी पुष्टि होती है :—

नमोऽग्रयाय च (मन्त्र ३०)

'और सर्वश्रेष्ठ अर्थात् सबसे पूर्व में समुद्भूत को नमस्कार है।'

नमोज्येष्ठाय। (मन्त्र ३१)

'ज्येष्ठ (सबसे बड़ा) के लिये नमस्कार है।'

नमो वृद्धाय च वर्षीयसे च नमः। (रुद्रा० मन्त्र ३०)

'वृद्ध और वर्षीय के लिए नमस्कार है।'

वयो विद्याऽश्रमादिभिरधिको ज्येष्ठः। वयसा वृद्धः।
जगतामग्रे भवः। (शां० भाष्य)

"वय और विद्या, आश्रम आदि में बड़ा होने से ज्येष्ठ, प्रथम होने से वृद्ध है।"

संसार वैद्य—

रुद्र जहाँ रोगों को उत्पन्न करते हैं, वहाँ वे उन्हें दूर करने की भी क्षमता रखते हैं। वे औषधियों के जनक, आविष्कार कर्ता माने जाते हैं। इसीलिये वेद में उन्हें वैद्य की संज्ञा दी गई है। ऋग्वेद प्रथम मण्डल के ४३ वें मन्त्र में कहा है—

"मेधावी, अभीष्टवर्षक, महाबली रुद्र के निमित्त किस सुखकारी स्तुति का पाठ करें जिससे पृथ्वी, हमारे पशु, मनुष्य, गौ, सन्तान आदि के निमित्त रुद्र सम्बन्धी औषधि को उपजावें।" (१,२) हम औषधियों से युक्त रुद्र से आरोग्यता और सुख की याचना करते हैं" (४)।

'हम आकाश के घोर रूप वाले, लाल वर्ण वाले, जटाधारी तथा महान तेजस्वी रुद्र को नमस्कार पूर्वक आह्वान करते हैं। वे वरणीय औषधियों को हाथ में धारण कर हमको सुखी करें तथा अपने रक्षा साधनों द्वारा निर्भय बनावें।" (१।११४।५)

"हे रुद्र! हम तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुख देने वाली औषधि से सौ वर्ष की आयु भोगें। शरीर से व्यापने वाले सभी रोगों को हम से दूर करो।" (ऋ० २।३३।२)

"तुम श्रेष्ठ भिषक हो, अतः औषधि द्वारा हमारी सन्तान को बलवान बनाओ।" (ऋ.२।३३।४)

"हे रुद्र! तुम्हारा सुख देने वाला बाहु कहाँ है! उसके द्वारा औषधि देते हुए सबको सुखी बनाते हो।" (ऋ. २।३३।७)

"तुम्हारी स्वच्छ औषधि अत्यन्त सुख की देने वाली है।"

(ऋग्वेद २।३३।१३)

"तुम हमें रोग व्याधि में ग्रस्त मत करना।" (ऋ० ७।३६।१)

तुम सहस्रों औषधियों वाले हो। हमारे पुत्र पौत्रादि को नष्ट मत करना।" (ऋ. ७।४६ ३)

अथर्ववेद में भी वर्णित है—

"इस रोग को दूर करने वाली औषधि की मैं परख करूँगा, यह रुद्र की औषधि अन्तकाल में सबको रुलाती है। इसका शिव ने प्रयोग किया था। हे परिचारिका! तुम गोमूत्र के फेन जल से धान को धोओ। यह रोग को दूर करने में श्रेष्ठ है। हे रुद्र! इस औषधि से हमको सुख दो। हे देव! हमको सुख मिले, हमारे पशु मनुष्य रोग ग्रस्त

न हों और पाप का नाश हो। सम्पूर्ण विश्व और उसके श्रेष्ठ कर्म हमारे लिए औषधि के समान हों।" (अथर्ववेद ६।५७।१-३)

यजुर्वेद में भी तत्सम्बन्धी मन्त्र उपलब्ध होते हैं—

"हे रुद्र! सभी संसार जैसे हमारे लिए आरोग्यप्रद और श्रेष्ठ मन वाला हो सके, वैसा करो।" (१६।४)

"स्मरण से ही सब रोगों को दूर करने वाले चिकित्सक के समान रुद्र सब सर्पादि को नष्ट कर अधोगमन वाले राक्षस आदि को हम से दूर भगावें।" (१६।५)

"औषधियों को पुष्ट करने वाले रुद्र को नमस्कार है।"
(१६।१६)

"हे रुद्र! जो तुम्हारी कल्याण करने वाली औषधि रूप शक्ति है, तुम अपनी उस शक्ति से हमारे जीवन को सुखमय करो।"
(१६।४६)

रुद्र के संसार वैद्य होने के कारण का विवेचन करते हुए शिव पुराण (वायु संहिता पूर्व भाग) में कहा है—'जैसे निदान का ज्ञाता वैद्य रोग को दूर करने वाला है और अनेक औषधि युक्त उपाय करता है। उसी प्रकार प्रकृति के ज्ञान रूप उपायों से मुमुक्षुओं और कामुकों को क्रमपूर्वक लय, मोक्ष का भोग के अधिकार के अनुसार उन्हें प्रदान करता है। इसलिए संसार के मूल को मिटाने वाला ईश्वर है तथा जगत्पति होने से भी सभी तत्वज्ञाता उसे संसार वैद्य कहते हैं।"

शिव दाम्पत्य जीवन के बन्धन में बँध कर भी उससे अलिप्त रहते हैं। वे नग्न रूप से कैलाश पर्वत पर समाधिस्थ रहते हैं। सम्पत्ति के रूप में उनके पास कुछ भी दिखाई नहीं देता। वे वैराग्य व अपरिग्रह की मूर्ति हैं। अपने व अपने परिवार के लिए कुछ न रख कर वे अपनी शक्तियों व सामर्थ्यों को निरन्तर बाँटते रहते हैं। तभी वे भोले भण्डारी कहलाते हैं। काम को उन्होंने वश में कर रखा है। जब

कामदेव उनके मन में काम तत्व को उद्दीप्त करने का प्रयत्न करते हैं तो वह अपने तृतीय नेत्र से उसे भस्म कर देते हैं। वे मृत्युञ्जय हैं। काल उनके वश में रहता है।

रुद्र सूक्त के पाठ व हवन से शिव शक्ति का सान्निध्य प्राप्त होता है, सौभाग्य वृद्धि होती है, इन्द्रिय संयम व काल ग्रास निवारण में सहायक होता है व सभी प्रकार की श्रेष्ठताओं का सृजन करता हुआ मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है। मन्त्र इस प्रकार हैं:—

ॐ यज्जाग्रतोदूरमुदैतिदैवन्त दुसुप्तस्यतथैवैति। दूरङ्गमञ्ज्योतिषाञ्ज्योतिरेकन्तन्मेमनः शिवसङ्कल्प्ल्यपमस्तु ॥१

येनकर्म्माण्यपयसोमनीषिणो यज्ञेकृण्वन्तिविदथेषुधीराः। यदपूर्वय्यक्षमन्तः प्प्रजानान्तन्मेमनः शिव सङ्कल्प्ल्यमस्तु ॥२

ॐ वेदाहमेतम्पुरुषम्महान्तमादित्यवर्ण्णन्तमसः परस्तात्। तमेव विदित्त्वातिमृत्युमेतिनान्न्यः पन्थाविद्यतेयनाय ॥३

ॐ नमस्तेरुद्रमन्न्यवऽउतोतऽइषवेनमः। बाहुब्भ्यामुतते-नमः ॥४

ॐ मानस्तोकेतनयेमानऽआयुषिमानोगोषुमानोऽअश्श्वेषुरी-रिषः। मानोवीरान्रुद्रभामिनोवधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वाहवा-महे ॥५

ॐ नमोहिरण्यबाहवे। सेनान्न्येदिशाञ्चपतयेनमोनमो-वृक्षेब्भ्योहरिकेशेब्भ्यः पशूनाम्पतयेनमोनमः शष्प्पिञ्जरायत्त्विष-षीमतेपथीनाम्पतयेनमोनमोहरिकेशायोपवीतिनेपुष्ट्टानाम्पतयेन-मोनमोबब्भ्लुशाय ॥६

ॐ नमोगणेब्भ्यो। गणपतिब्भ्यश्श्चवोनमोनमोव्व्रातेब्भ्यो-व्व्रातपतिब्भ्यश्श्चवोनमोनमोगृत्सेब्भ्योगृत्स पतिब्भ्यश्श्चवोनमोन-मोविरूपेब्भ्योविश्श्वरूपेब्भ्यश्श्चवोनमोनमः सेनाब्भ्यः ॥७

ॐ नमः शङ्गवे। चपशुपतयेचनमऽउग्ग्रायचभी मायचन-

सोग्ग्रे वधायचदूरेवधायचनमोहन्त्रे चहनीयसेचनमो वृक्षेभ्यो हरि-
केशोभ्यो नमस्ताराय ॥८

ॐ नमः शम्भवाय । चमयोभवायचनमः शङ्करायचमय-
स्स्करायच नमः शिवायचशिवतरायच ।:६

ॐ नमोस्तु । रुद्रेभ्योयेदिवियेषांवर्षमिषवः ॥ तेभ्योदश-
प्प्राचीर्द्दशदक्षिणादशप्प्रतीचीर्द्दशोदीचीर्द्दशोदूर्ध्वाः । तेभ्यो-
नमोऽअस्तुतेनोवन्तुतेनो मृडयन्तु तेयन्द्विष्म्मोयश्शचनोद्वेष्टि्टतमे-
दध्मः ॥१०

ॐ नमोस्तुरुद्रेभ्योयेन्तरिक्षेयेषांवातइषवः । तेभ्योदश-
प्प्राचीर्द्दशदक्षिणादशप्प्रतीचीर्द्दशोदीचीर्द्दशोर्द्ध्वाः ॥ तेभ्यो-
नमोऽअस्तुतेनोवन्तुते नोमृडयन्तु तेयन्द्विष्म्मोश्शचनोद्वेष्टि्टतमेषा-
ञ्जम्भेदध्म ॥११

ॐ नमोस्तु । रुद्रेभ्योयेपृथिव्यांय्येषामन्नमि षवः । ते-
भ्योदशप्प्राचीर्द्दशदक्षिणादशप्प्रतीचीर्द्दशो दीचोर्द्दशोर्द्ध्वाः ।
तेभ्योनमोऽअस्तुतेनोवन्तुतेनोमृडयन्तुयेयन्द्विष्म्मोयश्शचनोद्वेंष्टि्त-
मेषाञ्जम्भेदध्मः ॥१२

ॐ त्र्यम्बकंय्यजामहे । सुगन्धिम्पुष्टि्टवर्द्धनम् । उर्वारुक-
मिवबन्धनान्मृत्योर्म्मुक्षीयमामृतात् ॥१३

त्र्यम्बकय्यजामहेसुगन्धिम्पतिवेदनम् । उर्व्वारुकमिव बन्ध-
यादितोमुक्षीयमामुतः ॥१४

ॐ शिवोनामासिस्वधितिस्तेपितानमस्तेऽअस्तुमामाहिंसीः ।
निवर्त्तयाम्म्यायुषेन्नाद्यायप्प्रजननाय रायस्प्पोषाय सुप्प्रजास्त्वाय-
सुवीर्य्याय ॥१५

ॐ प्राणश्श्च मेपानश्श्चमेव्यानश्श्चमेसुश्श्चमोचित्तञ्च-
मेऽआधीतञ्चमेवाक्चमेनश्च्चमेचक्षुश्च्च मेश्श्रोत्त्रञ्चमेदक्षश्श्च-
मेबलञ्चमेयज्ञेनकल्पन्ताम् ॥१६

ॐ आयुर्य्यज्ञेन कल्प्ताम्प्राणोयज्ञेनकल्पताञ्चक्षुर्य्यज्ञेन-कल्पता ँ श्श्रोत्रंयज्ञेनकल्पतांव्वाग्गयज्ञेन कल्पताम्मनोयज्ञेन-कल्पतामात्त्मायज्ञेनकल्पताम्ब्रह्मामायज्ञेनकल्पतां ञ्ज्योति-र्य्यज्ञेनकलपता स्वर्यज्ञेनकलपताम्पृष्ठय्यज्ञेनकल्पतांयज्ञोयज्ञेन-कल्पताम् ॥ स्तोमश्श्चयजुश्श्चऽऋक्चसामचबृहच्चरथन्तरञ्च ॥ स्वर्ह्देवाऽअगन्ममामृताऽअभूमप्रजापतेः प्रजऽअभूमवेट्स्वाहा ॥१७

विष्णु सूक्त

विष्णु वह सत्व है, वह व्यक्ति विशेष है, जो सर्वत्र व्यापक है, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्योलोक, भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक में फैला हुआ है। जो तीन पगों में सारी सृष्टि को घेर लेता है। त्रिविक्रम तो वह प्रसिद्ध ही है। उसकी जगमगाहट तीनों लोकों के अणु-अणु में दृष्टिगोचर होती है, प्राणीमात्र में वह समाया हुआ है। गीता (१८।६१) में भी कहा है ' सब प्राणियों के हृदय में जीव रूप परमात्मा का निवास है।" कवि का कहना है—"जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।" परमात्मा के ही इस तत्व को समझ जाता है, वह धन्य हो जाता है, वह विष्णु के धर्म को, परमात्मा के धर्म को और अपने धर्म को समझ जाता है।

विष्णु तीन पैरों से सारी सृष्टि को नाप लेते हैं। यह 'चलना' उनकी गति, क्रियाशीलता और सतर्कता की ओर इङ्गित करता है। वह सदैव जागरुक रहते हैं। ऐसा लगता है जैसे अश्वमेध का घोड़ा सेनाओं सहित उनके आगे-आगे चल रहा हो और शक्तिशाली से शक्तिशाली राजा को भी उसे पकड़ने का साहस न हो। उनकी गति को रोकने की क्षमता किसी में नहीं है। वह निरन्तर गतिशील क्रियाशील और संघर्ष रत रहते हैं।" यही वृत्ति जीवन को उन्नतिशील, बनाती है, यही प्रगति और विकास का राजमार्ग है। खड़ा पानी सड़ जाता है। गति उसमें

पवित्रता बनाये रखती है। विज्ञजनों ने आलस्य को मृत्यु और क्रिया-शीलता को ही जीवन की संज्ञा दी है। विष्णु अजय हैं। उनके किसी काम में बाधा नहीं पड़ती। वह बाधाओं को पार करते हुए आगे बढ़ते हैं। जो व्यक्ति विष्णु के इस धर्म को अपनाता है, वह भी अजय बन जाता है। ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता है, बाधायें रास्ता छोड़ कर खड़ी हो जाती हैं ताकि वह अपनी नियमित गति से चलता रहे।

पृथ्वी पर जो प्राणी निवास करते हैं, उनकी स्थिरता के लिए सभी तरह के वैज्ञानिक साधन विष्णु ने जुटा रखे हैं। चारों ओर के वायुमण्डल के वातावरण में प्राण तत्व विद्यमान है जो बिना मूल्य और परिश्रम के व्यवस्थापूर्वक सभी प्राणियों को मिलता रहता है। जल की अपूर्व व्यवस्था है। अन्य खाद्य पदार्थों के लिए पृथ्वी को आधार बनाया गया है और उसमें ऐसे गुणों का समावेश किया गया है जो उत्पत्ति में सहायक होते हैं। सभी सम्बन्धित साधन उपलब्ध कैसे किये गये हैं ? पृथ्वी ने अपनी छाती में जल सुरक्षित रखा हुआ है। आकाश से भी नियम पूर्वक उसकी वर्षा होती है। सूर्य किरणें उसमें शक्ति प्रदान करती हैं। यह प्रक्रियायें हीरे, पन्ने, सोना, चाँदी,लोहा, तांबा, कोयला, मिट्टी का तेल,पैट्रोल से लेकर न जाने क्या-क्या पृथ्वी के गर्भ में उँड़ेल देती हैं।

पुराणों में विष्णु को त्रिदेवों में पालन पोषण करने वाली शक्ति माना गया है। स्त्री जब शिशु को जन्म देती है तो एक व्यवस्थित प्राकृतिक नियम के अनुसार उसके स्तनों में दूध उतर आता है जो वह अपने शिशु को पिलाती है। वह दूध वैज्ञानिक रूप से नवजात शिशु के लिए ही उपयुक्त रहता है। गाय भैंस आदि पशुओं का दूध उसके लिए अप्राकृतिक व अनुपयुक्त रहता है। शिशु का प्रारम्भिक पालन पोषण इसी माँ के दूध पर ही निर्भर करता है। विश्व की हर पालन व पोषण शक्ति में विष्णु का निवास माना जाता है क्योंकि वह सर्वव्यापी देव

है। माँ के स्तनों में भी विष्णु निवास करते हैं। माँ के स्तन भी शिशु के लिए दूध का खजाना (स्टोर) अथवा सागर हैं। उसे जब भी भूख लगती है, तभी वह उनसे निकाल लेता है, उसे कभी निराश नहीं होना पड़ता। उसकी आशाओं का समुद्र तो वह माँ के स्तन ही हैं। माँ के स्तन एक प्रकार से क्षीर सागर का छोटा रूप है और पालक शक्ति विष्णु का निवास वहाँ आवश्यक है।

विष्णु सूक्त के पाठ व हवन से अणु-अणु और हर प्राणी में सर्व-व्यापक रूप से विद्यमान भगवान् विष्णु की प्रसन्नता प्राप्त होती है और सभी प्राणियों को विष्णु का रूप मानकर एकत्व व अपनत्व की पवित्र भावना उत्पन्न होती है। पोषण तत्व की वृद्धि होने से हर कार्य में गतिशीलता आती है, तप की प्रवृत्ति व प्रेरणा मिलती है। इस तरह से लौकिक व पारलौकिक सब प्रकार की उन्नति के लिए उपयुक्त है। मंत्र इस प्रकार हैं :—

ॐ विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचंयः पार्थिवानि विममेरजा-गूँसि। यो अस्कभा यदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥१

ॐ विष्णो रराटमसि विष्णोः पृष्ठमसि विष्णो श्नप्त्रेस्थः। विष्णो स्यूरसि विष्णो ध्रुवमसि वैष्णवमसि विष्णवेत्वा ॥२

ॐ तदस्य प्रिय मपि पाथो अस्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति। उरुक्रमस्य सह वन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥३

प्रतद्विष्णु स्तपसे वीर्याय मृगोन भीमः कुचरी गिरिष्ठा। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेषु अधिक्षयन्ति भुवनानि विश्वा ॥४

परो मात्रया तनुवा वृधान नते महित्व मन्वश्नुवन्ति। उभेते विद्म रक्षसी पृथिव्या विष्णो देवत्वं परमस्य वित्से ॥५

विचक्रमे पृथिवी मेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन्। ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ॥६

त्रिर्देवः पृथिवी मेष एतां विचक्रमे शतर्चसं महित्वा।
प्रविष्णुरस्तु तवसस्तवीयान् त्वेषगूँ ह्यस्य स्थविरस्य नाम ।।७

अतो देवा अवन्तु नो, यतो विष्णु-
र्विचक्रमे, पृथिव्याः सप्तधामभिः ।।८
इदं विष्णु र्विचक्रमे, त्रेधा निदधे
पदम् । समूढमस्य पागूँ सुरे ।।६
त्रीणि पदा विचक्रमे, विष्णु र्गोपा
अदाभ्यः । अतो अर्माणि धारयन् ।।१०
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि
पस्पसे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ।।११
तद्विष्णोः परमं पदं, सदा पश्यन्ति
सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ।।१२
तद्विप्रासो विपण्यवो जागृवांसः
समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम् ।।१३

इन्द्र सूक्त

इन्द्र देवताओं के राजा हैं, वैदिक युग के सर्वोपरि देवता हैं। वेदों व पुराणों में इन्द्र के इतिहास की झाँकी मिलती है। वेदों में उसके चरित्र का चित्रण सुन्दर ढङ्ग से हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक युग में इन्द्र एक सर्वोच्च सम्मानित पद था। तभी तो इन्द्र के सम्बन्ध में वेद में सबसे अधिक मन्त्र आये हैं। इन्द्र से सम्बन्धित लगभग साढ़े तीन हजार मन्त्र वेद में उपलब्ध होते हैं। इतने मन्त्र और किसी भी देवता को समर्पित नहीं किये गये हैं। अग्नि, सोम, वायु, मित्रावरुण, ऊषा, पूषा, अश्विन आदि देवता इन्द्र के बाद ही आते हैं। इसका कारण यह है कि ऐतिहासिक व्यक्तियों में इन्द्र ने सबसे अधिक वीरतापूर्ण कार्य किये थे। वह शक्ति का प्रतीक ही बन

गये थे। अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष करना उनका मुख्य कार्य बन गया था। अन्यायी राजाओं को परास्त करके वह कमजोर राजाओं की सहायता किया करते थे। राक्षसों का दलन उनका उद्देश्य था। इस कार्य में वह इतने प्रसिद्ध हो गये थे कि जिस राजा पर आसुरीतत्व आक्रमण करते थे, वह इन्द्र का ही आह्वान करता था और इन्द्र भी उसकी सहायता करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। इन्द्र ने मानो असुरता के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए अपना जीवन ही अर्पण कर दिया हो। सम्भव है वह स्वप्न में भी असुरों को मारते-काटते हों। वह असुरों के नहीं असुरता के शत्रु थे। जो लोग धर्म और सदाचार से दूर रहते थे, धर्म और संस्कृति का विरोध करते थे, वह इन्द्र के शत्रु थे। इन्द्र उन्हें बुरे विचारों का विष फैलाने वाले अनार्य अथवा दास कहते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि इन्द्र का सारा जीवन अनार्यों से संघर्ष और युद्ध करने में ही बीता हो, परन्तु उन्होंने अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध ही युद्ध किया किसी श्रेष्ठ पुरुष का कभी वध नहीं किया, वह स्वयं कहते हैं—"जो सत्य का पालन नहीं करता और यज्ञ में हवि आदि नही देता, उसे मैं नष्ट कर देता हूँ। मैं दुष्कर्मी, पापी को भी मिटा देता हूँ।" (ऋग्वेद ७। २७। १)

इन्द्र की प्रशंसा के वेद में सूक्त के सूक्त भरे पड़े हैं। ऐसा लगता है कि उस युग में इन्द्र ने अत्यन्त वीरतापूर्ण कार्य किये थे और अनार्यों से आर्यों की रक्षा की थी। महान् रक्षक और योद्धा के रूप में इन्द्र ने आर्यों का हृदय जीत लिया था, तभी उन्हें सर्वोच्च आसन पर अवस्थित किया गया था।

इन्द्र सूक्त से इन्द्रत्व की भावनाएँ उद्दीप्त होती हैं, राजकीय सुव्यवस्था की अद्भुत सूझ-बूझ मिलती है और शासकीय क्षमता प्राप्त होती है। शासन के उच्च पदों पर आसीन जिन व्यक्तियों को निरन्तर

आसुरी वृत्ति वाले विरोधियों का सामना करना पड़ता है अथवा अशान्ति व द्वेष उत्पन्न करने व युद्ध भड़काने वाली कार्यवाहियों के निरन्तर अवसर ढूँढ़ते रहते हैं और हर समय सिरदर्द बने रहते हैं, उनके दमन व नियन्त्रण के लिए इन्द्र सूक्त की साधना शान्ति द्रोहियों के नाश के लिए इन्द्र जैसी सङ्गठन शक्ति की भावना, क्षमता व सूझ-बूझ प्राप्त होती है। मंत्र इस प्रकार हैं:—

इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम्। ऋषिणां च स्तुतीरुप-यज्ञं च मानुषाणाम्॥

उपयामगृहीतोऽसीन्द्रायत्वा षोडशिनऽएष ते। योनिरि-न्द्राय त्वा षोडशिने॥१

इन्द्रवायूऽइमे सुताऽउप प्रयोभिरागतम्। इन्दवो वामु-शन्तिहि॥

उपयामगृहीतोऽसि वायवऽइन्द्रवायुभ्यां त्वैष ते योन्नि: सजाषोभ्यां त्वा॥२

इन्द्रवायूऽइमे सुताऽउस प्रयोभिरा गतम्। इन्दवो वामु-शन्ति हि॥३

इन्द्रवायू वृहस्पतिं मित्राग्नि पूषण भगम्। आदित्यान्मा-रुतं गणम्॥४

इन्द्रवायू सुसन्दशा सुहवेह हवामहे। यथा नः सर्वऽइज्जनो ऽनमीवः सङ्गमे सुमनाऽअसत्॥५

त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्यः। विप्राय स्तुवते वसुवनि दुरश्रवसे वह॥६

त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः। तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुहुवतस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्। ७

त्वमिन्द्राधिराजः श्रवस्युस्त्वं भूरभिभूतिर्जनानाम् । त्वं दैवीर्विश इमा वि राजायुष्मत् क्षत्रमजरंते अस्तु ।।८

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः । विश्व कर्मा विश्व-देवो महाँ अस्ति ।।९

त्वमिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्रं निषेदुर्ऋषयो नाधमाना-स्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ।।१०

त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वञ्चते । श्यामाकं पक्तं पीलु च वारस्मा अकृणोर्बहुः ।।११

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः । अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्व तूर्य तरुष्यतः ।।१२

त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं वृषन् वृषेदसि ।।१३

त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः । वज्रं शिशान ओजसा ।।१४

त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा । स विश्वा भुव आभवः ।।१५

त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यऽन्तरिक्षमतिरः । उद् द्यामस्तम्ना ओजसा ।।१६

गणपति सूक्त

गणेश ऋद्धि, सिद्धि और सफलता प्रदान करने वाले प्रमुख देवता हैं । तभी किसी भी कार्य का आरम्भ गणेश का पूजन व स्मरण से ही किया जाता है क्योंकि इनका पूजन अमङ्गल को मङ्गल व अशुभ को शुभ में परिणित करता है । अतः मङ्गल और शुभ के लिए गणपति सूक्त का पूजन व हवन एक उत्तम साधन है । मन्त्र इस प्रकार हैं :—

ॐ गणानांत्वां गणपति हवावहे कविंकवीना मुपमश्रव-स्तमम् । ज्येष्ठ राज ब्रह्मणां ब्रह्मणस्त आनः श्रृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥१॥

आतून इन्द्र क्षुमन्तं चित्र ग्राभं संगृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥२॥

विद्माहि त्वा तूविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम् । तुविम-वोभिः ॥३॥

नहि त्वा शूर देवा न मर्तासोदित्सन्तम् । भीमं नगां वारयन्ते ॥४।

एतोन्विन्द्र स्तवा मेशानं वस्वः स्वराजम् । न राधसा मर्धिषन्नः ॥५॥

प्रस्तोषदुप गासिनच्छ्र वत्साम गीयमानम् । अभिराधसा जुगुरत् ॥६

आनो भर दक्षिणेनाभिसव्येन प्रमृश । इन्द्र मानो वसो-र्निभीक् ॥७॥

उपक्रमस्वा भर धृषता धृष्णो जनानाम् । अदाशूष्टर-स्यवेदः ॥८॥

इन्द्रय उनुते अस्ति वाजो विप्रेभिः सनित्वः । अस्माभिः सु तं स नुहि ॥९॥

सद्यो जुवस्ते वाजा अस्मभ्यं विश्वश्चन्द्रः । वशैश्च भक्षू जरन्ते ॥१०॥

दुर्गा सूक्त

दुर्गा दुर्गतिनाशिनी हैं। दुर्गा में 'दु' अक्षर दारिद्र, दुख, दुर्भिक्ष, दुर्व्यसन आदि दैत्यों के नाश का प्रतीक है। 'रेफ' रोगघ्न है। 'गणा' पापघ्न और अन्याय, अत्याचार, अधर्म, अनेकता, आलस्यादि आसुरी वृत्तियों के नाश का वाचक है।

दुर्गा की उपासना में शक्ति की प्रधानता है। देवताओं की शक्ति से उनका जन्म हुआ है। महिषासुर व अन्य असुरों का वध करके शक्ति का ही उन्होंने प्रदर्शन किया, वह शक्ति की प्रतिमा हैं। शक्ति उपार्जन के लिये ही दुर्गा की उपासना की जाती है। बल की तो वह प्रतीक मानी जाती हैं। दुर्गा की आठ भुजायें—आठ शक्तियों-स्वास्थ्य, विद्या, धन, व्यवस्था, सङ्गठन, यश, शौर्य और सत्य हैं। दुर्गा के आवाहन से इनका सृजन होता है।

जब इन शक्तियों के विकास की आवश्यकता पड़े तो दुर्गा की उपासना करनी चाहिये। दुर्गा सूक्त के मन्त्र दुरितों के दलन में अपना प्रभाव दिखाते हैं। आसुरी वृत्तियाँ आन्तरिक हों या बाह्य, दोनों स्थितियों में यह रामबाण का सा काम करता है। शत्रुओं का भय हो, विपत्तियाँ चारों ओर से घेरे हुए हों, अन्याय व अत्याचार से दम घुट रहा हो दुर्गा सूक्त के मन्त्र घाव पर मरहम का काम करते हैं। मन्त्रों को प्रभावशाली बनाने के लिये पाठ के बाद हवन भी करना चाहिये। मन्त्र इस प्रकार हैं:—

ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीवतो निदहाति वेद।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरिता त्यग्निः ॥१
तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसि तरसे नमः ॥२
अग्नेत्वं पारया नव्यो अस्मान्स्वस्तिभिरितिदुर्गाणि विश्वा।
पू श्चपृथ्वी बहुला न उर्वो भवा ताकाय तनयाय शंयो ॥३
विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नावादुरितातिपर्षि।
अग्ने अत्रिवन्मनसा गृणानोऽस्माकं बोध्यविता तनूनाम् ॥४
पृतनाजितं सहमानमुग्रमग्नि हुवेम परमात्सधस्थात्।
स नः पर्षदतिदुर्गाणि विश्वा क्षामद्देवो अतिदुरितात्यग्निः ॥५

प्रत्नोषि कमीडचो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्चसत्सि ।
स्वां चाग्ने तनुवं पिप्रियस्वास्तभ्यं च सौभगमायजस्व ।।६
गोभिर्जुष्ठमयुजो निषिजं तवेन्द्र विष्णो रनुसञ्चरेम ।
नाकस्य पृष्ठमभि संवसानो वैष्णवीं लोक इह मादयन्ताम् ।।७
देवा वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपा पशवो मदति ।
सा नो मन्द्रेष मूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु ।।८
कालरात्रीं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवी स्कन्दमातरम् ।
सरस्वती मदिति दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम् ।।६
नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृतिभद्रायै नियताः प्रणताः स्मताम् ।।१०

लक्ष्मी सूक्त

लक्ष्मी की प्रसन्नता उसकी प्रतिभा के सामने सर झुकाने अथवा फूल माला चढ़ाने से प्राप्त नहीं होती वरन् परिश्रमशीलता ही एक ऐसा माध्यम है जिससे लक्ष्मी देवी का अनुग्रह प्राप्त किया जा सकता है। अकस्मात् धन प्राप्ति के कुछ अपवाद भले ही हों पर साधारणतः बिना श्रम के धन प्राप्ति का और कोई उपाय नहीं है। यदि कोई सोचता है तो वह झूठ, छल, कपट, बेईमानी, चोरी, डकैती, जेबकतरी, अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार के विकृत मार्ग पर पग बढ़ाता है जिसके परिणाम सदैव घोर अशान्ति के रहते हैं। इसीलिये विज्ञजन हमें प्रेरणा देते हैं कि गाढ़े पसीने की कमाई से सुख शान्ति प्राप्त होना सम्भव है।

आलसी और निकम्मे लोगों को लक्ष्मी वरदान के स्थान पर शाप देती है भले ही वह लक्ष्मी के चित्रपर प्रतिदिन फूल-हार क्यों न चढ़ाते हों। वह केवल पूजा से प्रसन्न होने वाली नहीं है। उसकी वास्तविक पूजा परिश्रम है। वह इसी की भेंट माँगती है। तुलसी ने

कहा भी है कामधेनु व कल्पतरु के चित्र टाँगने से कठिनाई दूर नहीं होती। कौटिल्य ने इस तथ्य की पुष्टि की है और कहा है कि धन से ही धन की उत्पत्ति होती है। बेचारे तारों से क्या सहायता प्राप्त हो सकती है। समुद्र मन्थन का स्पष्ट अर्थ उद्योग व परिश्रम ही है। लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए जो कार्य भगवान् विष्णु को करना पड़ा, क्या उसके बिना हम लक्ष्मी की प्राप्ति कर सकेंगे ? निश्चय रूप से हमें कर्मयोग की ओर बढ़ना होगा।

लक्ष्मी के पूजन व सम्मान का अर्थ है उसका सदुपयोग। दुरुपयोग से वह अप्रसन्न हो जाती हैं और वहाँ से अन्तर्ध्यान हो जाती हैं। एक विद्वान लेखक ने कहा है कि धोखा देना लक्ष्मी को डण्डे मार कर घर से खदेड़ना है। विश्वासपात्रता लक्ष्मी की माँ है। माहात्मा विदुर का मत है कि धन श्रेष्ठ कर्मों से आता है। साहस, योग्यता, दृढ़ निश्चय से बढ़ता है, चतुरता से फलता फूलता है और संयम से सुरक्षित रहता है। ब्रह्मवैवर्त पुराण गणेश खण्ड अध्याय २३, श्लोक १०–२० में लक्ष्मी स्वयं कहती हैं कि मैं श्रेष्ठ कर्म करने वाले, नीति मार्ग पर चलने वाले पुण्यात्मक गृहस्थ व राजाओं के घर रहती हूँ और इस तरह आचार करने वाले व्यक्तियों का मैं अपने प्रिय पुत्रों की तरह पालन-पोषण करती हूँ। इसके विपरीत जो व्यक्ति बुरे आचरण करता है, माता–पिता, गुरु, भाई, अतिथि आदि का यथोचित सत्कार नहीं करता, उसके घर मैं नहीं जाती। मिथ्यावादी, झूँठा, दुःशील, सत्वहीन, झूँठा गवाह, अविश्वासी, कृतघ्न, चिन्ताशील, भयग्रस्त, पापी, ऋणी, कृष्ण आदि के घर मैं नहीं जाती। लोक में भी स्पष्ट है कि सदाचारी के घर ही धन स्थिर रह सकता है। दुराचारी उसे थोड़े ही दिनों में गँवा देता है।

लक्ष्मी अपने उपासकों को कर्मयोगी और व्यवहार कुशल देखना चाहती है। व्यवहार कुशलता ही एक ऐसा गुण है जो हर क्षेत्र

में प्रगति करने का विशिष्ट साधन है। बड़े बड़े उद्योगपतियों ने इसी देवी का सहारा लिया है। लिवरपूल के एक व्यापारी से पूछा गया कि उसने व्यापार में इतना धन कैसे जमा किया। उसका स्पष्ट उत्तर था—श्रेष्ठ व्यवहार व नम्रता से। अमेरिका में धन कुवेर राकफेलर का भी यही मत है। उन्होंने कहा है कि व्यवहार कुशलता को चाय और काफी की तरह खरीदना चाहिये। मैं इस व्यवहार कुशलता की योग्यता को संसार की मूल्यवान् वस्तु समझता हूँ।

लक्ष्मी देवी कमल के आसन पर विराजमान हैं। उनके हाथ में भी कमल रहता है और दूसरे हाथ से वह रुपये बखेरती दिखाई जाती हैं। कमल गन्दे जल जल से उत्पन्न होता है परन्तु अपने गुणों के कारण वह देवी देवताओं के आसन व शोभा के लिए चुना गया। वह आदर्श जीवन का प्रतीक माना जाता है क्योंकि वह दल-दल से निकल कर श्रेष्ठता की ओर बढ़ा है। संसार में भी वैसा ही गदला वातावरण है। हमें भी कमल की तरह उस दल-दल से ऊपर उठना होगा तभी हमें लक्ष्मी की प्रसन्नता प्राप्त होगी। कमल जल में रहते हुये भी जल से अलग व अलिप्त रहता है। हमें भी इस ;संसार में गृहस्थ जीवन के सभी व्यवहार करते हुये उनमें लिप्त नहीं होना है। भोग तो करना है परन्तु उनमें आसक्ति नहीं करनी है, अनासक्त भाव से उनको ग्रहण करना है। भोग में त्याग के आदर्श जीवन व्यतीत करने की ओर लक्ष्मी प्रेरित करती है और यही वह सिद्धान्त है जिससे मानसिक शान्ति की स्थिरता रह सकती है।

जो उपरोक्त ढङ्ग से लक्ष्मी पूजन करेगा, लक्ष्मी उस कर्मयोगी के लिए जयमाला लेकर स्वागत के लिए सदैव तैयार मिलती है।

लक्ष्मी सूक्त के पाठ व हवन से कई बार तो चमत्कारी अनुभव देखे जाते हैं। प्रत्यक्ष में कोई कारण दिखाई नहीं देता परन्तु आर्थिक

समस्या का सुविधा पूर्वक समाधान हो जाता है। इसके साथ-साथ साधना से उपासक में कुछ ऐसी मौलिक विशेषतायें भी आ जाती हैं जो स्थाई रूप से श्रीतत्व की वृद्धि में आवश्यक मानी जाती हैं। स्वभाव में मिलनसारी, वाणी में मधुरता, सहनशीलता, परिश्रमशीलता, दूरदर्शिता, आशा, विश्वास, साहस, निर्भयता, उत्साह, अवसर की पहिचान, व्यक्तित्व के आकर्षण कुछ ऐसे गुण हैं जिनका विकास श्री तत्व के उपासक के लिये आवश्यक है। यदि यह गुण विकसित न हो पायें तो चमत्कारी ढङ्ग से धन प्राप्ति होने पर भी वह स्थिर न रह पायेगा। यह निश्चित है कि साधना हर प्रकार से सन्तोषजनक रहती है। मन्त्र इस प्रकार हैं:—

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो मआवह ॥१
ॐ ताम्म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥२
ॐ अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदनीम्।
श्रियं देवी मुपह्वये श्री र्मादेवी र्जुषताम् ॥३
ॐ कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारा।
मार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ॥
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥४
ॐ चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं।
श्रियं लोके देव जुष्टा मुदाराम् ॥
तां पद्मनेमिं शरणमहं प्रपद्ये।
अलक्ष्मी र्मे नश्यतां त्वां वृणोमि ॥५
ॐ आदित्यवर्णे तपसोधिजातो
वनस्पति स्तववृक्षोथ बिल्वः ॥६
तस्य फलानि तपसा नुदंतु।

मायांतरा याश्च वाह्या अलक्ष्मी ।।६
ॐ उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह ।।
प्रादुर्भूतोस्मि राष्ट्रेस्मि ीर्तिंवृद्धिं ददातु मे ।।७
क्षत्पिपासामलां ज्येष्ठा मलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ।।८
गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ।।९
मनसः काममाकूतिं वाचःसत्यमशीमहि ।।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतांयश ।।१०
कर्दमेन प्रजाभूता मयि सम्भ्रमकर्दमः ।।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ।।११
आपः जन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वश मे गृहे ।।
नीचदेवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ।।१२
आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम् ।।
चंद्रां हिरण्यमयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ।।१३
आर्द्रां पुष्पकरिणीं पुष्टिं सुवर्णां हेममलिनोम् ।।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह ।।१४
ताम्म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विंदेयंपुरुषानहम् ।।१५
यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।।
श्रियः पञ्चदर्शंच च श्रीकामः सततं जपेत् ।।१६

सरस्वती सूक्त

इस सूक्त के मन्त्रों का गठन कुछ इस चमत्कारी ढङ्ग से हुआ है कि इनका प्रभाव मानसिक शक्तियों पर होता है। परिणाम स्वरूप इनका विकास होता है, मस्तिष्क स्वस्थ, प्रखर व शक्ति सम्पन्न बनता

है और बुद्धि की वृद्धि होती है। पाठ के साथ हवन भी करना चाहिये। मन्त्र इस प्रकार हैं:—

ॐ अविन मेषो नसि वीयार्य प्राणस्य पन्थाऽअमृतोग्रहाभ्याम् ॥ सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं बर्हिर्वदरैर्जजजान ॥१

अङ्गान्यात्मन् भिषजा तदश्विनात्मा न मङ्गैः समधान सरस्वती । इन्द्रस्यरूप ँ शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानाः ॥२

सरस्वती योन्यांगर्भमन्तरश्विभ्यां पत्नी सुकृतविभर्ति अपाँरसेन वरुणो न साम्नेन्द्रँश्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥३

तेजः पशूनँहविरिद्रि यावत् परिस्रुता पयसा सारधं मधु । अश्विभ्यां दुग्ध भिषजा सरस्वत्या सुतासुताभ्याम मृतः सोम इन्दुः ॥४

पावका नः सरस्वती वाजे भिर्वा जिनीवती । यज्ञं वष्टुधिय वसुः ॥५

चोदयित्री सूनृतानां चेतती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती ॥६

महोऽअर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना । धियोविश्वा विराजति ॥७

प्राणो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीं वती । धीनामविश्र्यवतु ॥८

त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि । रदा पूषेव नः सनिम् ॥९

आप प्रुषो पार्थिवान्युरूरजो अन्तरिक्षम् । सरस्वतीनिदस्पातु ॥१०

अम्वितमे नदी तमे सरस्वती । अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्ति मम्ब न स्कृधि ॥११

संप्रज्ञान सूक्त

इसकी साधना उच्च कक्षाओं में प्रविष्ट विद्यार्थियों के के लिए, शोध कार्यों में संलग्न शोधार्थियों के लिए अथवा तत्वचिन्तन सम्बन्धी गवेषणा करने वाले लेखकों को करनी चाहिये। इससे विज्ञान के मानसिक कोषों का विकास होता है, गम्भीर चिन्तन की क्षमता बढ़ती है, दर्शन सम्बन्धी उलझी गुत्थियों को सुलझाने की बुद्धि का विकास होता है। नई मौलिक सूझ-बूझ से ओत-प्रोत रचनाओं के आकांक्षी इसे अवश्य करें। पाठ और हवन दोनों होने चाहिए।

मन्त्र इस प्रकार है:—

शिशुं नत्वा जेन्यं वययन्ती माता विभर्ति सचनस्यमाना। धनोरधि प्रवता यासि हर्यञ्जि गीषसे पशुरिवावसृष्टः ॥१

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैद ँ सनाभिः। यत्सु रामं व्यपिवः शचोभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक ॥२

पिता नोऽसि पिता नो बोधि नमस्ते मा मा हि ँ सिः त्वष्टमन्तस्वा समेप पुत्रान्। पशून् मयि धेहि प्रजामस्मासु धेह्य-रिष्टाह ँ सह पत्या भूयासम् ॥३

पुत्र मिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैद सनाभिः। यत्सुरामं व्यपिवः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥४

ॐ पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्य श्नुतः उभा हिर-ण्यपेशसा ॥५

ॐ अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीडयो नूतनैरुत। स देवाँ एह बक्षति ॥६

ॐ प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः। यदव्य एषि सानवि ॥७

ॐ मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेनां यज्ञमिष्टये। नि र्वर्हिषि सदतां सोमपीतये ॥८

ॐ शिशुर्न जातोऽव चक्रदद्वने स्वर्यद्वाज्यरुष सिषासति। दिवो रेतसा सचते पयोवृधा तमीमहे सुमतो शर्म सप्रथः ॥९

ॐ शिशु जज्ञान हरि मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥१०

ॐ शिशु जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्मि वह्नि मरुतो गगेन। कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सनसोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥११

सविता सूक्त

इसके पाठ व हवन से उत्पादन शक्ति की वृद्धि होती है, चेतना, ज्ञान और मेधा का विकास होता है। इसकी विशेषता ऋतम्भरा प्रज्ञा से साधक को समुन्नत करना है। जब साधक में सत्य से ओत-प्रोत बुद्धि का विकास होता है तभी वह आत्म कल्याण व आत्मोत्थान के पथ पर अग्रसर हो सकता है। इस सूक्त से यह कार्य कुशलतापूर्वक हो सकता है। मन्त्र इस प्रकार है:—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आदेद नार्यसीदमह ँ रक्षसां ग्रीवाऽआपि क्रुन्तामि। बृहन्नसि बृहद्रवा ब्रहतीमिन्द्राय वाचं वद ॥१

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्यां पूष्णो हस्तभ्याम्। आददे नार्यसीदमहँ रक्षसां ग्रीवाऽअपिकृन्तामि। वयोऽसि यवयास्मद् द्वेषो यवरातीर्दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्तांल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि ॥२

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् आददे नार्यसीदमहँ रक्षसां ग्रीवाऽअपिकृन्तामि यथोऽसि यवया-

स्मद्द्वेषो यवयारातीर्दिवेत्वान्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि ।।३

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् अग्नीषोभ्यां जुष्टं नियुनज्मि । अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योऽनु त्वा माता मन्युतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूत्थ्यः अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ।।४

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् आददे रावासि गभीरमिममध्वरं कृधोन्द्राय सुषूतमम् उत्तमेन पविनोर्ज्जस्वन्तं निग्राभ्या स्थ देवश्रुतस्तर्प्पयत मा ।।५

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे ऽध्वरकृतं देवेभ्यऽइन्द्रस्य वाहुरसिदक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा द्विषतो वधः ।।६

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् आददेऽदित्यैरास्नासि ।।७

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् आददे गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वत्पृथिव्या सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभर ष्टुशुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ।।८

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वत् खनामि । ज्योतिष्मन्तं त्वाग्ने सुप्रतीकमजस्रेण भानुना दीद्यतम् । शिवं प्रजाभ्योऽहि ँ सन्तं पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुनीष्यमङ्गिरस्वत् खनामः ।।९

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ।।१०

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभि । षिञ्चामीन्द्रयेण वलाय श्रियैयशसेऽभि षिञ्चामि । ११

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् सरस्वत्यै वाचा यन्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ ।।१२

रेवस्य त्वा सवितुः प्रसवेश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् उपा ँ शोर्वीर्येण जहोमि हत ँ रक्षः स्वाहा रक्षसां त्वा वधायावधिष्म रक्षोऽवधिष्यामुमसौहतः ।।१२

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् यं वपामि समापऽणोषधीभिः समोषधयो रसेन स ँ रेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ता ँ स मधुमतीर्मधुमती भः पृच्यन्ताम् ।।१४

देवस्य सवितुर्मतिमासवं विश्वदेव्यम् । धिया भग मनामहे ।।१५

वरुण सूक्त

वरुण जल का देवता है। जल एक व्यापक तत्व है। मानव शरीर, वनस्पतियों से लेकर ब्रह्माण्ड तक में इसका निवास है। यह केवल पृथ्वी में ही नहीं वरन् अन्तरिक्ष और द्युलोक में भी इसका निवास है।

वेद इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। ऋग्वेद (१।१३।१७) में कहा है "जो जल सूर्य के पास स्थित हैं, अथवा सूर्य जिनके साथ है, वह हमारे यज्ञ को सींचें।" इसमें द्युलोक स्थित जल का वर्णन है। ऋग्वेद के सातवें मण्डल के ४६वें सारे सूक्त में अन्तरिक्ष जल का उल्लेख है "जल देवता अन्तरिक्ष में आते हैं। इन्द्र ने जिन्हें मुक्त किया, वे जल हमारे रक्षक हों" (१)। "अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाले जल, नदी में प्रवाहित या कूप रूप में खोद कर निकाले गये जल और समुद्र की ओर जाते हुये जल, यह सब हमारे रक्षक हों" (२)। "जिन जलों के स्वामी वरुण मध्य लोक में गमन करते हैं, वे प्रकाश युक्त, रस-

सम्पन्न जल हमारे रक्षक हों" (३)। "जिन जलों में वरुण और सोम निवास करते हैं, जिनके अन्न से विश्वेदेवा प्रसन्न होते हैं और जिनमें वैश्वानर अग्नि का निवास है, वे जल देवता हमारे रक्षक हैं" (४)। अथर्ववेद के राज्याभिषेक सूक्त में कहा है "हे राजन ! जो स्वर्गस्थ जल प्राणियों को तृप्तिकार हैं, जो जल पृथ्वी और अन्तरिक्ष में हैं, उन लोकत्रय में व्याप्त जलों के अपरिमित पराक्रम वाले रस से तुझे अभिषिक्त करता हूँ" (४।८।५)।

इससे सिद्ध है कि पृथ्वी, अन्तरिक्ष ओर द्यु-तीनों लोकों में जल का निवास रहता है। पृथ्वी और अन्तरिक्ष में जल को हम देखते ही हैं, द्युलोक के जल पर विश्वास नहीं होता। वेद ने ही इसके वैज्ञानिक रहस्य को खोला है। अथर्ववेद (१।३३।१) में कहा है "जो जल अत्यन्त रमणीय और सुन्दर वर्ण वाला, पवित्रताप्रद है, और जिससे सूर्य उत्पन्न हुये हैं, जिससे मेघस्थ और समुद्रस्थ जल में विद्युत और बड़वानल उत्पन्न होता है, जो अग्निगर्भा है, वे सब प्रकार के जल हमारे रोगादि को दूर करके हमें सुख प्रदान करने वाले हों।" इसमें कहा है कि जल में अग्नि स्थित है और वह सूर्य को उत्पन्न करने वाला है। जल से उत्पन्न विद्युत के चमत्कार तो हम आज वैज्ञानिक जगत में खुले नेत्रों से देख रहे हैं। आधुनिक विज्ञान ने भी जल का विष्लेषण करके बताया है कि जल २ भाग हाईड्रोजन और १ भाग आक्सीजन से मिलकर बना है। आक्सीजन अग्नि का ही रूप है। जल से विद्युत, अग्नि और सूर्य के उत्पन्न होने का भी यही कारण है।

द्युलोक में स्थित जल ही मूल तत्व है। यही स्थूल रूप धारण करके अन्य लोकों में जाता है। यह जल अत्यन्त दिव्य और पवित्र होता है। ऋग्वेद इसका साक्षी है "हे जलो ! मुझ में स्थित पाप को बहा दो। मेरे द्रोहभाव, अपशब्द और मिथ्याचरण को प्रवाहित करो" (१।२३।२२)। बाल्मीक रामायण के गङ्गा स्तोत्र में भी गङ्गा को

दिव्य नदी मानकर उससे पवित्रता की आशा की गई है" ब्रह्माण्ड के गोले को तोड़ कर महादेव के जटाजूट में गिरने वाली, स्वर्ग से अवतरित होने वाली, सुमेरु पर्वत के पास पत्थरों से टकराने वाली, पृथ्वी पर वहने वाली, पाप नाशक, समुद्र की ओर जाने वाली यह दिव्य नहीं हमें पवित्र करे।"

जल के अन्य गुणों का भी वेद ने वर्णन किया है "जलों में अमृत है, जलों में औषध है" (१।२३।१८)। सोम के कथनानुसार जलों में औषधि तत्व है। उसने सर्व सुखदाता अग्नि और आरोग्यता देने वाले जलों का गुण वर्णन किया है" (१।२३।२८)।

व्यापक रूप से तीनों लोकों में निवास करने वाले इतनी उपयोगी वस्तु को अधिक प्राणवान बनाने के लिये वेद ने वरुण सूक्त के उपयोग की प्रेरणा दी है। इससे उत्तम वर्षा का लाभ तो होता ही है, जल में प्राण शक्ति की प्रचुरता होती है और व्यक्तिगत रूप से साधक में जल जैसी शीतलता, पवित्रता, सरसता व मृदुता उत्पन्न होती है। साधना में उच्च स्वर से पाठ व हवन दोनों होने चाहिये। मन्त्र इस प्रकार हैं:—

हिरण्यवर्णाः शुचयः पवित्राः
पावको यासु जातः कश्यपो यास्विन्द्रः।
अग्नि या गर्भं दधिरे विरूपा
स्नान आपः श ँ स्योना भवन्तु ॥१

यासां राजा वरुणो याति मध्ये
सत्यानृते अवपश्य ञ्जनानाम्।
मधुश्च्युतः शुचयो याः पावका
स्तान आपः श ँ स्योना भवन्तु ॥२

यासां देवा हि विकृण्वन्ति भक्ष्यं
या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ॥
या पृथिवीं पयसो न्दन्ति शुक्रा
स्तान आप श ँ स्योना भवन्तु ॥३
आपोहिष्ठा मयो भुव, स्तान ऊर्जे दधातनः ।
महेरणाय चक्षसे, योवः शिवतमोरसः ॥४
तस्य भाजयते ह नः, उशतीरिव मातरः ।
तस्मा अरङ्ग मामवः, यस्य क्षयाय जिन्वथ
आपोजन यथा च नः ॥५
सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रिया
स्तस्मैसन्तु । योऽस्मा न्द्रेष्टि य ञ्च वयं द्विष्मः ॥६
हिरण्यशृङ्गं वरुण प्रपद्ये तीर्थं मे देहि याचितः ।
यन्मया भुक्त मसाधूनां पापेभ्यश्च प्रतिग्रहः ॥७
यन्मे मनसा वाचा कर्मणा वा दुष्कृतं कृतम् ।
तन्नइन्द्रोवरुणोवृहस्पतिः सविता च पुनन्तु पुनः ॥८
अत्याशना दतीपाना यच्च उग्रा त्प्रतिग्रहात् ।
तन्नो वरुणो राजा पाणिना ह्यवमर्शतु ॥९
सोह मपापो विरजो निर्मुक्तो मुक्तकिल्विषः ।
नाकस्य पृष्टमारुह्य गच्छे ब्रह्मसलोकताम् ॥१०
इम्मं मे गगे यमुने सरस्वति
शतद्रु स्तोमं सचता परुष्णिया ।
असिकनिया मरुद्धधे वितस्तिया
जोकिये शृणुह्या सुषोमया ॥११
नमो ग्नयेऽप्सुमते नम इन्द्राय नमो
वरुणाय नमो वारुण्यै नामोऽद्भ्यः ॥१२

सोम सूक्त

सोम को ऋग्वेद (९।८६।४१,९।९६।२५) व कौषीतकि ब्राह्मण (७।१०) में चन्द्रमा कहा है क्योंकि इसके पान से शीतलता प्राप्त होती है। ऋग्वेद (९।५१।२,९।९७।३२) में इसे अमृत की संज्ञा दी गई है क्योंकि इसे ग्रहण करने वाला सदैव निरोगी रहता है, रोग और व्याधि उसके पास फटकने भी नहीं पातीं। शतपथ (५।१।३।७) में इसे प्रजापति कहा है क्योंकि यह नई शक्तियों का सृजन करता है। शतपथ (१२।७।३।१३) में इसे दुग्ध कहा गया है क्योंकि उसकी तरह पोषण का गुण रखता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।४।७।४-५) में सोम को सुवर्ण कहा है। सुवर्ण का गुण स्वास्थ्य की स्थिरता व सुदृढ़ता है। सोम भी यही करता है। ब्राह्मणों में सोम के अन्न, प्राण, हवि, यश, वर्च, रस, शुक्र, राजा, वायु, ब्राह्मण पुरुष आदि अर्थ किये गये हैं जिनसे यही प्रतिध्वनि निकलती है।

कौषीतकि व तैत्तिरीय ब्राह्मण में सोम को रेत या वीर्य कहा गया है (रेतो वै सोमः)। वीर्य शरीर का सबसे अधिक मूल्यवान तत्व है। शक्ति की स्थिरता का यही मूलाधार है। इसकी सुरक्षा शक्ति की सिद्धि है और क्षय ही रोग, निर्बलता, दुःख को निमन्त्रण देती है। यह प्राणों को पुष्ठि करने वाला आवश्यक तत्व है। इसकी सुरक्षा और क्षय दोनों मस्तिष्क रूपी केन्द्र से होते हैं क्योंकि अच्छे और बुरे दोनों तरह के विचारों का सृजन यही से होता है, सन्त और डाकू बनाने का श्रेय इसी केन्द्र को है। यह शरीर का राजा है। इसी लिये अथर्व (९।७।२) में मस्तिष्क का राजा सोम कहा गया है। इसके पोषण से सारे शरीर का पोषण सम्बन्धित है। सारे शरीर की नस नाड़ियाँ इससे जुड़ी हुई हैं।

ऋग्वेद (९।६४।६) में कहा है "हविदाता यजमान के निमित्त

दिव्य, पार्थिव और अन्तरिक्ष के सब दानों को यह सोम वृष्टि करें।" ऋग्वेद (९।६६।८) में कहा है "हे सोम ! तुम हमको अन्तरिक्ष से सब रूप के अन्नों को भेजो और विभिन्न रत्नादि भी हमें प्रदान करो।" ऋग्वेद (९।६३।६७) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "भगवान सोम स्वर्ग से और अन्तरिक्ष से पृथ्वी के श्रङ्गों पर आता है।" ऋग्वेद (९।५।१।२) में इसे द्यौलोक का अमृत कहा गया है, इस तरह से यह तीनों लोकों में व्याप्त है। तीनों लोकों का पोषण तत्व है।

ऋग्वेद (९।७१।७) में सोम को 'त्रिपुष्ट' कहा गया है। इसका अभिप्राय पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौलोक से है क्योंकि यह तीनों लोकों में व्याप्त है। ऋग्वेद (९।६७।२६) में तीन तरह के तेजों का वर्णन है। मस्तिष्क का राजा सोम कहा ही गया है (अर्थात् ९।७।८)। मस्तिष्क के भी तीन भाग हैं। पहला ऊगरी भाग जिसे सेरीब्रम (Cereburm) कहते हैं। बीच वाला मस्तिष्क जिसे मेडूला ओबलोंगेटा (Medulla Oblongata। कहते हैं। तीसरा भाग मेरुदण्ड या केन्द्रीय नाड़ी जल (Spinal Column) सोम की पुष्टि से यही अभिप्राय है। इस रूप में मेरुदण्ड को पृथ्वी, बीच वाले मस्तिष्क अन्तरिक्ष और ऊपरी मस्तिष्क को द्युलोक समझना चाहिये।

अत: सोम सूक्त के पाठ व हवन की साधना से चन्द्रमा जैसी शान्ति, शीतलता, सिंचन, उत्तेजना, द्वेष और क्रोध की शान्ति होती है। शरीर में पोषक तत्वों की वृद्धि होने से साधक सदैव निरोग रहता है और मस्तिष्क का पोषण होने से वह नई शक्तियों के सृजन की क्षमता प्राप्त करता है। मन्त्र इस प्रकार है:—

सोमं गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः सुमृणीको न आविश ।।१

सोमयास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे। ताभिर्नोऽविता भव ।।२

सोमरारन्धि नोहृदि गावो न यवसेष्वा। मर्य इवस्व ओक्ये ॥३

सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थ विदथे यजध्यै। देवाँ आच्छादीद्ययुञ्जे अद्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ॥४

सोममिन्द्रा बृहस्पतिं पिवतं दाशुषो गृहे। मादयेथां तदोकसा ॥५

सोममन्यउपासदत्पातवे चम्वोः सुतम्। करम्भमन्य इच्छति ॥६

सोम राजन् मृलया नः स्वस्ति तव स्मसि व्रत्या स्तस्य-विद्धि। अलर्ति दक्ष उतमन्युरिन्द्रो मानो अर्यो अनुकामं परादाः ॥७

सोम इद्धः सुतो अस्तु कलपो मा विभीतन, अपेदेष ध्वस्मा-यति स्वयं घैषो अपायति ॥८

सोमस्य मित्रा वरूणोदिमा सूर आददे। तदातुरभ्यभेष-जम् ॥९

सोमस्मधारा पवते नृचक्षस ऋतेन देवान्हवतेदिवस्परि। बृहस्पते रवथेना विदिद्युतेसमुद्रासो न सवनानिविव्यचुः ॥१०

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः। जनिताग्नेर्जनितासूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥११

सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रामतिभिः पृच्छ-मानाः। सोमः सुतः पूयते आज्यमानः। सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥१२

सोम उषुवाणः सोतृभि रधिष्ठुभिरवीनाम्। अश्वमेव हरिता यातिधारया मन्द्रया याति धारया ॥१३

सोमंमन्यते पपिवान्यत्संपिषन्त्योषधिम्। सोमं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ॥१४

सोमं राजान मवसेऽग्नि गीर्भिर्हवामहे। आदित्यान्विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥१५

सोमएकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते। येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१६

सोमस्यराज्ञो वरुणस्य धर्माणि बृहस्पतेरनु मत्या उशर्मणि। तवाहमद्यमघवन्नु पस्तु तौ धार्तविधातः कलशां अभक्षयम् ॥१७

यम सूक्त

पुराणों में यम के जो १४ नाम उपलब्ध होते हैं, उनमें यम, काल, सर्वभूत क्षय, मृत्यु, धर्मराज, चित्रगुप्त प्रमुख हैं। यम को काल भी कहते हैं। काल समय का पर्यायवाची है। यम का एक नाम वैवस्वत भी है जो सूर्य का पुत्र है। एक दिन और रात में २४ घण्टे होते हैं। भारतीय समय के अनुसार एक दिन व रात्रि ८ पहरों में विभक्त है। इस आठवें भाग अर्थात् ३ गण्टे को एक याम भी कहा जाता है जिससे उसका समय से स्पष्ट सम्बन्ध दिखाई देता है।

कौषीतकि ब्राह्मण २।६, श० ब्रा० १०।४।३।२, १०।२।४।३, १४।१।१।२७, १४।१।३।४, यजुर्वेद ३७।११, जैमनीय ब्रा० १।६, १।२७, जैमिनीय उपनिषद् ब्रा० ४।५।१, ऋग्वेद १०।१३५।७, निरुक्त १२।२९ में भी समय के विभाग दिन रात्रि, वर्ष मास आदि को मृत्यु का दूत कहा गया है और इनका कारण सूर्य को बताया है क्योंकि समय का विभाजन वही करता है, दिन और रात्रि का निर्णय करने वाला वही है। इसलिए अनेकों स्थनों पर सूर्य को भी यम कहा गया है। इसीलिये हिन्दू धर्म शास्त्रों में स्थान २ पर आदेश मिलते हैं कि यह समय बड़ा मूल्यवान है। एक क्षण भी व्यर्थ के कार्यों में नहीं गंवाना चाहिये। हर समय प्रभु का स्मरण करते रहना चाहिये

ताकि विवेक बना रहे और वृत्तियाँ ऊर्ध्वगामी हों, मन इन्द्रिय लोलुप न हों साधक कुमार्गगामी न हों, वह पाप व अत्याचार करने के लिये प्रवृत्त न हों, वह पुण्यकर्मा हों, सभी प्राणियों में अपने इष्टदेव के दर्शन करने वाले हों। अनुचित कार्यों से ही सदैव भय की उत्पत्ति होती है, सत्कर्म करते हुये वह सदैव निर्भय रहें मृत्यु से अधिकांश प्राणी डरते हैं। इसलिये कि उस समय उनके सामने आ जाता है और जो बुरे कर्म उसने किए हैं. उसकी याद आते ही वह काँपने लगता है। उसके विपरीत जो जीव सद्कर्मों में ही रत रहा है, उसे मृत्यु से कोई भय नहीं लगता। वह तो समझता है कि शरीर आत्मा का एक वस्त्र मात्र है, इसके बदलने में भय कैसा ? वह साहसपूर्वक मृत्यु के पास जाता है और समय आने पर उससे संघर्ष भी करता है। सावित्री की कथा इसी निर्भयता की प्रतीक है कि पुण्य कर्म करने वालों को यमराज से कुछ भी भय नहीं होता। यमराज तो पापियों को भी भयङ्कर लगते हैं।

समय निरन्तर व्यतीत हो रहा है। एक दिन हममें से प्रत्येक को यमराज के पास उपस्थित होना है। इसकी पूर्व तैयारी के लिए हमारे शास्त्रों के आदेश हैं कि सद्कर्म करो और सावित्री की तरह वरदान लो अन्यथा नरक के भयावने दृश्य तो देखने ही होंगे। यमराज अर्थात्—समय निरन्तर यह चेतावनी देते रहते हैं कि समय का सदुपयोग करो और एक क्षण भी व्यर्थ के कार्यों में न गँवाओ।

यम सूक्त के पाठ व हवन से समय के सदुपयोग व सत्कर्म करने की प्रबल प्रेरणा मिलती है ताकि जीवन में नियमबद्धता आये. आत्म संयम की वृद्धि हो और काल ग्रास से परित्रण मिले। मन्त्र इस प्रकार हैं:—

यम वध्नाद् बृहस्पतिर्मणि फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिर

मोजसे । तमग्निः प्रत्यमृञ्च ः सोअस्मै दुह आज्यं भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विष तो जहि ॥१

यम वध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुत मुग्रं खदिर मोजसे । तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चतौ जमे वीर्यापक्रम् । सो अस्मै वलमिद् दूहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥२

यमवध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फाल घृतश्चुत मुग्रं खदिर मोजसे । तं सूर्यः प्रत्यमुञ्चत तेनेमा अजयद् दिशः । सो अस्मै भूतिमिद दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥३

यमवध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुत मुग्रं खदिर मोजसे । तं सोमः प्रत्यमुञ्चत मवे श्रोत्राय चक्षसे । सो अस्मै वर्च इद् दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्वतेन त्वं द्विषतो जहि ॥४

यमवध्नाद् बृहस्पतिर्मणि फालं घृतश्चुत मुग्रं खदिर मोजसे तं । विभ्रच्चन्द्रमामणिसुराणांपुरोऽजयद्दानवानां हिरण्ययीः । सो अस्मै श्रियमिद् दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥५

यमवध्नाद् बृहस्पतिर्वातायमणि माशवे । सो अस्मै वाजिनं दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥६

यमवध्नाद् बृहस्पति र्वातायमणिमाशवे तेनेमां मणिना कृणिमश्विनावभि रक्षतः । सभिषगभ्यां महो दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेत त्वं द्विषतो जहि ॥७

यमवध्नाद् बृहस्पतिर्वातायमणिमाशवे । तंविभ्रत सविता मणिं तेनेमदमजपत् स्वः । सो अस्मै सूनृतां दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥८

यमवध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तमापो विभ्रती-र्मणिं सदाधावन्त्यक्षिताः । स आभ्योऽमृतमिद् दुहे भूयोभूय श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥९

यमवध्नाद् बृहस्पतिर्वातायमणिमाशवे । तंराजा वरुणोमणिं प्रत्यमुञ्चत शंभुवम् । सो अस्मै सत्यमिद् दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१०

यमवध्नाद् बृहस्पतिर्वातायमणिमाशवे । तं देवा विभ्रतोमणिं सर्वांल्लोकान् प्रधाजयन् । सएभ्यो जितिमिद् दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ।।११

यमवध्नाद् बृहस्पतिर्वातायमणिमाशवे । तमिमं देवता मणिं प्रत्यमुञ्चत शंभुवम् । स आभ्यो विश्वमिद् दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१२

यमवध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । समायं मणिरागमद् रसेन सह वर्चसा ॥१३

यमवध्नाद् बृहस्पति र्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । समायं मणिरामत् सह गोभिरजाविभिरन्नेन प्रजया सह ॥१४

यमवध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । समायं मणिरागमत् सह व्रीहि यवाभ्यांमहसाभूत्या सह ॥१५

यमवध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । समायं मणिरागमन्मधोर्घृतस्य धारया कीलालेन मणिः सह ॥१६

यमवध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । समायं मणिरागमदूर्जया पयसासह द्रविणेन श्रिया सह ॥१७

यमदेध्वाद् बृहस्पतिर्देवेभ्य असुरक्षितिम् ।समायं मणिरागमत् तेजसा त्विष्या सह यशसा कीर्त्यासह ॥१८

यमवध्नाद् बृहस्पतिर्देभ्यो असुरक्षितिम् । समायं मणिरागमत् सर्वाभिर्भूतिभिः सह ।।१९

पितृ सूक्त

निकट सम्बन्धी जब इस पञ्चभौतिक शरीर को छोड़ देते हैं तो उनकी पितृ संज्ञा हो जाती है। वह अपने कर्मों के अनुसार सूक्ष्म

लोकों में विचरण करते रहते हैं। वे सूक्ष्म शरीर धारण किये रहते हैं। स्थूल शरीर के त्याग देने पर काफी बोझ हल्का हो जाता है। सूक्ष्म होने के कारण सूक्ष्म लोकों में आने जाने और घूमने की उन्हें क्षमता प्राप्त हो जाती है। हम उन्हें नहीं देख सकते परन्तु वह हमारी गति-विधियों को भली प्रकार देख सकते हैं। श्राद्ध में वह अपना भाग ग्रहण करने आते हैं। गरुड़ पुराण में कहा है "पितर वायु रूप होकर श्राद्ध की अभिलाषा से आते हैं"। पितर सूक्ष्म होते हैं। वह निश्चित रूपसे हमारे स्थूल आहार को ग्रहण नहीं करसकते, वह तो स्थूल अन्न के माध्यम से व्यक्त की गई भावना और श्रद्धा से पीकर तृप्त होते हैं। छान्दोग्योपनिषद् (३-६-१) में कहा है कि देवगण व भक्षणकरते हैं और न पीते हैं, वे इस अमृत को अनुभव करके तृप्त हो जाते हैं।" यही बात सूक्ष्म पितरों पर लागू होती है।

पितृ सूक्त का पाठ व हवन एक प्रकार का उत्तम श्राद्ध है। इससे पितृगणों को प्रसन्नता प्राप्त होती है और परलोक में उन्हें शान्ति व सद्गति मिलती है। पितृ सूक्त के मन्त्र इस प्रकार हैं:—

ॐ उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञातस्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥१

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।
तेषांवय ँ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥२

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः।
अस्मिन्यज्ञे स्वधया मन्दन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥३

ऊर्जं वन्हतीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्। स्वधास्थ तर्पयत मे पितृन् ॥४

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। अक्षन्पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्व ॥५

ये चेह पितरो ये च नेह यांश्च विद्म याँ २ ।। उ च न प्रविद्द्म त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञ ँ सुकृतं जुषस्व ।।६

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नः सन्त्वो-षधीः ।।७

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव ँ रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ।।८

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुआँऽअस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ।।९

नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहन्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः पितरो वास आधत्त ।।१०

नवग्रह सूक्त

नवग्रहों के अशुभ परिणामों को अनुकूल बनाने के लिये इस सूक्त का पाठ विशेष प्रकार से लाभदायक सिद्ध होता है। मन्त्र इस प्रकार है:

सूर्य मंत्र :

ॐ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च । हिरण्ययेन सविता रथेन देवो याति भवनानि पश्यन् ।।१

चन्द्र मन्त्र :

ॐ इमं देव असपत्न ँ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्येष्ठाय महते ज्यान राज्यायेंद्रस्यें द्रियाय इमम-मुख्यः । पुत्रममुष्यै पुत्र-मह्यै विष एष वोमीराजा सोमोस्माकं ब्राह्मणना ग्वं राजा ।।२

भौम मन्त्र :

ॐ अग्निमूर्धादिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपा ग्वं रेता ग्वं सिजिन्वधि ॥३

बुध मन्त्र—

ॐ उद्‌बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहित्वमिष्टा पूर्ते स ग्वं स्रजेथा मयं च । अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥४

गुरु मन्त्र—

ॐ बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु । यद्दीदयच्छ वसऋत प्रजाततदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥५

भृगु मन्त्र—

ॐ अन्नात् परिश्रुतो रसं ब्रह्मणा । व्यपि वत्क्षत्रं पयः सोमे प्रजापतिः मृतेन सत्यमिद्रियं । विपान त्वं शुक्रमंधस एन्द्रस्येद्रियमृतंपयोमृतंमधुः ॥६

शनि मन्त्र—

ॐ शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥७

राहु मन्त्र—

ॐ कयानश्चित्रऽआभुव द्वती । सदा वृधः सखा कया सचिष्टयावृत ॥८

केतु मन्त्र—

ॐ केतुं कृण्वन्न केतवो पेशोमर्या अपेशसे समुवद्भिरजायतः ॥९

विजय सूक्त

मुकदमे. चुनाव, परीक्षा या जीवन के किसी भी क्षेत्र में जब पराजय की अनुभूति होने लगे तो उसे विजय में बदलने के लिए विजय सूक्त का पाठ व हवन अचूक अस्त्र का सा काम करता है । किसी भी कार्य में विजय और सफलता प्राप्ति के लिये इसके नित्य प्रति ११ पाठ करने चाहिये ।

मन्त्र इस प्रकार है—

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं मृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्ययणममुष्याः पुत्रमसौयः । सग्राह्याः पाशान्मामोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयादमीमेनमधराञ्च पादयामि ।।१

जितमास्माकमुद्भिन्नमास्माक मृतमास्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरमास्माकं यज्ञो ३स्माक पशवोस्माकंप्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौयः । सोऽभूतया पाशान्मामोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि ।।२

जितमास्माकमुद्भिन्नमास्माक मृतमास्माकं तेजोस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरमाकं यज्ञो ३ ऽस्माकं पशवोऽस्माकं वीरा अस्माकम् तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायण ममुष्याः पुत्रमसौयः । सोऽभूत्याः पाशान्मामोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामीदमेनमध राञ्चं पादयामि ।।३

जितमास्माक मुद्भिन्नमास्माकमृतस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो ३ ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजाऽस्माकं

वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायण ममुष्याः पुत्रमसौयः । सनिर्भूत्याः पाशान्मामोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो ३ ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायण-ममुष्याः पुत्रमसौयः । स पराभूत्याः पाशान्तमोचि । तस्येद वर्च-स्तेजः प्राणमायुनिवेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥५

जितमस्मा मुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो ३ ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्मा-कं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौतः । सदेवजातीनां पाशान्मामाचि । तस्येद वचस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥६

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो ३ ऽस्माकं पशावोस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायण-ममुष्या पुत्रमसौतः । स बृहस्पतः पाशान्मामोची । तस्येदं वर्च-स्तेजः प्राणमायुर्निवेष्ठयामीदनेनमनधराञ्चं पादयामि ॥७

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं मृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मस्माकं स्वरस्माकं यज्ञो ३ ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायण-ममुष्या पुत्रमसौयः । प्रजापतेः पाशान्मा माचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥८

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं मृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर स्माकं यज्ञो ३ ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा

अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायण-ममुष्याः पुत्रमसौयः । स ऋषीणां पाशान्मामोचि । तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।।९

जितमस्माक मुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माक स्वरस्माकं यज्ञो ३ स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्र-मसौयः स आर्षेयाणां पाशान्मामोचितस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।।१०

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकंमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो ३ ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायण-मायुष्याः पुत्रमसौयः । सोऽङ्गिरसां पाशान्मामोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।।११

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजाअस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौयः स अङ्गिरसानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयमि ।।१२

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं मृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माक स्वरस्माक यज्ञो ३ स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौयः । सोऽभूत्याः पाशान्मामोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राण-मायुर्निवेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।।१३

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं मृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो ३ ऽस्म कं पशवोऽस्माकं प्रजाअस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः

पुत्रमसौय: । स अथर्वणानांपाशान्मामोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।।१४

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो ३ ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौय: । स वनस्पतीनां पाशान्मामोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।।१५

जितमस्मा मुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माक स्वरस्माकं यज्ञो ३ ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौय: । स वानस्पत्यानां पाशान्मामोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।।१६

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो ३ ऽस्माकं पशवोस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्या पुत्रमसौय: । स ऋतूनां पाशान्मामोची । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्ठयामीदमेनमनधराञ्चं पादयामि ।।१७

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं मृतमस्माकं तेजोऽस्माक ब्रह्मस्माकं स्वरस्माकं यज्ञो ३ ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्या पुत्रमसौय: । स आर्तवनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।।१८

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं मृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर स्माकं यज्ञो ३ ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायण-

ममुष्याः पुत्रमसौयः। स मसानां पाशान्मामोचि। तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।।१६

जितमस्माकं मुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो ३ स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्र-मसौयः स सोऽर्धमासानां पाशान्मामोचितस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमा-युर्निवेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।।२०

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकंमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो ३ ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायण-ममुष्याः पुत्रमसौयः। सोऽहोरात्रयो पाशान्मामोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।।२१

जितमस्माकंमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञा ऽ स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजाअस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौयः सोह्नो.सयतोः पाशान्मामोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयमि ।।२२

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं मृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो ३ स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौयः। सद्यावा पृथिव्योः पाशान्मामोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।।१३

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं मृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो ३ ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजाअस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः

पुत्रमसौयः। स सइन्द्राग्न्योः पाशान्मामोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि ॥२४

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माक मृतमस्माकं तेजोऽस्माकं यज्ञो ३ स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमाष्ययाणममुष्याः पुत्रमसौयः। स समित्रावरुणयो पाशान्मामोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामीमेनमधराञ्च पादयामि ॥२५

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माक मृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरमास्माकं यज्ञो ३स्माकं पशवोस्माकंप्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौयः। स राज्ञोवरुणस्य पाशान्मामोचि। तस्येदं वचस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि ॥२६

जितमास्माकमुद्भिन्नमास्माक मृतमास्माकं तेजोस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरमाकं यज्ञो ३ ऽस्माकं पशवोऽस्माकं वीरा अस्माकम् तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायण ममुष्याः पुत्रसमौयः। स मृत्योःषड्वीशात् पाशान्मामोचि। तस्तेदं वचस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामीदमेनमध राञ्चं पादयामि ॥२७

जितमास्माकमुद्भिन्नमास्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना आरतीः। तदग्निराहतदुसोम आ हपूषामाधात् सुकृतस्य लोके अगन्म स्वः स्वरगन्म ऱ सूर्यस्य ज्योति षागन्म। वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान् भूयास वसुमयिधेहि ॥२८

संरक्षण सूक्त

विरोधी लोग जब हर प्रकार से हानि पहुँचाने पर तुले हुए हों, अपनी शक्ति व सहयोगियों पर भी पूरा भरोसा न रह गया हो और

अरक्षा की सी स्थिति का आभास हो रहा हो तो संरक्षण सूक्त का नित्य निरन्तर पाठ करना चाहिए। इससे सुरक्षा के वातावरण का सृजन होता है। पाठ के बाद हवन भी होना चाहिए।

मन्त्र इस प्रकार हैं:—

रक्षसां भगोऽसि निरस्त ँ रक्षऽइदमह ँ रक्षोऽभितिष्ठामीदमह ँ रक्षोऽववाधऽइदमह ँ रक्षोऽधमं तमो नयामि घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथां वायो वे स्तोकानमग्निराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृतेऽऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम् ॥१

रक्षोहण वलगहनं वैष्णावीमिदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे निष्टयो यममात्यो निचखानेदमह तं वलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि य मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्निचखानेदमह तं वलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसजातो निचखानोक्कृत्याङ्किरामि ॥२

रक्षोहणो वो बलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान्रक्षोहणो वो वलगहनोऽवनयामि वैष्णावान्रक्षोहणो वो वलगहनोऽवस्तुणामि वैष्णवान्रक्षणो वां वलगहनाऽउपदधामि वैष्णवी रक्षोहणै वां वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवा स्थ ॥३

आयुर्विश्वायुः परि पातु त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात्। यत्रासते सुकृतो यत्र त ईयुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥४

आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥५

आयुषायुः कृतां जीवायुष्मान् जीव मामृथाः। प्राणेनात्मन्वतां जीव मृत्योरुदगा वशम् ॥६

आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनाँ अनु ॥७

आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे तदाञ्जन त्वं शंताते शमापो अभय कृतम् ।।८

आयुष्मतामायुष्कृतां प्राणेन जीव मा मृथाः । व्यऽहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ।।९

प्राण सामत् पर्यावृतो न सदन्यो भविष्यसि । अपां गर्भमिव जीवसे प्राग बध्नामि त्वा मयि ।।१०

प्राण माहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते । प्राणे ह भूतं भव्य च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ।।११

प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते । यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते ।।१२

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या । उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ।।१३

इदं पितृभ्यो नमोऽअस्त्वद्य ये पूर्वासो यऽउपरासऽईयुः । ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं ॅ सुवृजनासु विक्ष ।।१४

बाह्य शान्ति सूक्त

नौकरी, व्यापार, मुकदमा, परीक्षा में असफलता, शत्रुओं की वृद्धि पति–पत्नी, भाई–भाई के झगड़े के कारण मन में अशान्ति हो या सामाजिक, राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय उलझनों के कारण उपद्रव व अशान्ति उत्पन्न हो रही हो तो बाह्य शान्ति सूक्त की साधना उसके निवारण में सहायक होती है। इसका नित्य पाठ अपेक्षित है। पाठ के साथ हवन भी होना चाहिए।

नमो वः पितरो यच्छिवं तस्मै नमो वः पितरो यतृस्योनंतस्मै ।
नमो वः पितरः स्वधा वः पितरः ।।१

नमोऽस्तु ते निर्ऋतु तिग्मतेजोऽयस्मयान् विचृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ।।२

नमोऽस्त्वसिताय नमस्तिरश्चिराजये ।
स्वजाय बभ्रवे नमो नमो देवजनेभ्यः ॥३
नमः शीताय तक्मने नमो रूपाय शोचिषे कृणोमि ।
यो अन्येद्युरुभद्युरभ्येति तृतीयकाय नमो अस्तु तक्मने ॥४
नमस्तेऽधिवाकाय परावाकाय ते नमः ।
सुमत्यै मृत्यो ते नमो दुर्मत्यै त इदं नमः ॥५
नमस्ते यातुधानेभ्यो नमस्ते भेषजेभ्यः ।
नमस्ते मृत्यो सूलेभ्यो ब्राह्मणेभ्य इदं ममः ॥६
नमोदेववधेभ्यो नमो राजवधेभ्यः ।
अथो ये विश्वानां वधास्तेभ्यो मृत्यो नमोऽस्तुते ॥७
नमस्ते अस्तु नारदानुष्ठु विदुषे वशा ।
कसमासां भीमतमा यामदत्वा पराभवेत् ॥८
नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूडाशे अस्यसि ॥९
नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥१०
नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥११
नमस्ते जायमानायै जाताय उत ते नमः ।
वालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः ॥१२
नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥१३
नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते ।
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै न इदं नमः ॥१४
नसमते राजन् वरुणास्तु मन्यवे विश्वं ह्युग्र निचिकेषि दुग्धम् ।
सहस्रमन्यान प्रसुवामि साकं शतं जीवति शरदस्तवायम् ॥१५

नमस्ते रुद्रास्यते नमः प्रतिहितायै ।
नमो विसृज्यमानायै नमो निपतितायै ।।१६
नमस्ते लाङ्गलेभ्यो नमा ईषायुगेभ्यः ।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यपू क्षेत्रियमुच्छतु ।।१७
नमो गन्धर्वस्य नमास्ते नमो भामय चक्षुषे च कृण्म् ।
विश्वावसो ब्रह्मणा ते नमोऽभि जाया अप्सरसः परेहि ।।१८
नमो यमाय नमो अस्तु मृत्यवे नमः पितृभ्य उतये नयन्ति ।
उत्पारणस्य यो वेद तमग्नि पुरो दधेऽस्मा अरिष्टतातेय ।।१६
नमो रुद्राय नमो अस्तु तक्मने नमो राज्ञे वरुणाय त्विषीमतो ।
नमो दिवे नमः पृथिव्यै नमः ओषधीभ्यः ।।२०
नमो रुराय च्यवनाय चोदनाय धृष्णवे ।
नमः शीताय पूर्वकामकृत्वने ।।२१
नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरो रसाय ।।२२
नमो वः पितरोभामाय नमो वः पितरो मन्यवे ।।२३
नमो वः पितरो पद घोरं तस्मै नमो,
वः पितरो यत् क्रूरं तस्मै ।।२४

अन्तः शान्ति सूक्त

निराशा, चिन्ता, शोक, भय, क्रोध, काम आदि कुविचारों और कुसंस्कारों के कारण जब मन निरन्तर अशान्त रहता हो और बहुत प्रयत्न करने पर भी आन्तरिक अशान्ति का अन्त न हो पा रहा हो तो अन्तः शान्ति सूक्त का नित्य श्रद्धापूर्वक उच्च स्वर से पाठ करना चाहिए। इससे चित्त में शान्ति, सन्तोष और प्रसन्नता की प्राप्ति होती है। पाठ के बाद हवन भी करना चाहिए। मन्त्र इस प्रकार हैं:—

हरिः ॐ। ऋचंवाचम्प्रपद्ये मनोयजुँप्रप
द्ये सामप्राणम्प्रपद्ये चक्षुँ श्रोत्रम्प्रपद्ये ।

व्वागोज: सहौजोमयिप्राणापानौ ।।१
यन्मेछिद्द्रञ्च क्षुषो
हृदयस्यमनसोव्वातितृणम्बृहस्पतिर्मेतद्दधातु ।
शन्नोभवतुभुवनस्ययस्पतिः ।।२
भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्व्वरेण्यम्भर्गोदेवस्यधीमहि ।।
धियोयोनः प्रचोदयात् ।।२
कस्त्वा । सत्योमदानान्म ॅ हिष्ठोमत्सदन्धसः ।
दृढाचिदारुजेव्वसु ।।४
अभीषुणः । सखीनामविताजरितृ्णाम् ।।
शतम्भवास्यूतिभिः ।।५
कयात्वन्नऽऊत्याभिप्रमन्दसेवृषन् ।
कयास्तोतृभ्यऽआभर ।।६
इन्द्रोविश्वस्यराजति ।
शन्नोऽअस्तुद्विपदेशञ्चतुष्पदे ।।७
शन्नोमित्रः शंव्वरुणः शन्नोभवत्वर्य्यमा ।
शन्नऽइन्द्रोवृहस्पतिः शन्नोव्विष्णुरुरुक्रमः ।।८
शन्नोव्वातः । पवताॅ शन्नस्तपतुसूर्यः ।
शन्नःकनिक्रदद्देवः पर्ज्जन्योऽअभिवर्षतु ।।९
अहानिशम्भवन्तुनःषॅ रात्रीः प्रतिधीयताम् ।
शन्नऽइन्द्राग्नीभवतामवोभिः शन्नऽइन्द्राव्वरुणा रातहव्या ।
शन्नऽऽइन्द्रापूषणाव्वाजसातौशमिन्द्रासोमासुवि ताातशंय्योः ।।१०
द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ॅ शान्तिः पृथिवीशान्तिरापः
शान्तिरोषधयः शान्तिः ।
व्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः
सर्व ॅ शान्तिः शान्तिरेवशान्तिः सामाशान्तिरेधि ।।११
दृतेदृॅ हमामित्रस्यमाचक्षुषा सर्वाणिभूतानिसमीक्षन्ताम् ।

मित्रस्याहञ्चक्षषासर्वाणिभूतानिसमीक्षे ॥
मित्रस्यचक्षुषासमोक्षामहे ॥१२

दृतेदृँहमा ।
ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासुञ्ज्योक्ते सन्दृशिजीव्यासम् ॥१३
नमस्तेहरसेशोचिषे नमस्तेऽअस्त्वर्च्चिषे ।
अन्नांस्तेऽअस्म्मत्तपन्तुहेतय: पावकोऽअस्मभ्यँशिवोभव ॥१४

नमस्ते । अस्तुव्विद्युतेनमस्तेस्तनयित्नवे ;
नमस्ते भगवन्न स्तुयत: स्व: समोहसे ॥१५
यतोयत: समीहपतेतोनोऽअभयं कुरु ।
शन्न: कुरुप्रजाभ्योभयन्न: पशुभ्य: ॥१६

सुमित्त्रियानऽआपओषधय: सन्तु दुर्म्मित्त्रियास्तस्मै-
सन्तुयोस्मान्द्देष्ठियञ्चव्वयन्द्विष्म्म: । १७

तच्चक्षुर्द्देवहितम्पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरद: शतञ्जीवेम शरद: शत ँ शृणुयाम शरद:
शतम्प्र ब्रवामशरद: शतमदीना: स्यामशरद: शतम्भूय श्च्चशरद:
शतात् ॥१८

भद्र सूक्त

परम मांगलिक कार्यों में इस सूक्त के मन्त्रों का प्रयोग होता है। मङ्गल की कामना के लिए आशीर्वाद स्वरूप इनका पाठ किया जाता है। अशुभ के निवारण और कल्याण की सिद्धि के लिए इसका अनुष्ठान किया जाता है। हवन इसके लाभों में गति लाता है। मन्त्र इस प्रकार है :—

ॐ आनोभद्रा: क्रतवोयन्तुवि श्वतोदब्धा सोऽअपरीतासऽ उद्भिद: । देवानोयथासदमिद्वृधेऽअसन्यप्रायुवोरक्षितारोदिवे-दिवे ॥१

देवानाम्भद्रासुमतिर्ऋजूयताग्देवानाँ रातिरभिनोनिवर्तताम्। देवानाँ सख्यमुपसेदिमावयन्देवानऽआयु प्रतिरन्तुजीवसे ॥२

तान्पूर्वयानि विदाहूमहेवद्यम्भगम्मित्रमदितिन्दक्षमस्त्रिधम्। अर्यमणंवरुणँ सोममश्विनासरस्वतीनः सुभगामायस्करत् ॥३

तन्नो वातो मयो भुवातु भेषजन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौ। तद्ग्रावाणः सोमासुतोमायोभुवस्तदश्विना शृणुतन्धिष्ण्यायुवम् ॥४

तमीशानञ्जगतस्तुस्थुषस्पतिन्धियाञ्जिन्वमावसेहूमहेवयम्। पूषानायथावेदसामासद्वृधेरक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥५

स्वस्तिनऽइन्द्रोवृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषाविश्ववेदा। स्वस्तिनस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्तिनोबृहस्पतिर्दधातु ॥६

पृषदश्वामरुतः पृश्निमातरः शुभंय्यावानोविदथेषुजग्मयः। अग्निजिह्वामानवः सूरचक्षसोविश्वेनोदेवाऽअवसागमन्निह ॥७

भद्रङ्कर्णेभिः शृणुयामदेवाभद्रम्पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँ सस्तनूभिर्व्यशेमहिदेवहितंयदायुः ॥८

शतमिन्नुशरदोऽअन्तिदेवायत्रानश्चक्रारसन्तनूनाम्। पुत्रासोयत्रपितरोभवन्तिमानोमद्ध्यारीरिषतायुर्गन्तोः ॥९

अदितिर्द्यौरदितिरंतरिक्षमदितिर्म्मातासपितासपुत्रः। विश्वेदेवाऽअदितिः पञ्चजनाऽअदितिर्ज्जातमदितिर्जनित्वम। १०

द्यौः शांतिरंतरिक्षँ शांतिः पृथिवीशांतिरापः शांतिरोषधयः शान्तिः॥ वनस्पतयः शान्ति र्विश्वेदेवाः शांतिर्ब्रह्म शांतिः सर्वँ शांति शांतिरेव शांतिः सामाशांतिरेधि ॥११

यतोयतः समीहसेततोनोऽअभयंकुरु। शन्नः कुरुप्रजाभ्यो-भयन्नः पशुभ्यः ॥१२

पवमान सूक्त

सामान्य बुद्धि का व्यक्ति भौतिक उपलब्धियों को ही अपनी प्रगति का कीर्तिमान समझ कर अपनी गतिविधियों का सञ्चालन करता है। इससे उसके मन में स्वार्थ की प्रवृति बढ़ती रहती है और वह छल, कपट, वेईमानी, झूठ व अन्य किसी प्रकार के भी अनुचित व भ्रष्ट उपायों को अपनाने में संकोच नहीं करता। उसकी बुद्धि का विकास इस प्रकार से होता है कि वह इन कुप्रवृतियों को बुरा भी नहीं मानता। आज कल तो अनेकों व्यक्ति इन्हें आवश्यक समझने लगे हैं। इससे सात्विक बुद्धि का ह्रास होता है और चरित्र का पतन होता है। ऐसा व्यक्ति भले ही कुछ भौतिक साधनों को एकत्रित कर ले परन्तु वह अपनी मानसिक सुख शान्ति को खो बैठता है। मानसिक सन्तोष तो विचारों और भावों की पवित्रता और शुद्धि से ही प्राप्त होता है। गीता की एक महान विशेषता भावों की संशुद्धि के अद्वितीय मौलिक महत्व का मूल्यांकन है।

"भावसंशुद्धिरित्येतत् तपो मानसमुच्यते" (गीता १७।१६)

विचारों की पवित्रता की स्थिरता के लिये निरन्तर आत्म परीक्षण की आवश्यकता रहती है। प्रवन्ध प्रकाश (भाग २, पृष्ठ ६९) में कहा है—

"आत्म-परीक्षणं हि नाम मनुष्यस्य प्रथमं समुन्नतेर्मूलम्"

"आत्मपरीक्षण ही व्यक्ति की सच्ची प्रगति का मूल है।"

आत्म परीक्षण एक साधना है जिसमें अपने मानसिक रोगों, कुण्ठाओं, प्रवृत्तियों व बुराईयों का मूल्यांकन किया जाता है और अपनी अपवित्रता व अशुद्धि को अनुभव करते हुये उन्हें दूर करने का प्रयत्न

किया जाता है। मानव का सच्चा विकास उसके चरित्र गठन पर निर्भर करता है जो विचारों की पवित्रता से विकसित होता है। इसीलिये वेदों ने विचार शुद्धि पर काफी बल दिया है ताकि यदि व्यक्ति के पास पर्याप्त भौतिक साधन उपलब्ध हों या न हो फिर भी वह आशाप्रद, सन्तुष्ट व सुखीजीवन व्यतीत कर सके क्योंकि मानसिक सुख शान्ति धन प्राप्ति पर नहीं, विचारों व भावों पर निर्भर करती है।

ऋग्वेद (१।६।७।१-८) में पापों को भस्म करने की प्रार्थना की गई है—

"हमारे पाप भस्म हों। हे अग्ने ! हमारे चारों ओर धन को प्रकाशित करो। हमारे पाप नष्ट हों। हम सुन्दर क्षेत्र, सुन्दर मार्ग और श्रेष्ठ धन की इच्छा से यज्ञ करते हैं। हमारा पाप भस्म हो। सबसे अधिक स्तुति करने वालों में मैं अग्रणी होऊँ। हमारे स्तोता अग्रणी हों, हमारा पाप भस्म हो। हे अग्ने ! तुम्हारे स्तोता हम सन्तान वाले हों। हमारा पाप भस्म हो। अग्नि की शत्रु-विजयी प्रबल ज्वालायें सब ओर बढ़ती हैं। हमारा पाप भस्म हो। हे सर्वतोप्रमुख अग्ने ! तुम सर्वत्र फैलने वाले हो। हमारा पाप जल कर नष्ट हो। हे अग्ने ! तुम हमको, नौका के समान शत्रुओं से पार लगाओ। हमारा पाप भस्म हो। हे अग्ने ! समुद्र से पार ले जाने के समान, हिंसकों से हमको पार ले जाओ। हमारा पाप जल जावे।"

अथर्ववेद (६।१६।१-३) में देवताओं से पवित्र करने की प्रार्थना की गई है—

"देवजन मुझे पवित्र करें। मनुष्य मुझे कर्म और बुद्धि से पवित्र करें। सब प्राणी, अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले वायु और दशा-पवित्र में शुद्ध होता हुआ सोम वह सब मुझे पवित्र बनावें ॥१॥ शुद्ध किया जाता सोम कर्म के निमित्त, बल प्राप्ति के निमित्त तथा अहिंसा के निमित्त मुझे पवित्र करें ॥२॥ हे सवितादेव ! तुम सबको प्रेरणा देने

वाले हो। तुम्हारा तेज और प्रेरणा-यह पवित्र करने के साधन हैं, इनके द्वारा हमको इहलोक और परलोक में सुख प्राप्त करने के निमित्त पवित्र कीजिये ॥३॥'

विचार शुद्धि की प्रार्थना अथर्ववेद (६।११५।१-३) में भी की गई है :—

हे विश्वेदेवो ! तुम हमसे स्नेह करते हो। हमने जाने या अनजाने जिन पापों को किया है, उन पापों से हमको बचाओ ॥१॥ मैं जागते या सोते जिन पापों को प्रिय मानता हुआ कर चुका हूँ, उससे मुझे वर्तमान में और भविष्य में भी काठ के पद बंधन से छुड़ाने के समान मुक्त कर दो ॥२॥ जैसे काठ के पद बन्धन से छूटने पर या पसीने से भीगने पर मनुष्य स्नान करके बाहरी मैल से शुद्ध होता है, वैसे ही मैं शुद्ध होऊँ। जैसे पवित्र और छलनी आदि साधनों से घृत शुद्ध होता है, वैसे ही देवगण मुझे शुद्ध करें ॥३॥

अथर्ववेद (४।२३) के सात मंत्रों में अग्नि देवता से प्रार्थना की गई है कि वह पापों से हमारी रक्षा करें। अगले सूक्त के सात मंत्रों में इन्द्र से प्रार्थना की गई है कि वह पापों से बचावें। २५ वें सूक्त के सभी मंत्रों में वायु व सूर्य से निवेदन किया गया है कि वह हमारे पापों को हम से प्रथक करें। अगले कई सूक्तों में अन्य देवताओं से यही प्रार्थनाएं की गई हैं।

यजुर्वेद में अनेक स्थानों पर पवित्रता की प्रार्थना इस प्रकार की गई है:—

हे अग्ने ! मेरे पाप को सब ओर से दूर करो। मैं कभी पाप में प्रवृत्त न होऊँ। देवताओं के अनुगामी पुरुष मुझे पवित्र करें। मन से सुसङ्गत बुद्धि मुझे पवित्र करें। हे अग्ने ! तुम भी मुझे पवित्र करो। हे अग्ने ! तुम तेजस्वी हो, अपने पवित्र तेज के द्वारा मुझे पवित्र करो। हमारे यज्ञ को देखते हुये अपने कर्म के द्वारा पवित्र करो। हे अग्ने !

तुम्हारी ज्वाला में जो ब्रह्मरूप पवित्र तेज विस्तृत है, उसके द्वारा मुझे पवित्र करो।"

"जो देवता कर्माकर्म के ज्ञाता, सर्वज्ञ एवं पवित्र है, वह वायु रूप देवता हमको पवित्र करने में समर्थ हैं। वह मुझे आज अपने प्रभाव से पवित्र करें। हे सर्वप्रेरक सवितादेव ! तुम दोनों प्रकार से पवित्र पवित्रे द्वारा और अनुज्ञापूर्वक मुझे सब ओर से पवित्र करो।"

"हे सर्व प्रेरक सवितादेव ! हमारे समस्त पापों को दूर करो। हमारे प्रति कल्याण को,प्रेरित करो।"

पवमान सूक्त के मन्त्रों में भी पवित्रता की उच्च भावनायें ओत-प्रोत हैं। इस सूक्त के मन्त्रों में पाप वृति की निवृत्ति, द्रुरितों से निवृत्ति, भावों की संशुद्धि और विचारों को पवित्र करने की अपार शक्ति है। यह पाप वृत्तियों के आक्रमण से रक्षा करते हैं और कवच जैसे सिद्ध होते हैं। जो साधक निरन्तर प्रगति पथ पर बढ़ना चाहते है उनके लिये नित्यप्रति पवमान सूक्त की साधना आवश्यक है क्योंकि आसुरी वृत्तियाँ निरन्तर घात में रहती हैं और कभी भी मन में स्वार्थ-परता की भावना लाकर उसे अपवित्र कर सकती हैं। साधना में पाठ व हवन दोनों सम्मिलित हैं।

मन्त्र इस प्रकार हैं:--

पवमानः सुवर्जनः पवित्रेण विच
षिर्ण, यः पोता स पुनातु माम् ।।१
पुनन्तु मा देवजना पुमन्तु मनवो ।
धियः, पुनन्तु विश्वआयवः ।।२
जातवेदः पवित्रव त्पवित्रे पुनाहि मा ।
शुक्रेण देव दीद्यदग्ने क्रत्वा क्रतुँरनु ।।३
यत्तें पवित्रमर्चिषि अग्ने वितत ।
मन्तरा ब्रह्म तेन पुनीमहे ।।४

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण ।
सवे न च, इदं ब्रह्म पुनीमहे ॥५
वैष्वदेवी पुनती देव्यागा द्यस्यै
वह्वी स्तनुवो वीतपृष्ठा ॥
तया मदन्त सधमाद्येषु
वय ꣳ स्याम: षतयो रयीणाम् ॥६
वैश्वानरो रश्मिभि र्मा पुनातु
वात: प्राणेने शिरयो मयो भू: ।
द्यावापृथिवी पयसा पयोभि
ऋतावरी यज्ञिये मा पुनीताम् ॥७
बृहद्भि: सवितास्तृभिर्वर्षिष्ठैर्देव ।
मन्मभि:, अग्नेदक्षै: पुनीहि मा ॥८
येनदेवा अपनन्त येनाषो दिव्यङ्कष: ।
तेन दिव्येन ब्रह्मणा इदं ब्रह्मपुनीमहे ॥९
य: पावमानी रध्येति ऋषिभि: सम्भृतोरस: ।
सर्वꣳ स पूतमश्नाति श्वदितं मातरिश्वन: ॥१०
पावमानीर्योऽध्येति ऋषिभि: सम्भृतो रस: ।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरꣳ सर्पिर्मधूदकम् ॥११
पावमानी स्वस्त्ययनी सुदुघाहि पयस्वती ।
ऋषिभि: सम्भृतो रस: ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् ॥१२
पावमानीर्दिशन्तु न इमलोकमथो अमुम् ।
कामान्समर्द्धयन्तु न:, देवोर्देवै: समावृता: ॥१३
पावमानी: स्वस्त्ययनी सुदुघाहि घृतच्युता: ।
ऋषिभि: सम्भृतो रस:, ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् ॥१४
येन देवा: पवित्रेण, आत्मानं पुनते सदा ।
तेन सहस्रधारेण पावमान्य: पुनन्तुमाम् ॥१५

प्राजापत्यं पवित्रं शतोद्या म ँ हिरण्मयम् ।
तेन ब्रह्मविदोवयं पूतं ब्रह्मपुनीमहे ॥१६
इन्द्रः सुनीतिः सह मा पुनातु
सोम स्वस्त्या वरूणः समीच्या ।
यमोराजा प्रमृणाभिः पुनातु
जातवेदो मोर्जयन्त्या पुनातु ॥१७
ॐ भूर्भुवः स्वः, तच्छंयो रावृणीमहे
गातुं यज्ञाय, गातुं यज्ञपतये ।
दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः
उर्ध्वं जिघातु भेषजं शन्नोअस्तुद्विपदे शं चतुष्पदे ॥१८
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

अश्म सूक्त

मानसिक निर्बलता के कारण ही प्रतिकूल परिस्थितियां घोर सङ्कट का रूप धारण कर लेती हैं और मन निराशा, चिन्ता, शोक व घबराहट के चक्रव्यूह में फँस जाता है। मन की निर्बलता को दूर करने, उसमें दृढ़ता लाने, संघर्ष में प्रसन्नता अनुभव करने, परेशानियों को धैर्य पूर्वक सहन करने और उनका साहस से लोहा लेने के लिए अश्म सूक्त का पाठ अपना चमत्कारी प्रभाव दिखाता है। पाठ के साथ हवन भी करें। मन्त्र इस प्रकार हैं—

अश्मवर्म मेऽसि यो मा ध्रुवाया दिशोऽधायुरभिदासात्। एतत् स ऋच्छात् ॥१

अश्मवर्मं मेऽसि यो मोर्ध्वाया दिशोऽघायुरभिदासात्। एतत् स ऋच्छात् ॥२

अश्मवर्म मेऽसियो मा दिशामन्तर्देशेभ्योऽघायुरभिदासात्। एतत् स ऋच्छात् ॥३

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरपध्वं प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहीन ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् ।।४

अश्मवर्ममेऽसि यो मा दक्षिणाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात ।।५

अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्राच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ।।६

अश्मवर्ममेऽसि यो मा प्रतीच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ।।७

अश्मवर्म मेऽसि यो मा मोदीच्या दिशोघायुभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ।।८

इडऽएह्यदितऽएहि सरस्वत्येहि । असावेह्यसावेह्यसा-
वेहि ।।६

इडाभिरग्निरोडचः सोमो देवाऽअमर्त्यः । अनुष्टुपछन्दऽ
इन्द्रियं पञ्चाविर्गौर्वयो दधुः ।।१०

इडाभिर्भक्षानाप्नोति सूक्तवाकेताशिषः शंयुना पत्नीसंया-
जान्त्समिष्टयजुषासँस्थाम् ।।११

इडामग्ने पुरुदँ सँसनि गोः शश्वत्तमँ हवमानाय साध
स्यान्नः सूनुस्तनये । विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ।।१२

इडायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्याऽअधि । जातवेदो
निधीद्यग्ने हव्याय वोढवे ।।१३

इडेरन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि
विश्रुति । एता तेऽअघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृत ब्रूतात्
।।१४

इदमापः प्रवहतावद्यं च मलं चयत् । यच्चाभिदुद्रोहानृतं
यच्च शेपेऽअभीरुणम् । आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मञ्चतु
।।१५

इदमुत्तरात् स्वस्तस्य श्रोत्रँ् सोवँ् शरच्छौग्यनुष्टुप् शारद्यनुष्टुभऽऐडमैडान्मन्थी मन्थिनऽएकविँ् शऽएकविँ् शाद् वैराजं विश्वामित्रऽऋषिः प्रजापति गृहीतया त्वया श्रोत्रगृह्णामि प्रजाभ्यः ॥१६

यज्ञ सूक्त

यज्ञ शब्द का अर्थ त्याग और बलिदान है। यज्ञ के अनेकों अर्थ हैं परन्तु उनमें मुख्य है त्याग, परमार्थ, बलिदान, निःस्वार्थता, समाज और राष्ट्र की सेवा आदि। यज्ञ में हम घी, जौ, चावल, तिल, बूरा, मेवे, समिधा, औषधियों आदि का त्याग करते हैं, उनकी आहुतियाँ देते हैं। किसलिए ? विश्व के स्वस्थ्य विकास के लिये। यज्ञ में बैठा हुआ साधक "इदम न मम" मन्त्र का भी उच्चारण करता है और कहता है, यह पदार्थ मेरे नहीं हैं, यह परमात्मा के हैं, राष्ट्र के हैं। उनकी वस्तुयें मैं उन्हीं के लिए सौंपता हूँ। साधक अपना धन, सम्पत्ति, शारीरिक, मानसिक व आत्मिक शक्तियों को राष्ट्र के नवनिर्माण में लगा देने की भावना करता है, संकल्प करता है।

यज्ञ भारतीय सस्कृति का पिता है अर्थात् त्याग हमारी संस्कृति की आधार शिला है। त्याग करना ही सांस्कृतिक आन्दोलन है। स्वार्थ को अपनाना आसुरी परम्परा को अपनाना है। परमार्थ और त्याग का अवलम्बन ऋषि पथ पर अग्रसर होना है। हमारे ऋषियों ने हमें स्वार्थी न बनकर समाज सेवी बनने की प्रेरणा दी है। यज्ञ ही वह क्रियात्मक प्रेरणा शास्त्र है जिससे हम त्याग और बलिदान की शिक्षा लेते हैं। इसीलिए यज्ञ को सब से अधिक महत्व दिया गया है। जीवन की प्रत्येक क्रिया के साथ, चाहे वह शुभ हो या अशुभ यज्ञ करने का आदेश दिया है। संस्कार, व्रत, त्योहार, कथा, कीर्तन उत्सव, सबके साथ यज्ञों के आयोजन जुड़े रहते थे। नित्य पाँच यज्ञ करने का

भी आदेश है। यज्ञों के लिए ही वेद मन्त्रों का निर्माण हुआ, उनकी व्याख्या में अनेकों शास्त्रों का सृजन हुआ। इनके प्रचार, प्रसार व व्यवस्था में ऋषि अपने जीवन का दो तिहाई भाग लगा देते थे। प्राचीन काल में इस पवित्र भावन से प्रेरित होकर राजा महाराजा भी अपनी धन सम्पत्ति को तिजोरी में बन्द करके ही नहीं रख छोड़ते थे वरन् देश के उत्थान के लिये उसे लुटा देते थे। दान देने में सकोच नहीं करते थे। इतिहास में ऐसे भी राजाओं का वर्णन है जिनके पास यज्ञ के पश्चात् मिट्टी के पात्र तक ही बच पाये थे।

जिस व्यक्ति में यज्ञ की पवित्र भावना का अभाव रहता है, उसको हमारे शास्त्रों ने चोर और पापी के घृणित शब्दों से सम्बोधित किया है क्योंकि उसमें एक अपवित्र भावना और विचारधारा का पोषण होता है जो कभी भी देश व जाति के लिये घातक सिद्ध हो सकती है। गीता (३।१३) में भगवान का आदेश है "यज्ञ करके शेष बचे हुये भाग को ग्रहण करने वाले सज्जन सब पापों से मुक्त हो जाते हैं परन्तु यज्ञ करके केवल अपने ही लिए जो (अन्न) पकाते हैं वे पापी लोग पाप भक्षण हो करते हैं। इससे पूर्व श्लोक में भी इन्हीं भावनाओं का उल्लेख है। यथा 'यज्ञ से सन्तुष्ट होकर देवता लोग तुम्हारे इच्छित (सब) भोग तुम्हें देंगे। उन्हीं का दिया हुआ उन्हें वापस न कर जो केवल स्वयं उपभोग करता है, वह सचमुच चोर है" (गीता ३।१२)। स्वार्थपरता की घातक भावना पर यह विचार वज्र का काम करते हैं। भगवान कृष्ण नहीं चाहते थे कि हमारा समाज स्वार्थियों का समूह मात्र ही बना रहे। वह प्रत्येक हिन्दू में निःस्वार्थता के दर्शन करना चाहते थे। वेद भी इस सम्बन्ध में मौन नहीं हैं। वह भी इसकी पुष्टि करते है। ऋग्वेद (१०।११७।६) में कहा है—जो मनुष्य अयर्मा या सखा का पोषण नहीं करता, अकेले ही भोजन करता है, उसे केवल पापी ही समझना चाहिए।" मनु भगवान ने भी इन विचारों का

अनुकरण किया है और आदेश किया है "जो मनुष्य अपने लिये ही अन्न पकाता है, वह केवल पाप भक्षण करता है (मनुस्मृति ३।११४)।

यही कारण है कि ऋषियों ने हमें अपने जीवन को ही यज्ञमय बनाने की प्रेरणा दी है ताकि स्वार्थ वृत्ति को अपना कर हम अपने समाज व राष्ट्र के लिये घातक न सिद्ध हों। वास्तव में जीवन उत्थान का आधार ही त्याग, प्रेम, सेवा, सत्य, परमार्थ की पवित्र भावनाओं का विकास करना है जो यज्ञ सूक्त के पाठ व हवन से भी सम्पन्न होता है। मन्त्र इस प्रकार है:—

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानिधर्माणि प्रथमान्यासन्। तेह् नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ।।१

यज्ञो बभूव स आ बभूव स प्रजज्ञे स उ वावृधेपुनः। स देवानामधिपति र्बभूव सो अस्मासु द्रविणमादधातु ।।२

यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मु खं च वाचा श्रोत्रेण मनस्मजुहोमि। इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्य मानाः ।।३

अनुतप्यमानम् । मथम्यान्त्स्तोकानप यान्रराध सं नष्टेभिः सृजतु विश्वकर्मा ।।४

यज्ञै रथर्वा प्रथमः पथमः पथस्तते ततः मूर्यो व्रतपा वेन आजनि। आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्म जातममृत यजा महे ।।५

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद् भूमि व्यवर्तयत्। चक्राण ओपशं दिवि ।।६

यज्ञ एति विततः कल्पमानईजानमभि लोकं स्वर्गम्। तमग्नयः सर्वहुतं जुषन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः। शृतं कृण्वन्त इहमाव चिक्षिपन् ।।८

यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका । वशा पर्यन्यपत्नी देवाँ अप्येति व्रह्मणा ॥८

यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ । स्वां योनिंगच्छ स्वाहा ॥६

यज्ञायज्ञियाय च वै स वाम देव्याय च यज्ञाय च यजमानाय च। पशूभ्यश्चावृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्य मुपवतिद ।१०

यज्ञायज्ञियस्य च वै सवामदेव्यस्य च यज्ञस्य च यजमानस्य च। पशूनां च प्रियं धामभदति तस्य दक्षिणायांदिशि ॥११

यज्ञै रिषू: संनममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः। ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान् प्रतीचो बाहून् प्रतिभङ्-ग्ध्येषाम् ॥१२

यज्ञो दशिणाभिरूद क्रामत् तां पुरं प्रणः यामिवः । तामा विशत तां प्रविशम सा वः शर्म च वम च यच्छतु ॥१३

यज्ञं दुहानं सदमित् प्रपीनं पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम् । प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषै रूपत्वा मदेम ॥१४

यज्ञं व्रूमो यजमानमृचः सामानिभेषजा। यजूंषि होत्रा व्रमस्ते नोमुञ्चन्त्वं हसः ॥१५

यज्ञ यन्तं मनसा वृहन्तमन्वारोहामितपसा सयोनिः । उपहूता अग्ने जरसः परस्तात् तृतीये नाके सधमादं मदेम् ॥१६

यज्ञर्तो दक्षिणीयो वासतेयोभवति य एवं वेदः ॥१७

यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पति होतारमक्तोरहिथि विभावसुम् । शोचञ्छुष्कासु हरिणीषु जर्भु रद्वृषा केतुर्यजतो द्यामशायत ॥१८

यज्ञा यज्ञा वः समना तुतुर्वणिर्धियन्धियं वो देवा उदधिध्वे । आ वोऽर्वाचः सुवितायरोदस्योर्महे ववृत्यामव सुवृक्तिभिः ॥१६

यज्ञेन वर्धत जातववेद समग्निंयजध्वं हविषा तना गिरा। समिधानं सुप्रयसं स्वर्णरं द्युक्षं होतारं वृजनेषु धूर्षदम् ॥२०

यज्ञेन गातुमप्तुरो विविद्रिरेधियो हिन्वाना उशिजो मनीषिण: । अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वानाद्रविणान्यासत ॥२१

यज्ञोभिर्यज्ञ वाहसं सोमेभि: सोम पातमम् । होत्राभिरिन्द्रं वावृधुर्व्यानशु ॥२२

यज्ञस्य हिस्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु । इन्द्राग्नी तस्य वोधतम् ॥२३

यज्ञानां रथ्ये वयं तिग्म जम्भाय वीडवे । स्तोमैरिषे माग्नये ॥२४

यज्ञे यज्ञे स मर्त्यो देवान्त्सपर्यति । य: सुम्नैर्दीर्घश्रुत्तम आवि वासात्येनान् ॥२५

ऋषि सूक्त

ऋषि उस तपस्वी साधक को कहते हैं जिसने आत्म अनुसंधान व साक्षात्कार किया हो, जो केवल परमात्मतत्व का विवेचन करना ही न जानता हो वरन् जिसने स्वयं उसका अनुभव किया हो, जिनके सूक्ष्म नेत्र इतनी भेदक दृष्टि रखते हों कि उस तक पहुँचने में उन्हें कुछ असुविधा न हो । वह सर्वत्र परमात्म तत्व के दर्शन करते हैं । उन्हें इसके अतिरिक्त और कुछ दिखाई देता ही नहीं, हर वस्तु में वह उसी को ही देखते हैं । सूर्य की चमक चन्द्रमा का प्रकाश, वायु व जल की प्राण शक्ति, वनस्पतियों का जीवन कोष, प्राकृतिक सौन्दर्य वह उसी के कारण मानते हैं । वह जड़ और चेतन की सृष्टि में उसी मूल शक्ति का प्रभाव देखते हैं । इन चलती फिरती मूर्तियों में इष्टदेव का ध्यान

करते हैं। यह भावना जितनी दृढ़ होती जाती है, उतना ही वह साधक ऋषित्व के पथ पर अग्रसर होता जाता है।

ऋषि जीवन के पथ का पथिक प्राणी मात्र को अपने में और अपने को प्राणी मात्र में देखता है। केवल इस प्रकार की भावना का निर्माण करना ही पर्याप्त नहीं है। क्रिया और आचरण ही इसकी वास्तविक कसौटी है। मनुष्य की क्रीड़ा स्थली यह पृथ्वी है। बुद्धिमान प्राणी होने के नाते वह एक समाज बना कर रहता है। समाज में भिन्न-भिन्न प्रकृति व मनोवृत्तियों के व्यक्तियों का निवास होता है। जन्म से तो उनमें पशु वृत्तियों का बाहुल्य होता है। पशु वृत्तियों का दूसरा नाम स्वार्थ है स्वार्थ केवल अपने को ही देखता है। समाज के लिये यह बड़ी घातक वृत्ति है। यदि सभी उसे अपनाने लगें तो समाज में घोर अव्यवस्था फैल जाती है, जिसका परिणाम दुःख, कलह, क्लेश के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। छल, कपट, धोखा, बेईमानी, अविश्वास, अन्याय, अत्याचार आदि तो उसकी सहज उपज हैं। इन वृत्तियों के पनपने से विश्व में अशान्ति का साम्राज्य स्थापित होता है। हर व्यक्ति उसके उपाय खोजता है परन्तु उस मूल वृत्ति पर उसका ध्यान नहीं जाता।

ऋषि अपने शरीर को समाज का एक अङ्ग मानते हैं। जिस प्रकार से अपने शरीर का कोई अङ्ग अस्वस्थ हो तो व्यक्ति उसकी स्वस्थता के लिए दिन रात बेचैन रहता है, उस पर पर्याप्त धन व्यय करता है, बड़े से बड़े वैद्यों और डाक्टरों की राय लेता है, उसी प्रकार से इस समाज रूपी शरीर में जब कोई घाव होते हैं, उसमें बुराइयाँ और कुरीतियाँ फैल जाती हैं, तो ऋषि, डाक्टरों के रूप में दवा देते हैं, मरहम पट्टी करते हैं, चीड़ फाड़ करते हैं। उस कार्य में वह इतने उलझ जाते हैं कि उन्हें अपने शरीर की भी सुध-बुध नहीं रहती है। वह समाज के स्वस्थ विकास में अपने शरीर को घुला देते हैं. राष्ट्र के

उत्थान में वह उसका बलिदान देने को तत्पर रहते हैं क्योंकि वह सारे समाज को अपनी चलती-फिरती छाया ही अनुभव करते है ।

अतः ऋषि भावना को जाग्रत करने के लिये, दुर्गुणों व दुःस्वभावों के शमन, संयम सदाचार व सात्विकता के पंथ पर चलने के लिये व सामाजिक कुरीतियों व बुराईयों को दूर करने के लिये निःस्वार्थ भाव से अपनी समस्त शक्तियों को लगाने की शक्ति और प्रेरणा ऋषि सूक्त के नित्य पाठ व हवन से प्राप्त होती है । मन्त्र इस प्रकार है:—

ॐ ऋषिं नरावंहसः पांचजन्यमृवीसादत्रिमुञ्चथोगणेन । मिनन्ता दस्यो रशिवस्य माया अनुपूर्वंवृषण चोदयन्ता ।।१

ऋषिर्विप्रः पुर एता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन । सचिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यं गुह्यं नाम गोनाम् ।।२

ऋषि मना य ऋषि कृत्स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम् । तृतीयं धाम महिषः सिषा सन्त्सोमोविराजमनु राजतिष्टुप् ।।३

ऋषे मंत्र कृतांस्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन्गिरः । सोमं नमस्य राजानं यो यज्ञे वीरूधां पतिरि न्द्रायेन्द्रोपरि स्रव ।।४

ऋषी वोधप्रतीवोधावस्वप्नो यश्च जागृविः । तौते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम् ।।५

ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोस्तुदैवाय प्रस्तराय ।।६

ऋष वातेपादा प्रयज्जिजगास्यवर्धन्वाजा उत ये चिद त्र । त्वमिन्द्र साला वृका न्त्सहस्र मासन् दधिषे अश्विना ववृत्याः ।।७

ऋष्वस्त्वमिन्द्र शूर जातो दासीर्विशः सूर्येण सह्या । गुहा हितंगुह्यं । गुहा हितंगृह्यं गूढ़हमप्सु बिभृमसि प्रस्रवणे न सोमम् ।।८

ऋषिभ्यः स्वाहा ।।६

मित्र सूक्त

हर एक से कुशल व्यवहार ही सफल जीवन व प्रभावशाली व्यक्तित्व का प्रतीक है। कौन व्यक्ति जीवन में कितनी प्रगति कर सकता है, यह उसकी बुद्धिकौशल के अतिरिक्त व्यक्तिगत व्यवहार पर भी निर्भर करता है। मधुर व्यवहार से मित्र बढ़ते हैं और तीखे, क्रोधी व झगड़ालू स्वभाव से मित्र भी विरोधी बन जाते हैं। सभी सम्पर्क वालों से मैत्री भाव रखने के लिये अपने स्वभाव में परिबर्तन होना आवश्यक है। इसके साथ-साथ मित्र सूक्त का पाठ भी अपना प्रभाव दिखाता है। इससे शत्रुता मैत्री में परिणित होती है और सर्वत्र प्रेम भाव का सञ्चार होता है। पाठ के साथ हवन होना भी आवश्यक है। मन्त्र इस प्रकार हैं:—

मित्रश्च तुभ्यं वरुणः सहस्वोऽग्ने विश्वे मरुतः सुम्नमर्चन् ।
यच्छोचिषा सहसस्पुत्रतिष्ठा अभिक्षितीः प्रथयन्त्सूर्यो नॄन् ॥१
मित्रो अग्निर्भवति यत्समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदा ।
मित्रो अध्वर्यु रिषिरो दमूनामित्रः सिघ्नूनामुत पर्वताम् ॥२
मित्रो जनान्या तयति ब्रुवाणोमित्रो दाधार पृथिवी मुत द्याम ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥३
मित्रस्य चर्षणी धृतोऽवो देवस्यसानसि ।
द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥४
मित्राय पंचयेमिरे जना अभिष्टिशवसे ।
स देवान्विश्वान्विभर्ति ॥५
मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्त वर्हिषा इष इष्ट व्रता अकः ॥६
मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतांयज्ञमिष्टये ।
नि वर्हिषिसदतां सोमपीतये ॥७
मित्रस्तन्नो वरुणो रोदसी च द्युभक्तामिन्द्रोअर्यमा ददातु ।
दिदेष्टु देव्यदिती रेकणो वायुश्च यन्नियुवैते भगश्च ॥८

मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त शर्म तोकाय तनयाय गोपाः ।
मा वो भुजे मान्य्र जातमेनो मा तत्सर्म वसवो यच्चयध्वे ।।६
मत्रस्तन्ना वरुणो देवो अर्यः प्रसाधिष्ठेभिः पथिभिर्नयन्तु ।
व्रवद्यथा न आदरिः सुदास इषामदेमसहदेव गोपाः ।।१०
मित्रा तनान रथ्या वरुणो यश्च सुक्रतुः ।
सनात्सुजाता तनया धृत व्रता ।।११
मित्रावरुणवन्ता उत धर्मवन्ता मरूत्वन्ता जरितुर्गच्छथोहवम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ।।१२
मित्रो नो अत्यं हति वरुणः पर्षदर्यमा ।
क्षादित्यासो यथा विदुः ।।१३
मित्रं कृणुध्वं खलु मृणता नो मा नो धारैण चरतभिः धृष्णु ।
निवो नुमन्युर्विशतामराति रन्योबभ्रूणां प्रसितौ न्वस्तु ।।१४
मित्ताय शिक्ष वरुणाय दाशुषे या सम्राजा मनमा न प्रयुच्छतः ।
ययोर्धाम धर्मणारोचते बृहद्ययो रुभे रोदसी नाधसी वृतौ ।।१५

सूर्य सूक्त

सूर्य की जगत् की आत्मा कहा गया है । यह प्रकृति का केन्द्र है । हमारी शारीरिक शक्तियों की उत्पत्ति, स्थिति और विकास इसी सूर्य पर निर्भर करता है । जो लोग इसके निकट सम्पर्क में रहते हैं, वे स्वस्थ रहते हैं । शहरी लोग जिन्हें सूर्य किरणों से दूर रहना पड़ता है, सदैव अस्वस्थ बने रहते हैं । सूर्य किरणों में स्वस्थता व निरोगता लाने की अपार शक्ति है, रोग कीटाणुओं को नष्ट करने की इसकी अद्भुत क्षमता है । हमारे आचार्यों ने इसकी महत्ता को लाखों वर्ष पूर्व खोज लिया था । तभी इसको देवता की संज्ञा दी गई और सूर्य प्राणायाम, सूर्य नमस्कार, सूर्य उपासना, सूर्य योग, सूर्य यज्ञ आदि अनेक क्रियायें धार्मिक कर्मकाण्ड में सम्मिलित की गईं ।

वेद शास्त्रों में सूर्य की महत्ता और उसकी रोग नाशक शक्ति की प्रशंसा में काफी कुछ कहा गया है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के ५०वें सूक्त के अनेकों मन्त्र इस आशय के उपलब्ध होते हैं यथा "हे मित्रों के मित्र सूर्य ! तुम उदय होकर आकाश में उठते हुए, मेरे हृदय रोग और पीतवर्ण को मिटाओ" (ऋग्वेद १।५०।११), 'हे चमकते हुए देवता ! तेरी लाल किरणों से मेरा पीलिया दूर हो रहा है" (ऋग्वेद १।५०।१२)। "हे पूषन् मार्तण्ड ! तेरे दर्शन से मेरे शरीर और मन की निर्बलता दूर हो रही है (ऋग्वेद १।५०।१३)।"

ऋषियों ने सूर्य को इतना महत्व दिया कि उन्होंने एक स्वतन्त्र उपनिषद् की रचना कर डाली और उसमें अपने समस्त अनुभवों को लिपिबद्ध कर दिया। सूर्योपनिषद् में ऋषि की पवित्र वाणी इस प्रकार है—'सूर्य सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम के आत्मा हैं। इन्हीं से इन भूतों की उत्पत्ति होती है। इन्हीं से यज्ञ, मेघ और आत्मा आविर्भूत होते हैं (३)। हे आदित्य ! हम तुम्हें नमस्कार करते हैं। तुम्हीं कर्म और कर्त्ता हो। तुम्हीं ब्रह्मा और विष्णु हो, तुम्हीं रुद्र और ऋक्, यजु, साम, और अथर्व हो, तुम सम्पूर्ण धन रूप हो (४)। आदित्य से वायु, भूमि, जल, ज्योति, आकाश और दिशायें उत्पन्न होती हैं। उन्हीं से देवता प्रकट होते हैं। उन्हीं से वेदों की उत्पत्ति है। इस ब्रह्माण्ड को आदित्य ही तपाते हैं। वही ब्रह्मा हैं। वही अन्तःकरण रूप है। वह पाँचों प्राणों के रूप में प्रतिष्ठित हैं। वही पंचेन्द्रिय के रूप में कार्य करते हैं। वही पंच कर्मेन्द्रिय हैं। ज्ञानेन्द्रियों के पञ्च विषय भी वही है। कर्मेन्द्रियों के पाँच विषय आदित्य ही हैं। वे ही ज्ञान-विज्ञान से मुक्त एवं आनन्दरूप हैं। (५)"

"सूर्य भगवान् ! मृत्यु से मेरी रक्षा करो। विश्व के कारण रूप एवं तेजस्वी सूर्य को नमस्कार है। सूर्य से ही सब चराचर प्राणियों की उत्पत्ति है। सविता देव हमारे चक्षु हैं। सबके धारण करने वाले

सूर्य हमारे नेत्रों को देखने की शक्ति प्रदान करने वाले बनें। वे हमें दीर्घायु दें (६) ऋषियों ने सूर्य के स्वास्थ्य प्रदान करने वाले गुणों को दृष्टि में रखकर ही इतनी प्रसंसा की है।

अब पश्चिम ने भी इसकी महत्ता को स्वीकार किया है। उस पर अनुसन्धान किये गये हैं और किये जा रहे हैं। सूर्य और हृदय का कितना गहरा सम्बन्ध है, यह बात फ्रान्स के विश्व विख्यात हृदय रोग विशेषज्ञ डा० मार्सेल पोमेलोक्स ने प्रमाणित कर दी। ब्रिटिश मेडिकल एसोसियेशन द्वारा आयोजित विज्ञान सम्मेलन में पढ़े गये अपने निबन्ध में आपने बताया कि सौर मण्डल में जब तूफान आ चुकते हैं, तब हृदय के दौरे अधिक पड़ते हैं। तूफानों में पहले पड़ने वाले दौरों की संख्या तूफानों के बाद चौगुनी हो जाती है।

डा सोले का कहना है कि "सूर्य में जितनी रोग नाशक शक्ति है, उतनी संसार की किसी भी वस्तु में नहीं है। कैंसर, नासूर और भगन्दर प्रभृति दुःसाध्य रोग जो बिजली और रेडियम के प्रयोग से भी अच्छे नहीं किये जा सकते थे, वे सूर्य किरणों का ठीक प्रयोग करने से अच्छे हो गये। तपेदिक के विशेषज्ञ डा० हरनिच का कथन है कि 'पिछले ३० वर्षों में मैंने लगभग सभी प्रसिद्ध औषधियों को अपने चिकित्सालय में आये हुए प्रायः २२ हजार रोगियों पर आजमा डाला पर मुझे उनमें से किसी पर भी पूर्ण सन्तोष न हुआ। अब गत तीन वर्षों से मैंने सूर्य चिकित्सा प्रणाली का उपयोग अपने रोगियों पर किया है। फलतः मैं कहने पर तत्पर है कि सूर्य शक्ति से बढ़कर क्षयी के लिये और कोई औषधि नहीं है।"

डा० हानेग ने लिखा है—"रक्त का पीलापन, पतलापन, लोहे की कमी, नसों की दुर्बलता, कमजोरी, थकान, पेशियों की शिथिलता आदि रोगों में मैंने पाया कि सूर्य की सहायता से इलाज करना लाज-वाब है।" प्रसिद्ध दार्शनिक न्योची का मत है—"जब तक संसार में सूर्य

उपस्थित है, तब तक लोग व्यर्थ ही दवाओं की खोज में भटकते हैं। उन्हें चाहिए कि शक्ति, सौन्दर्य और स्वास्थ्य के केन्द्र सूर्य की ओर देखें और उसकी सहायता से अपने स्वास्थ्य का निखार करें।" मियो अस्पताल के सिविल सर्जन एफ प्रिवेल्ड ने विवरण पुस्तक में अपना अनुभव लिखते हुए कहा है–"सूर्य की धूप का यदि ठीक ढङ्ग से प्रयोग किया जाये तो स्वास्थ्य स्थिर रह सकता है। यदि किसी प्रकार का रोग हो जाय तो भी धूप की सहायता से ठीक हो सकता है।"

सूर्य शक्ति के आकर्षण के लिए सूर्य सूक्त एक श्रेष्ट उपाय है। आरोग्य प्राप्ति, शक्ति, स्फूर्ति, साहस, तेज और बलिष्ठता के विकास के लिए सूर्य सूक्त का पाठ अचूक उपाय माना जाता है। सूर्य सूक्त के मन्त्रों से पाठ के साथ हवन किया जाये तो अधिक लाभ की आशा की जा सकती है।

ॐ विभ्राड् बृहत्पिवतुसोम्यं मध्वायु र्दधद्यज्ञपतावविह्लतम्।
वातजूतो यो अभिरक्षतित्मनाप्रजाः पुपोष पुरुधा विराजति ।।१

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृदेश विश्वायसूर्यम् येनापावक-
चक्षसा भुरण्यन्तं जनां अनुत्वंवरुणपश्यसि ।।२
दैव्यावध्वर्यु आगतगूँ रथेन सूर्यत्वचा।
मध्वा यज्ञगूँ समञ्जाथे।
तं ते प्रत्नथायं वेनश्चित्रं देवानाम् ।।३

आ न इडाभि र्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु।
अपि यथा युवानो मत्सथानो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ।।४
यदद्य कच्चवृत्रहन्नुदगा अभिसूर्यः सर्वं तदिन्द्र ते वशे ।।५
तरणिर्विश्वदार्शी तो ज्योतिष्कृदसिसूर्यो विश्वम मासि रोचनम्।
तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तो विततगूँ संजभार ।।६
यदेदयुक्तहरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ।।७

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्योरूपं कृणुतेद्योरुपस्थे ।
अनन्त मन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सम्भरन्ति ॥८
श्रायन्त इव सूर्यं विश्वे दिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रयिभागं नदीधिम् ॥६
अद्यादेवा उदिता सूर्यस्य निरगूँहसः पिपृता निवद्यात् ।
तन्नोमित्रोवरुणोमामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवोउतद्योः ॥१०
आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो विवेशयन्नमृत मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेन देवो द्याति भुवनानि पश्यन् ॥११

आयुष्य सूक्त

मनुष्य की आयु कर्म भोग चक्र के आधीन भले ही मानी जाती हो परन्तु आरोग्य प्राप्ति के प्राकृतिक नियमों की उपेक्षा नहीं की जा सकती जिनसे निश्चय रूप से आयु वृद्धि होती है। इन नियमों की अवहेलना करने वाला अपनी आयु को स्वयं काटता है। मांस, मछली, बीड़ी सिगरेट, शराब, अफीम जैसे मादक द्रव्यों, चाट पकोड़ी, मिठाई, खोये व तली हुई अपच उत्पन्न करने वाली वस्तुओं का सेवन, आहार बिहार में असावधानी, असंयम का पालन, काम तत्व की ओर झुकाव, व मानसिक चिन्ताएँ कुछ ऐसे कारण हैं जिनसे दिन-दिन शारीरिक स्वास्थ्य जर्जर होता चलता हैं और आयु घटती हैं। मादक द्रव्यों व गरिष्ट वस्तुओं का त्याग, स्वास्थ्य प्राप्ति के प्राकृतिक नियमों का पालन, नियमित व्यायाम, साग सब्जी व फलों का अधिक सेवन, स्वस्थ साहित्य का अध्ययन, संयम, सदाचार, विवेक, विचारों की पवित्रता आदि कुछ ऐसे उपाय हैं जिनसे स्वस्थ शरीर व लम्बी आयु की आशा की जा सकती है। आयुष्य सूक्त का पाठ व हवन साधना से संयम, सदाचार व स्वास्थ्य, प्राप्ति के प्राकृतिक नियमों के पालन की सशक्त प्रेरणा मिलती है जिनसे जीवन के अन्तिम क्षणों तक सभी काम सुचारु रूप से करने की क्षमता बनी रहती है।

मन्त्र इस प्रकार है:—

आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृत प्रतीको घृतयोनिरेधि। घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि रक्षतादिमान्त्स्वाहा ॥१

आयुष्यं वर्च्चस्य ऀ रायस्पोषमौद्भिदम्। इद ऀ हिरण्यं वर्च्चस्वजैत्रायाविशतादुमाम् ॥२

आयुग्स्मैधेहि जातवेद: प्रजां त्वष्टरधिनि धेह्यस्मैं। रायस्पोषं सवितरा सुवास्मे शतं जीवति शरदस्तवायम् ॥३

आयुर्दद विपश्चितं श्रुतां कण्वस्य वीरुधम्। आभारिषं विश्वभेषजीमस्याद्दष्टान् निशमयत् ॥४

आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने। घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम् ॥५

आयर्यते अतिहितं पराचैरपान: प्राण: पुनरा ताविताम्। अग्निष्टदाहार्निर्ऋतेरुपस्थान् तदात्मनिपुनरा वेशयामिते ॥६

ॐ आयुर्विश्वायु: परि पासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात्। यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देव: सविता दधातु ॥७

ॐ यवान: कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम्। अचित्रचिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्ष तो नरो आङ्गिरस्वत् ॥८

ऀ आयूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद्देवानां यज्जनिमान्त्युग्र। मर्तनां चिदुर्वशीरकृप्रन्वृधे चिदर्य उपग्स्यायो: ॥९

दीर्घायस्तुऽओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम। अथो त्वं दीर्घायुर्भू त्वा शतवल्शा वि रोहतात् ॥१०

आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचम्मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानम्मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ॥११

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पता ऽ श्रोत्र यज्ञेन कल्पतां पृष्ठ यज्ञेन कल्पताम् प्रजापतेः प्रजाऽ अभूम स्वर्देवाऽअगन्मामृताऽअभूम ।।१२

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पता ऽश्रोत्र यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतामनो यज्ञेन कल्पता मात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताऽस्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञोयज्ञेन कल्पताम् स्तोमश्च यजुश्च-ऽऋक् च साम च वृहच्च रथन्तरञ्च । स्वर्देवाऽअगन्मामृताऽअ-भूम प्रजापतेः प्रजाऽअभूमवेट् स्वाहा ।।१८

अग्नि सूक्त

अग्नि को हमारे वेद शास्त्रों ने देवताओं के पुरोहित की संज्ञा दी है क्योंकि यज्ञ में देवताओं के लिये जो आहुतियाँ डाली जाती हैं, यह अग्निदेव उन तक पहुँचाने का काम करता है। इसके बदले में देवता हमें बुद्धि, ज्ञान, आयु, बल प्रदान करते हैं और प्राणों को पुष्ट करते हैं ।

भारतीयों ने अग्नि को आश्चर्यों का भी आश्चर्य माना है। इसे विज्ञान ने भी अपनी आधुनिक खोजों से सिद्ध कर दिया है। अग्नि के असामान्य गुणों को देखते हुए ही एक स्वतन्त्र वेद—'यजुर्वेद' की रचना की आवश्यकता प्रतीत हुई जिसके मन्त्र मुख्यतः यज्ञ करने के लिये ही हैं अर्थात् अग्नि देवता को प्रसन्न करने के कारण ही जीवन धारण किए हुए हैं। अग्नि के कारण ही प्रजा की उत्पत्ति, बल और वीर्य की उत्पत्ति होती है। मानव शरीर पर उपस्थित तेज, चमक और आकर्षण अग्नि की विद्यमानता से ही सम्भव है। जब शरीर से अग्नि निकल जाती है और वह ठण्डा पड़ जाता है तो इस स्थिति को मृत्यु की संज्ञा दी जाती है। अग्नि के अभाव को ही रोग कहा जाता

है। अग्नि के पुनः उद्दीप्त होने पर रोग निवारण हो जाता है। अतः शरीर की सभी गतिविधियों का सञ्चालन अग्नि ही करता है। यह शरीर की प्रमुख शक्ति है। इसके अभाव में धन, सम्पत्ति, परिवार, सुख, सुविधाएँ सभी व्यर्थ लगती हैं। शरीर में अग्नि की स्थिरता ही आरोग्य और सुखी जीवन का प्रतीक है।

शास्त्रों में अग्नितत्व का विश्लेषण किया गया है। जैमिनी ब्राह्मण में इसे भूपति, भुवन पति और भूतानां पतिः कहा गया है। विष्णु पुराण में इन तीनों के १५-१५ भेद वर्णित किये गये हैं। महाभारत में अग्नि के दस गुण प्रतिपादित किये गये हैं—

अग्ने दुर्धर्षता ज्योतिस्तापः पाकः प्रकाशनम्।
शौचं रागो लघुस्तैक्ष्ण्यं सततं चोर्ध्वगामिता॥

—शान्ति पर्व (महाभारत)

अर्थात्:—अग्नि के (१) दुर्धर्षता, (२) ज्योति, (३) तापः, (४) पाकः, (५) प्रकाश, (६) शौच, (७) राग, (८) लघु, (९) तैक्ष्ण्य, (१०) ऊर्ध्वगमन।

अग्नि के इन दस गुणों के कारण ही शरीर के समस्त कार्य सम्पन्न होते हैं। शक्ति का विकास, तेज, चमक, गर्मी—यह अग्नि के ही गुण हैं। भोजन का पचाना, शरीर की अशुद्धता को नष्ट करना, शरीर को हलका व शक्तिशाली बनाना, आकर्षण उत्पन्न करना, ज्ञान व मानसिक शक्तियों का विकास करके आत्मोत्थान करना—अग्नि के ही गुणों में सम्मिलित हैं।

अग्नि के उपरोक्त १० गुण पाँच प्राण तथा पाँच उप-प्राण की विभिन्न क्रियाएँ ही हैं। इनके विकास के अलग-अलग विधि विधान हैं। वैदिक मन्त्रों के पाठ, तप, सन्ध्या, प्राणायाम, ध्यान, यज्ञ आदि साधनाओं से ही दस प्राणों को शक्तिशाली बनाया जाता है जिससे शरीर में ओज, तेज व शक्ति की स्थिरता रहती है और सभी क्षेत्रों में

सफलता और विकास के नये मापदण्ड स्थापित किये जाते हैं। इन सब के मूल में वही अग्नितत्व ही है।

वेद शास्त्रों में अग्नि चरित्र अर्थात् अग्नि के गुणों व शक्तियों का वर्णन इस प्रकार से किया है:—

अग्नि ऋत् (धर्म) का रक्षक है। (ऋ० १।१)। अग्नि की गति तीव्र है, अग्नि दिव्य और पवित्र है। (ऋ० १।१२)। अग्नि शिव—सुन्दर—कल्याणकारी है।..................पर्वत का धन, मेघ का जल व ज्वालामुखी पर्वतों में उत्पादन वृद्धि करने वाले पदार्थों का स्वामी अग्नि ही है.........सूर्य और पृथ्वी को स्थिरता प्रदान करने वाला अग्नि ही है। (ऋ० १।६।७) जठराग्नि प्राणियों के शरीर में, दावानल रूपी अग्नि वृक्षों के काष्ठ में और जल के गर्भ में वह विद्युत के रूप में निवास करती है। (ऋ० १।७०।४)। अग्नि का तेज महान् है। (ऋ० १।७४)। अग्नि की कृपा से ही गायों के दूध में वृद्धि होती है। (ऋ० १।७०।१०)। प्रथम अग्नि का निवास पृथ्वी पर है जिससे भोजन पचता है। द्वितीय अग्नि अन्तरिक्ष में है जो पृथ्वी से जल का आकर्षण करता है और फिर वर्षा के रूप में लौटा देता है। तृतीय अग्नि आकाश में स्थित है जो सात माताओं—कृत्तिका नक्षत्र के सात ताराओं में अपना स्थान बनाये हुए हैं (ऋ०१।१४१।६) अग्नि ही वह रथ है जिसमें चन्द्रमा घूमते हैं। (ऋ० ३।२।५) अग्नि शक्तिशाली होने के कारण ही सूर्य है। वह महान् सामर्थ्य वाला है, इसलिये उसे दक्ष कहते हैं। (ऋ० ३।१४।४–७)। अग्नि समस्त भुवन का राजा होने के कारण सम्राट है, वह वीरों में महान वीर है। वह पृथ्वी व आकाश का राजा है। (ऋ० ७.६।१-२)।

"अग्नि धनों को दिलाने वाला, पोषक तथा वीरत्व प्रदान करने वाला है" (ऋग्वेद १।१।१–५)। 'हे अग्ने ! तू हविदाता का कल्याण करने वाला है" (१।१।६)। "हे अग्ने ! तुम्हारे समान कोई

देवता या मनुष्य महान नहीं है, जो तुम्हरे बल का सामना कर सके" (१।१६।२)। "हे अग्ने ! होता के वरण करने पर तुम्हारे बल से आकाश पृथ्वी कांपते है" (१।३१।२३)। "मनुष्यों ने जिस बलवर्द्धक अग्नि को धारण किया है, हम उनको हवियों से तृप्त करे" (१।३६।२)। "अग्नि आकाश की मूर्द्धा, पृथ्वी का अधिपति है। सब मनुष्यों में व्याप्त उस अग्नि को ज्योतिरूप से देवताओं ने मनुष्य में प्रकट किया" (१।५ ६।२)। "जैसे सूर्य पृथ्वी को धारण करता है, वैसे अग्नि ने अन्तरिक्ष को धारण किया है" (१६।७।३) 'हे अग्ने ! तुम्हारा गुण किरणों और नक्षत्रों में भी स्थापित है" (१।७१।५)। 'हे अग्ने ! तुम सब संसार के साथ छाया के समान रहते हो। तुम्हीं ने आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष को पूर्ण किया है" (१।७३।८)। "यह अग्यि पृथ्वी को सब ओर से स्पर्श करते हैं" (१।१४०।५)। "तुम जलों के समान रक्षक, आकाश पृथ्वी में व्यापक होते हो" (२।२।४)। "अमरत्व प्राप्त देवताओं ने अग्नि की इच्छा से विश्वव्यापी अग्नि को पार्थिव, विद्युत और सूर्य रूप दिये। उन्होंने उन तीनों में से संसार के पालनकर्त्ता पार्थिव आग्न को पृथ्वी पर तथा शेष दोनों को आकाश में स्थापित किया' (३।२।६)। "देवताओं का आह्वान करने वाले, अत्यन्त बुद्धिमान, संसार के स्वामी अग्निदेव हमारे यज्ञ में आते हैं" (३।१४।१)। 'हे बलवान अग्निदेव ! मित्र, वरुणादि समस्त देवगण तुम्हारे प्रति स्तोत्र उच्चारण करते हैं। क्योंकि तुम बल के पुत्र तथा साक्षात् सूर्य हो। तुम अपनी पथ प्रदर्शन करने वाली रश्मियों को विस्तृत कर आलोक में स्थित रहते हो" (३।१४।४) "हे अग्ने ! तुम्हारा तेज सभी तेजोमय पदार्थों में सर्वश्रेष्ठ है" (४।७।६)। "वे अग्नि स्तुत्य, बली, सम्राट इन्द्र के समाम ही हैं। अग्नि तेजस्वी, पर्वतों के धारणकर्ता, कल्याणप्रद और आकाश–पृथ्वी के अधिपति हैं" (५ ६।१–२)। 'सूर्य के समान ही अग्नि अत्यन्त तेजस्वी होते हैं" (७।१०।१) "हे अग्ने ! तुम संसार के पालक होकर

हमें धन प्रदान करो।" (७।१५।११) "हे अग्ने ! जैसे पुत्र माता-पिता की सेवा करता हुआ उन्हें सुख देता है, वैसे ही तुम आकाश-पृथ्वी को विस्तृत करते हुये उन्हें पूर्ण करते हो।" (१०।५।७)। यजुर्वेद १२।६७ में कहा है—'हे अग्ने ! तुम औषधियों के गर्भ में हो', वनस्पतियों के गर्भ में हो, सब भूतों के गर्भ में हो और जल में भी हो।"

अग्नि के उपरोक्त महान गुणों को दृष्टि में रखते हुये ही इसे देवता की सज्ञा दी गई, इसकी पूजा अर्चना के विधान बने ताकि इसकी शक्तियों को धारण करके हम शक्तिशाली व तेजस्वी बन सकें। यह अग्नि देवता हमारे शरीर में स्थित रहता है। इसकी वास्तविक पूजा इसकी शक्ति को स्थिर रखना है ताकि हम सभी सांसारिक कार्य भली प्रकार क्रियाशीलता से आयु के अन्तिम क्षणों तक करते रहें। इस शक्ति को सुरक्षित रखने के लिये जहाँ अनेकों नियमों का पालन करना पड़ता है, वहाँ इसे विकसित और उद्दीप्त रखने के लिए संध्या, प्राणायाम आदि अनेकों साधना विधान बनाए गए हैं, उनमें से एक सशक्त साधन "अग्नि सूक्त" की साधना है जिसके दैनिक पाठ व हवन से अग्नि तत्व की वृद्धि होती है और तेज, ओज, शक्ति व आकर्षण का विकास होता है। इसकी दैनिक साधना से रोगों की सुरक्षा रहती है। यदि शरीर किसी रोग से ग्रस्त हो गया हो तो उसके निवारण में सहयोग मिलता है। इस साधना से अशक्ति, मन्दता, जड़ता, अनुत्साह, अवसाद, अकर्मण्यता, भीरुता की स्थिति व प्रवृत्ति का निवारण और शक्ति, उत्साह, क्रियाशीलता, निर्भयता की वृद्धि होती है।

अग्नि सूक्त के मन्त्र इस प्रकार हैं:—

ॐ अग्नि मीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् ॥१

ॐ अग्नि रात्रि भरद्वाजं गविष्ठिरं प्रावन्नः कण्वं त्रसदस्युमाहवे । अग्नि वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृलीकाय पुरोहितः ॥ २

ॐ अग्निरिव मन्यो त्विषतः सहस्व सेननीनः सहुरेहूत एधि । हत्वाय शत्रून्वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ॥३

ॐ अग्निरीशे बृहतो अध्वरस्याग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्य । क्रतुं ह्यस्य वसवो जुषन्ताथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ॥४

ॐ अग्निऋर्षिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् ॥५

ॐ अग्निर्जाता देवानामग्निर्वेद मर्तानामपीच्यम् । अग्निः स द्रविणोदा अग्निर्द्वारा व्यूर्णुते स्वाहुतो नवीयसा नभन्तामन्यके समे ॥६

ॐ अग्निदद्रिद्रविणं वीरपेशा अग्निऋर्षिं यः सहस्रा सनोति । अग्निर्दिवि हव्यमा ततानाग्नेर्धामानि विभ्रता पुरुत्रा ॥७

ॐ अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वंन्य त्रिणम् । अग्निर्नो वनते रयिम् ॥८

ॐ अग्नि वो बृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् अच्छ्व नप्त्रे सहस्वते ॥९

ॐ अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥१०

ॐ अग्निमूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रेतांसि जिन्वति ॥११

ॐ अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः । अग्निमीधे विवस्वभिः ॥१२

ॐ अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् अर्कस्त्रि धातू रजसो विमानोऽजस्रो धर्मो हविरस्मि नाम ।।१३

ॐ अग्नि: प्रत्नेन मन्मना शुम्भानस्तन्वं स्वाम् । कविर्विप्रेण वावृधे ।।१४

ॐ अग्निनेन्द्रेण वरुणेन विष्णुनादित्यै रुद्रैर्वसुभि: सचाभुवा । सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिवतमश्विना ।।१५

ॐ अग्नि दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे । देवाँ आ सादयादिह ।।१६

ॐ अग्नि तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनव: । अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ।।१७

प्राण सूक्त

हमारे वेद शास्त्रों ने प्राण तत्व का उच्च मूल्यांकन किया है क्योंकि प्राण ही हमारा जीवन है। इसके अभाव को ही हमारी शारीरिक मृत्यु मानी जाती है। जब तक प्राण सबल रहता है, तब तक शरीर में तेजस्विता स्थिर रहती है। प्राण को विराट् कहा गया है। सूर्य चन्द्र प्राण ही हैं। वायु में प्राण का सञ्चार सूर्य किरणें ही करती हैं। औषधियों में प्राण का सिंचन चन्द्र किरणों द्वारा होता है। प्रजापति ही प्राणों के पुञ्ज हैं। वह प्राण शक्ति के भण्डार हैं। इसीलिये वेद ने प्राण को ईश्वर की संज्ञा दी है। प्राण का नाम रुद्र है। वृक्ष व अन्य प्राणी इसी के बल पर जीवित रहते हैं। इसे कार्यशील व इन्द्रियों की प्रेरक शक्ति का नाम भी दिया जा सकता है।

प्राण वह स्वतन्त्र तत्व है जिससे शरीर को आत्मा के रहने योग्य बनाया जाता है। प्राण शक्ति का वह रूप है जिससे कर्म करके

वह निरन्तर प्रगति पथ पर अग्रसर होता है, अपना पार्थिव विकास करता है। जिस शक्ति की सहायता से हम खाते, पीते, चलते, साँस लेते, सोचते, लिखते, बोलते, विचारते और सभी कार्य करते हैं, वह ही प्राण है। प्राण की न्यूनता को ही विकृति और रोग कहा जाता है। जहाँ प्राण प्रचुर मात्रा में है और निरन्तर उसे सशक्त बनाने की क्रिया का सञ्चालन हो रहा है वहाँ निर्बलता और रोग अपना निवास बनाने में सफल नहीं हो पाते, वहाँ शक्ति के रूप में बलिष्ठता, स्वस्थता, स्फूर्ति और क्रियाशीलता ही दृष्टिगोचर होती है।

एक विद्वान् ने इसे इस तरह समझाया है—"प्राण एक ऐसा नाम है जिससे हम उस सर्व-व्यापक तत्व का बोध करते हैं जो सब प्रकार की गति, बल, शक्ति चाहे वह आकर्षण शक्ति के रूप में, चाहे बिजली, ग्रहों की चाल और प्राणियों के उच्च (विकसित) से लेकर नीच (अविकसित) जीवन तक में प्रकट है, सबका द्योतक है। वह बल और शक्ति के समस्त रूपों का सारांश कहा जा सकता है। यह वह तत्व है जो एक विशेष रीति से कार्य करके उस क्रिया को उत्पन्न करता है जो जीवन के साथ रहती है। यह प्रधान तत्व प्रत्येक द्रव्य (भौतिक पदार्थ) में है पर तो भी यह द्रव्य नहीं। यह वायु में है पर यह न तो वायु है और न उसका अवयव ही है। यह उस भोजन में है जिसे हम खाते हैं, पर इसकी गणना भोजन में पाये जाने वाले पोषक तत्वों में नहीं की जा सकती। यह पानी में है परन्तु यह पानी के उन रासायनिक तत्वों में से एक भी नहीं है जिससे पानी बना हुआ है। यह सूर्य के प्रकाश में है पर इसे न तो इसका ताप कह सकते हैं और न किरण। यह इन सब चीजों की मूल शक्ति है—यह चीजें केवल इसे व्यक्त करने वाली हैं।"

इसीलिये इस जीवन प्रदान करने वाली महान् शक्ति प्राण की हमारे शास्त्रों में बहुत प्रशंसा की गई है। अथर्व वेद का एक सम्पूर्ण

सूक्त इसके लिये विहित किया गया हैं। ११वें काण्ड के चौथे सूक्त के कुछ मन्त्रों का अनुवाद यहाँ दे रहे हैं:—

"सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर में व्याप्त सचेष्ट को प्रणाम है, जिसके वश में यह संसार रहता है वह भूतकाल से अविच्छिन है। वह प्राणियों का ईश्वर है, उसमें सब संसार प्रतिष्ठित है। ऐसे उस प्राण के लिए नमस्कार है ।। १ ।। हे प्राण! तुम ध्वनि करने वाले हो, तुम मेघ जल में प्रविष्ट एवं गर्जनशील हो, तुमको प्रणाम है। तुम विद्युत रूप में चमकते हो, वर्षा करने वाले हो। तुमको नमस्कार है ।। २ ।। सूर्यात्मक मेघ ध्वनि से जब प्राण औषधि आदि को अभिलक्षित करता हुआ गर्जता है, तब वे औषधि आदि गर्भ-धारण में समर्थ होती हैं ।। ३ ।। वर्षा ऋतु की प्राप्ति पर जब प्राण औषधियों के प्रति गर्जन करता है, तब सब हर्षित होते हैं। पृथिवी के सभी प्राणी आनन्द में भर जाते हैं।"

प्राण ही शरीर से निकल कर मृत्यु उपस्थित करता है। देह में वर्तमान उसी प्राण की आराधना इन्द्रियाँ करती हैं। वही प्राण सत्याचरण वाले को श्रेष्ठ लोक में स्थित करता है ।। ११ ।। प्राण ही विराट् है, वही देष्ट्री है, ऐसे प्राण की सभी सेवा करते हैं। वही सबको प्रेरणा देने वाला सूर्य है, वही सोम है, ज्ञानीजन उस प्राण को ही प्रजापति कहते हैं ।।१२।।

"मातरिश्वा वायु को प्राण कहते हैं। संसार का आधारभूत वायु ही प्राण है। संसार के आधारभूत प्राण में भूतकाल में उत्पन्न संसार और भविष्य में उत्पन्न होने वाला संसार आश्रय रूप में रहता है। सम्पूर्ण विश्व ही इस प्राण में प्रतिष्ठित है ।।१५।। हे प्राण! जब तुम वर्षा द्वारा तृप्त करते हो, तब अथर्वा, अङ्गिरागोत्र वालों और देवताओं द्वारा रची गई तथा मनुष्यों द्वारा प्रकट की जाने वाली औषधियाँ उत्पन्न होती हैं ।।१६।। जब प्राण वर्षा के रूप में पृथिवी पर

बरसता है, उसके पश्चात् ही व्रीहि, जौ तथा लता रूप औषधियाँ उत्पन्न होती हैं ॥१७॥ हे प्राण ! तू जिस विद्वान में प्रविष्ट होता है और जो तेरी उक्त महिमा को जानता है. सब देवता उस विद्वान् को श्रेष्ठ स्वर्ग में अमृतत्व प्रदान करते हैं ॥ १८ ॥ हे प्राण ! देवता मनुष्यादि जैसे तुम्हारे उपभोग के अन्न को लाते हैं, वैसे ही तुम्हारी महिमा जानने वाले विद्वान् के लिये भी वे लावें ॥१९॥ मनुष्यों में ही नहीं, देवताओं में भी प्राण गर्भ रूप से घूमता है। सब ओर व्याप्त होकर वही उत्पन्न होता है। इस नित्य वर्तमान प्राण ने भूतकाल की और भविष्य की वस्तुओं में भी पिता का पुत्र में अपने अवयवों से प्रविष्ट होने के समान, अपनी शक्ति से प्रवेश कर लिया है ॥२०॥

"जो प्राण, संसार का अधिपति है, वह प्रमाद रहित होकर सर्वत्र चेष्टावान् रहता है। वह प्राण अविच्छिन्न रूप से मेरे शरीर में वर्तमान रहे ॥ २४ ॥ हे प्राण ! नद्रा से पराधीन हुए प्राणियों में उनके रक्षार्थ तुम चैतन्य रहो। प्राणी सोता है, परन्तु प्राण का सोना किसी ने नहीं सुना ॥ २५ ॥ हे प्राण ! तुम मुझसे मुख मत फिराओ। मुझसे अन्यत्र न होओ। मैं जीवन के निमित्त तुम्हें अपने शरीर में रोकता हूँ। वैश्वानर अग्नि को जैसे देह में धारण करते हैं, वैसे ही मैं तुम्हें देह में धारण करता हूँ ॥ २६ ॥

अथर्ववेद (१०।२।२४) की घोषणा है—"यह शिर ही बन्द किया हुआ देवताओं का कोश है। प्राण, मन और अन्न इसकी रक्षा करते हैं।"

ऋग्वेद में प्राण वायु को ब्रह्म कहा गया है। अन्य शास्त्र भी इसका प्रतिपादन करते हैं। प्राण ही निश्चित रूप से अमृत है। (शतपथ ६ । १ । २ । २२) "प्राण ही शरीर रूपी नौका की सुप्रतिष्ठा है।" (शतपथ ४।४।१।१०) ताण्डय ब्राह्मण में इसे और खोलकर

समझाया गया है—"कौन सोता है ? कौन जागता है ? जिसका प्राण जागता है, वस्तुतः वही जागता है (१०।४।४)"

उपनिषदों में भी प्राण की महिमा का वर्णन किया है-"हे प्राण ! आप ही प्रजापति हैं, आप ही गर्भ में विचरण करते हैं, आप ही माता-पिता के अनुरूप होकर जन्म लेते हैं यह सभी प्राणी आपको ही आत्म-समर्पण करते हैं, वह प्राणों के साथ ही प्रतिष्ठित हो रहा है (प्रश्नोपनिषद् ३।११)।" "प्राण से ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं और जन्म लेने के बाद प्राण से ही जीवित रहते हैं (तैत्तिरीय)।" "देवता मनुष्य, पशु और समस्त प्राणी प्राण से ही अनुप्राणित हैं। प्राण ही जीवन है। इसी से उसे आयु कहते हैं। यह जानकर तो प्राण स्वरूप की उपासना करता है, वह निश्चय ही सम्पूर्ण आयु को प्राप्त कर लेता है (तैत्तिरीय २।३)।" "जब तक इस शरीर में प्राण है, तभी तक जीवन है (कौषीतकि उपनिषद)।" प्राण ही जगत का कारण परब्रह्म है। मन्त्र ज्ञान तथा पंचकोष प्राण पर आधारित हैं (ब्रह्मोपनिषद)।" यह सब प्राणी प्राण से ही उत्पन्न होते हैं और प्राण में ही लीन हो जाते हैं (छान्दोग्योपनिषद १।११।५) मैं ही प्राण रूप प्रज्ञा हूँ। मुझे ही आयु और अमृत जानकर उपासना करो। जब तक प्राण है, तभी तक जीवन है। इस लोक में अमृतत्व प्राप्ति का आधार प्राण ही है (शांखायन आरण्यक ५।२)।"

उपरोक्त शास्त्र वचनों से स्पष्ट है कि प्राण हमारा जीवन तत्व है। हमारे शरीर की स्थिरता का आधार वही है। सफल जीवन की समस्त क्रियायें इसी के सहारे सम्पन्न होती हैं। हर क्षेत्र में सिद्धि और चमत्कार का आधार यही है। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सभी प्रकार की शक्तियों का विकास यही करता है। इसी के अभाव में रोग, शोक और पतन होता है। जिसने प्राणों को सबल बना लिया उसने हर प्रकार से अपना जीवन सफल बना लिया क्योंकि साधना का

लक्ष्य भौतिक हो या आध्यात्मिक, वह शक्ति के सहारे ही पूर्ण होता है। इसीलिए ऋषियों ने प्राण शक्ति को सदैव सबल बनाये रखने पर बल दिया है और नित्य प्रति ऐसे साधन उपयोग करने की प्रेरणा दी है जिनसे प्राणों में तेजस्विता व वलिष्ठता बनी रहती है। नित्य ३ बार संध्या करने का विधान बनाया गया है, जिसमें प्राण शक्ति को विकसित करने की सशक्त विधि प्राणायाम का उपयोग किया जाता है। इसके साथ-साथ प्राण सूक्त का उच्चस्वर से पाठ व हवन भी उपयोगी साधन माना गया है। पाठ करते हुए यह भावना करनी चाहिये कि हमारा प्राण हर प्रकार से बलवान व शक्तिशाली बनता जा रहा है जिसके परिणाम स्वरूप निर्बलता और रोग शरीर से विदाई ले रहे हैं। जीवन को स्फूर्तिमय बनाये रखने के लिए इसका नित्य पाठ आवश्यक है। रोग निवृत्ति के लिये भी यह औषधि का सा काम करता है। प्राण सूक्त के मन्त्र इस प्रकार हैं:—

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते। प्राणोह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ।।१

प्राणायान्तरिक्षाय वयोभ्यो वायवेऽधिपतये स्वाहा ।।२

प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदामग्निमिव जातमभिसंधमामि। नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणायते करम् ।।३

प्राणेनविश्वतो वीर्यं देवाः सूर्यं समैरयन्। व्यहं सर्वेण पाप्मना वियक्ष्मेण समायुषाः ।।४

प्राणेन प्राणतां प्राणे हैव भव मा मृथाः व्य १ हं सर्वेण पाप्मनावि यक्ष्मेण समायुषा ।।५

प्राणेनाग्निं संसृजति वातः प्राणेन संहितः। प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन् ।।६

प्राणेनाग्ने चक्षुषा संसृजेमं समीरयतन्वा ३ सं वलेन। वेत्थामृतस्यमानुगान्मा नुभूमिगृहोभुवत् ।।७

प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय। अपरि परेण यथा यमराज्ञः पितॄन् गच्छ ॥८

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या। व्यानो दानौ वाङ्मनसो वा आकूतिमावहन् ॥६

प्राणा पानौ चक्षुः श्र त्र मक्षितिश्च क्षितिश्च या। व्यानो दानौ वाङ्मनः शरीरेण तईयन्ते ॥१०

प्राणाय नमो यस्य सर्व मिदं वशे। योभूतः सर्वस्येश्वरो यास्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥११

प्राणः प्रजा अनुवस्ते पिता पुत्र मिवप्रियम्। प्राणो-सर्वस्येश्वरोयच्च प्राणति यच्चन ॥१२

प्राणोमृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते। प्राणोह सत्यवादिनमुत्तमे लोका आदधत् ॥१३

प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वोद नाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसे ५वस्व क्रतूदक्षाभ्यां मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व श्रोत्राय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व चक्षुर्भ्यां मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥१४

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैकऽइन्द्राजा जगतो वभूव। यः ईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषाविधेम् ॥१५

प्राणम्मे पाह्यपानंमे पाहि व्यानम्मे पाहि चक्षुर्मऽउर्व्या विभाहि श्रोत्रम्मे श्लोकय अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि दिवो वृष्टिमेयर ॥१६

प्राणदाऽअपानदा व्यानदा वर्चोदा परिवोदाः। अन्याँस्तेऽ अस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्य ँ शिवोभव ॥१७

प्राणया मेऽअपानपाश्चक्षुष्याः श्रोत्रपाश्चमे। वाचो मे विश्वभेषजा मनसोऽसि विलायकः ॥१८

प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मे ऽसुश्च मे चित्तं चमेऽ आधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्र च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।।१९

वैश्वानर सूक्त

वेद में वैश्वानर अग्नि का वर्णन इस प्रकार किया गया है:—

"सब को आनन्द देने वाले, सुवर्णमय रथ वाले, पीत वर्ण वाले, जल में वास करने वाले, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, द्रुतगामी, बली, पोषक, प्रदीप्त, वैश्वानर अग्नि को देवताओं ने स्थापित किया" (ऋ० ३।३।५)। वैश्वानर अग्नि के तेज से दिव्यलोक के उच्च स्थान बने हैं। वैश्वानर की मूर्धा रूप मेघ में जलराशि चलती है और उससे सात नदियां प्रवाहित होती हैं।" (ऋ० ६।१०।६)। "हम इन सब स्थावर जङ्गम प्राणियों के नाभि के समान मेधावी अग्नि को बढ़ाने वाले वैश्वानर अग्नि की शरण को प्राप्त हुये उन्हीं की उपासना करते हैं" (ऋ० १०।५।३)।

वैश्वानर अग्नि प्राणियों में क्षुधा रूप से निवास करती है। यह पृथ्वी के गर्भ में भी है और आकाश के ऊपर भी है। द्यावापृथ्वी अपने पुत्र वैश्वानर अग्नि को उत्पन्न करके इतनी बड़ी हो गई। वैश्वानर अग्नि का विद्युत रूप मेघों का भेदन करके उनसे जल की वर्षा कराता है (ऋ० १।५९) वैश्वानर अग्नि सिंह की तरह गर्जन करती है। (ऋ० ३।२।११)। अतः स्वास्थ्य की स्थिरता, विकास और वृद्धि के लिये वैश्वानर अग्नि का महत्वपूर्ण स्थान है। जिन व्यक्तियों की पाचन क्रिया में शिथिलता हो, भोजन भली प्रकार से न पचता हो अथवा पाचन क्रिया में अव्यवस्था होने पर कोई रोग हो गया हो तो वैश्वानर अग्नि का अभाव समझना चाहिये। इसकी निवृत्ति के लिए वैश्वानर सूक्त का पाठ करना चाहिये और इन मन्त्रों से हवन भी करना चाहिए।

मन्त्र इस प्रकार है—

वैश्वानरो न ऊतय आप्रयातु परावतः । अग्निर्न सुष्टुतो-रूप ।।१

वैश्वानरो न आगमदिमं सजूरूप । अग्निरूक्थेष्वंहसु ।।२

वैश्वानरोऽङ्गिरसां स्तोममुक्थं चचाक्लृपत् । ऐषु द्युम्नं स्वर्यमत् ।।३

वैश्वानरो रश्मिभिर्नः पुनातु वातः प्राणेनेषिरोनभोभिः । द्यावा पृथिवी पयसा पयस्वती ऋतावरीयज्ञियेनः पुनीताम् ।।४

वैश्वानरीं सूनृतामारभध्व यस्या आशास्तन्वो वीतपृष्ठाः । तया गृणन्तः सधमादेषु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।।५

वैश्वानरीं वर्चस आरभध्वं शुद्धा भवन्तो शुचयः पावकाः इहेडया सधमादं मदन्तो ज्योक् पश्येम सूर्य मुच्चरन्तम् ।।६

वैश्वानराय प्रति वेदयामि यद्यृणं सगरो देवतासू । स एतान् पाशान् विचृत वेद सर्वानथ पक्वेन सह संभवेम ।।७

वैश्वानरः पवितामा पुनातु यत् संगरमभिधावाम्याशाम् । अना जानन् मनसा याचमानो यत् तत्रैना अप तत् सुवामि ।।८

वैश्वानरस्य प्रतिमोपरिद्यौर्यावद् रोदसी विववाधे अग्नि । ततः पष्ठादामुतो यन्ति स्तोमा उदितो यन्त्यभिषष्ठमह्नः ।।९

वैश्वानरस्य दंष्ट्राभ्यांहेतिस्तं समधादधि । ययंतं प्सात्वा-हुतिः समिह देवी सहीयसी ।।१०

वैश्वानरे हविरिदं गुहोमि साहस्रं शतधारमुत्सम् । स विभर्ति पितरं पितामहान् प्रपितामहान्विभर्ति पिन्वमानः ।।११

अश्विन सूक्त

इसका पाठ अश्विनीकुमार देवता की प्रसन्नता, रोगों की निवृत्ति और आरोग्य प्राप्ति के लिए किया जाता है ।

अश्विनी कुमार दो भाई और देवता हैं। उनकी उत्पत्ति एक ही स्थान से हुई और एक पक्षी के दो पक्षों की तरह दोनों को जुड़ा हुआ माना जाता है। वेदों में इन्हें सत्यवादी, बलशाली, पराक्रमी, साहसी, परदुःख कातर, परमार्थी, सिद्धिदाता, आरोग्यदाता और सफल चिकित्सक कहा गया है। (ऋ० १।११६।१०) में इन्हें सम्बोधित करते हुए कहा गया है–"तुमने वृद्ध 'च्यवन' का बुढ़ापा कवच के समान हटा दिया और बन्धुओं द्वारा परित्यक्त ऋषि की आयु बढ़ाकर कन्याओं का पति बना दिया।" इसी सूक्त के अगले मन्त्रों में कहा है—"तुमने रोते हुए 'कण्व' को देखने की शक्ति दी। राजा 'खेल' की पत्नी का पैर युद्ध में कट गया। तुमने उसके चलने के लिए लोहे की जाँघ बना दी।" (ऋ० १।११७।४) के अनुसार दुष्टों द्वारा जल में छिपाये छिन्न-भिन्न शरीर वाले 'रेम' ऋषि के अङ्गों को उन्होंने जोड़ दिया। उन्होंने मेधावी 'भरद्वाज' को पुत्र दिया और 'विश्पला' को स्वस्थ किया (ऋ० १।११७।११)

ऋग्वेद (१।११७।१७) में वर्णन है कि 'वृकी' की सौ भेड़ें देने वाले "ऋज्राश्व" को उसके पिता ने अन्धा बना दिया। अश्विनी-कुमारों ने उसे नेत्र देकर उनमें प्रकाश भर दिया। ऋग्वेद (१।११७।२४) में कहा है कि उन्होंने तीन टुकड़े हुये 'श्याव' ऋषि को जोड़कर जीवित कर दिया। ऋग्वेद (१।१२०।६) में सूचित किया है कि अश्विनी-कुमार अन्धों को नेत्र प्रदान करते हैं। तभी ऋग्वेद (८।१८।८) में प्रार्थना की गई है कि–"देवताओं में विख्यात चिकित्सक अश्विनीकुमार हमें सुख प्रदान करें। पापों को हमारे पास से हटावें, शत्रुओं को भी हमसे दूर करें।"

विद्वानों ने अश्विनी कुमारों की निरुक्ति की है। उनकी धारणा है कि जैसे वैदिक देवता परमात्मा की भिन्न-भिन्न शक्तियों के नाम होते हैं, उनके अनेकों गुणों के वाचक होते हैं, उसी तरह से अश्विनीकुमार

भी सृष्टि के अनेकों पदार्थों के वाचक हैं। शतपथ ब्राह्मण ४।१।५।१६ में द्यावा पृथिवी को अश्विन देवता कहा गया है। बृहद्देवता ७।१२६ में सूर्य और चन्द्र को अश्विन कहा गया है। शतपथ १२।६।१।१२ में दोनों कानों को अश्विन कहा गया है। शास्त्रों में उन्हें दिन-रात का भी वाचक बताया गया है।

अश्विनीकुमारों को बसन्त का भी वाचक कहा गया है। इस मत के समर्थकों का कहना है चूंकि सर्दियों में सूर्य की शक्ति घटने लगती है, बसन्त उसे पुनः युवा बना देता है। इस पर वह च्यवन ऋषि की कथा घटाते हैं कि च्य धातु का अर्थ है क्षय होना, घटना। अतः च्यवन सूर्य हुआ। जाड़ों में सूर्य की शक्ति घट जाती है अर्थात् वह वृद्ध हो जाता है। बसंत में शक्ति के बढ़ने को युवा कहा गया है। प्रो० मैक्समूलर अपनी पुस्तक 'कन्ट्रीब्यूशन्स' में लिखते हैं कि "च्यवन अस्त होते हुये सूर्य हैं जिनका अश्विन जीर्णोद्धार करते हैं।"

अश्विनों को प्राणापान का वाचक भी कहा गया है। काठक संहिता १४।४ व मैत्रायणी संहिता १।११।१० में इसकी पुष्टि की गई है। निरुक्त ६।१३, शतपथ १२।६।१।१४, पारस्कर गृह सूत्र ३।२५ में अश्विन को देवताओं की नासिका के दो छिद्रों से उत्पन्न बताया गया है जिसका स्पष्ट अभिप्राय है प्राण और अपान। प्राणापान के लिये अथर्ववेद ७।५३। २+५ में कहा गया है। हे प्राणापान! आयु की कामना वाले इस पुरुष के शरीर में रहो। हे पुरुष! यह प्राणापान तेरे साथ रहें। तू सौ वर्ष तक का जीवन फिर धारण कर। अग्नि देव तेरी रक्षा करें। हे आयु की कामना वाले पुरुष! तेरा जीवन समाप्त होने को था, उसे प्राणापान पुनः प्राप्त करावें। मैं तेरी आयु को अग्नि देव के पास लाई गई मन्त्र शक्ति द्वारा बढ़ाता हूँ। आयु की कामना वाले इस पुरुष को प्राणापान न त्यागें। मैं इसे रक्षा के लिये सप्तर्षियों को देता हूँ। वह इसे वृद्धावस्था तक सुख से रखें। हे प्राणा-

पान ! जैसे वैल गोष्ठ में घुसते हैं, वैसे ही तुम इस आयुष्काम के शरीर में घुसो। यह पुरुष वृद्धावस्था तक जीवित रहें।"

प्राणापान के स्वस्थ सञ्चालन से शरीर स्वस्थ रहता है और रोगी निरोग हो जाता है। यह निर्विवाद है क्योंकि श्वास भीतर खींचने से शुद्ध वायु—आक्सीजन आती है और प्रश्वास द्वारा अन्दर की अशुद्ध वायु—कार्बन डायोक्साइड को बाहर फेंका जाता है। प्राणायाम द्वारा असाध्य रोगों को भी दूर किया जा सकता है। मृत्यु से भी बचा जा सकता है। जैसे—अथर्ववेद (७।५३।१) में आश्वासन दिया गया है कि "अश्विद्वय इसकी मृत्यु के कारणों को हटावें।" इसीलिये ऋग्वेद (७।१८।८), में उन्हें देवताओं का विख्यात चिकित्सक कहा गया है। देवताओं का वैद्य इसलिए कहा गया है कि इस शरीर में निवास करने वाला जीवात्मा ही इन्द्र है (काशिका वृत्ति, शतपथ ६।३।२।४) और ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ और मन—११ इन्द्रियाँ शरीर में निवास करने वाले ११ देवता हैं। इन्द्र ही इस शरीर रूपी देवताओं की पुरी पर शासन करते हैं। इस पुरी के देवताओं को स्वस्थ रखना और रोग होने पर उन्हें निरोग करने का दायित्व अश्विनी कुमारों पर है। प्राणापान ही उनकी रक्षा करते हैं। यह जीवन पर्यन्त आपस में जुड़े रहते हैं, अपानप्राण को अलग नहीं होने देता। इसीलिये अश्विनी-कुमारों को एक दूसरे से जुड़ा हुआ कहा गया है। अतः हमें भी अपने शरीर में निवास करने वाले प्राण और अपान रूपी अश्विनी कुमार देवताओं को सतेज करना चाहिये तथा हम सदैव स्वस्थ और निरोग रहे।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अश्विन सूक्त का नित्य पाठ व हवन श्रेष्ठ धन माना गया है। मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ अश्विना सु विचाक शद्वृक्ष परशुमाँ इव। अन्ति षद्-भूतु वामवः ॥१

ॐ अश्विना स्वृषे स्तुहि कुवित्तो श्रवतो हवम् । नेदियसः कूकयातः पणींरूत ॥ २

ॐ अश्वावतीर्गोमती विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य । परा च यन्ति पुनरा च यन्ति भद्रा माम वहमाना उषासः ॥३

ॐ अश्विना परि वामिषः पुरूचीरीयुर्गीर्भिर्यतमाना आमृध्रा रथो हवामृतजा आद्रि जूतः परि द्यावा पृथिवी याति सद्यः ॥४

ॐ अश्विना पिबतं मधु दीघग्नो शुचिव्रता । ऋतुना यज्ञवाहसा ॥५

ॐ अश्विना पुरुदंसस नरा शवीरया धिया । धिष्ण्या वनतं गिरः ॥६

ॐ अश्विना मधुषुतमो युवाकुः सोमस्त पातमा गतं दुरोणे । रथो ह वां भूरि वपः करिक्रत्सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठ ॥७

ॐ अश्विना यद्ध कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् । वस्वीरु षु वां भुजः पञ्चन्ति वां पृचः ॥८

ॐ अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् । अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥९

ॐ अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये । हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥१०

अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं बलम् । हविषेन्द्र ँ सरस्वती यजमानमवर्द्धयन् ॥११

अश्विना धर्मं पात ँ हार्द्वानमहर्दिवाभिरुतिभिः । तन्त्रायिणे नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥१२

अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम् । वाचेन्द्रो बलेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥१३

अश्विना नमुचेः सुत ँ सोम ँ शुक्रं परिस्रुता । सरस्वती तमा भरद बर्हिषेन्द्राय पातवे ॥१४

अश्विनां पिवतां मधु सरस्वत्य सजोषसा । इन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्तां ँ सोम्यं मधु ॥१५

अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती । आ शुक्र-मासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे ॥१६

अश्विना भेषजं मधु भेषजं नः सरस्वती इन्द्रे त्वष्टा यशः श्रिय ँ रूप ँ रूप मधुः सुते ॥१७

गर्भ सूक्त

आज तो विवाह का उद्देश्य काम वासना की तृप्ति तक सीमित रह गया है परन्तु प्राचीनकाल में यह समाज की नव रचना के लिये सद्गुणी, चरित्रवान और उत्तम नागरिक उत्पन्न करने का एक सशक्त माध्यम था । आज स्त्री को भोग की प्रतिमा माना जाता है परन्तु पहले नररत्न उत्पन्न करने वाली जननी समझा जाता था । आज गर्भ की स्थापना आकस्मिक हो जाती है परन्तु पहले उसकी विशेष तैयारी की जाती थी और अलग से गर्भाधान संस्कार की व्यवस्था थी ।

गर्भाधान संस्कार का उद्देश्य विवाहित दम्पत्ति को अनावश्यक विषय भोग से बचाना था । उन्हें संयम का पाठ पढ़ाना था ताकि वे केवल ऋतुकाल में ही मिला करें, उसके अतिरिक्त नहीं । क्रियात्मक रूप से उन्हें समझाया जाता था कि सन्तानोत्पत्ति ही विवाह का उद्देश्य है ताकि वह सृष्टिकाल के महान् कार्य में सहायक बन सकें ।

चूंकि यह संस्कार विधि विधान से होता था । कई दिन पहले

से इसकी तैयारी होती थी, दम्पत्ति के आहार में परिवर्तन हो जाता था, स्वास्थ्य के विषय में वैद्य की अनुमति ले ली जाती थी, निकट सम्बन्धियों को निमन्त्रित किया जाता था, पुत्रेष्टि यज्ञ किया जाता था, वेद की ऋचाओं का उच्चारण किया जाता था, जो इसी उद्‌देश्य की ओर संकेत करती थीं, उसी अभिप्राय की प्रार्थनायें होती थीं और आशीर्वाद दिये जाते थे। विशेष प्रकार की औषधियाँ खिलाई जाती थीं जो गर्भाधान में सहायक सिद्ध हों। एक मास के लिए ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहना पड़ता था। नव दम्पत्ति उस क्रिया में लज्जा या शर्म अनुभव नहीं करते थे, क्योंकि उनके मन में जाग्रत काम वासना को तृप्त करना नहीं वरन् सन्तानोत्पत्ति का पवित्र उद्‌देश्य लिए होता था। जिस प्रकार से स्त्री और पुरुष को एक सूत्र में बाँधने का माध्यम विवाह होता था, उसी प्रकार विवाह के मुख्य उद्‌देश्य को पूर्ण करने के प्रयत्न का क्रियात्मक कार्य गर्भाधान संस्कार होता था। इसके अतिरिक्त दम्पत्ति आपस मे नहीं मिलते थे। उनके मस्तिष्क में इसी उद्‌देश्य की पूर्ति की योजना रहती थी। तभी हमारे पूर्वज संयमी और वीर्यवान हुआ करते थे। ऐसे संयमी माता पिता की सन्तान भी आदर्श होती थी और घर-घर नररत्न उत्पन्न हुआ करते थे। आज हमारे उद्‌देश्य विकृत होने से व्यभिचार सब ओर अपनी सीमाएँ फैला रहा है।

गर्भाधान क्रिया के सम्बन्ध में अनेकों उदाहरण, सकेत और प्रार्थनाएँ हमारे वेद शास्त्रों में स्थान-स्थान पर उपलब्ध होती हैं जिनमें गर्भ धारण, उसकी रक्षा, पालन और पुष्टि के लिए निवेदन किया गया हैं। कुछ मंत्र और उनके अर्थ इस प्रकार हैं:—

(१) विष्णुर्येनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते॥

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनी देवावा धत्तां पुष्करस्रजा ।।
हरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना ।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ।।
(ऋग्वेद १०।१८४।१-३)

"विष्णु इस नारी को अपत्यवती करें। त्वष्टा इसे प्रजनन योग्य बनावें। प्रजापति इसे गर्भ-शक्ति दें और धाता इसे गर्भ धारण योग्य बनावें। हे सिनीवाली, हे सरस्वती ! इसके गर्भ की रक्षा करो। हे अश्विनी कुमारो ! तुम स्वर्णिम कमल से अलंकृत होते हो। तुम इस नारी के गर्भ का पालन करो। हे पत्नी ! अश्विनीकुमारों ने तुम्हारे जिस गर्भस्थ शिशु की रक्षा के लिये सुवर्णमय दो अरणियों को परस्पर घिसा है, दसवें मास में प्रसव होने पर उसी शिशु को हम यहाँ बुलाते हैं।"

(२) यथा वातः पुष्करिणींसभिङ्गयति सर्वतः ।
एवाते गर्भे एजतु निरंतु दशमास्यः ।।
(ऋग्वेद ५।७८।७)

"वायु जैसे सरोवर आदि के जल को चलाती है, वैसे ही तुम्हारा गर्भस्थ शिशु स्पन्दन करने वाला हो। वह दशम मास में पूर्ण होकर बाहर निकल आवे।"

(३) यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भकादधे ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सुतुं सवितवे ।।

"हे स्त्री ! इस विशाल पृथ्वी द्वारा प्राणियों के शरीर को धारण करने के समान तेरा गर्भ भी प्रसव के समय उत्पन्न होने के निमित्त स्थिर रहे।"

ऋग्वेद ५।७८।८, अथर्ववेद ६।१७।२-४, अथर्ववेद ५।२५।२-१० यजुर्वेद २।२२ में भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये गये हैं।

उपरोक्त मन्त्रों में गर्भ की रक्षा के लिए परमात्मा व अन्य देवताओं से प्रार्थना की गई है। साथ ही पुत्र होने की भी प्रार्थना है। इस प्रकार की भावनाओं के साथ गर्भाधान होने से मानसिक शक्ति का भावी सन्तान पर कल्याणकारी प्रभाव पड़ता है।

गर्भाधान संस्कार का लक्ष्य इच्छित सन्तान की प्राप्ति होना था तभी तो घर-घर में महान् आत्मायें अवतरित होती थीं।

आयुर्वेद ग्रन्थों के अनुसार पुत्र की इच्छा से युग्म रात्रियों में जैसे कि अष्टमी, दशमी द्वादशी और कन्या की इच्छा से विषम रात्रियों में जैसे कि पञ्चमी, सप्तमी और नवमी में स्त्री पुरुष को मिलना चाहिये। नियम यह बताया जाता है कि शुक्र की अधिकता से पुरुष और आर्त्तव की अधिकता से स्त्री की उत्पत्ति होती है। शुक्र से अभिप्राय पुरुष बीज और आर्त्तव से स्त्री बीज से है। युग्म रात्रियों में शुक्र की अधिकता होती है और विषम रात्रियों में आर्त्तव की।

चरक में प्रतिभाशाली, पराक्रमी, दृढ़ मनोबल वाली सन्तान के लिए ऋतु स्नान के पश्चात् एक सप्ताह तक दोनों समय जौ का पथ्य बना कर उसे शहद और घी में मिलाकर गाय के दूध में चाँदी, या कांसे के बर्तन में खाने व दोनों समय सफेद बैल का दर्शन करने का निर्देश है। पुरुष को चाहिये कि वह स्त्री को उत्तम कथायें श्रवण कराये। जो कुछ भी वह देखे या सुने उसकी आकृति व चेष्टा में सौम्यता हो। स्त्री की सखियों का कर्त्तव्य है कि उसे प्रसन्न रखने का प्रयत्न करें। पति को भी चाहिये कि वह पत्नी को हर प्रकार से प्रसन्न रखने की चेष्टा करे।

स्त्री जिस प्रकार के रङ्ग वाली सन्तान चाहती हो वैसे चित्र अपने कमरे में टाँगे, जिन गुणों से सम्पन्न सन्तान की इच्छा रखती हो, वैसे गुणों का चिन्तन करे, सम्भोग के समय वैसे ही विचार मन में लाये। अपने आहार-विहार और रहन-सहन को वैसे ही ढाल लें। इस प्रकार की विधि को अपनाने से इच्छित सन्तान की प्राप्ति होती है।

इच्छित गुणों वाली सन्तान की प्राप्ति में महिलाओं का विशेष हाथ रहता है। एक महिला जिसने कई सन्तानें अपनी इच्छानुसार गुणों वाली उत्पन्न की हैं—"मेरी इच्छा हुई कि अपनी एक सन्तान को प्रमुख वक्ता बनाऊँ। जब मैंने गर्भ धारण किया तो मैं उसी इच्छा से सुयोग्य वक्ताओं के भाषण सुनने जाने लगी और उच्च कोटि के लेखों का अध्ययन करने लगी। उक्त बालक के बड़ा होने पर उसे डा० फाउलर ने जाँचा और पाया कि उसमें भाषण सम्बन्धी योग्यता ही नहीं वरन् अन्य मानसिक शक्तियाँ भी असाधारण रूप में विकसित हैं।" इसी स्त्री ने दूसरे पुत्र को चित्रकार बनाना चाहा और अपनी गर्भ स्थिति के समय में प्रसिद्ध-प्रसिद्ध चित्रशालाओं का अवलोकन करती रही, चित्र-प्रदर्शनियों में भाग लेती रही और प्राकृतिक सौन्दर्य को दिलचस्पी के साथ देखने में विशेष समय लगाया। फलस्वरूप वह लड़का अद्वितीय चित्रकार निकला। इसी प्रकार के प्रयत्नों से उसने अपने तीसरे पुत्र को एक बड़ा विद्वान और नेता बनाया। वह अपने अनुभवों के आधार लिखती है—"मैं निश्चिन्तता पूर्वक कह सकती हूँ कि सन्तान में इच्छानुसार गुणों का समावेश कर देना यह पूर्णतः माता के अधिकार में है।"

भारतीयों के मन में सन्तानोत्पत्ति को उत्कृष्ट विचारधारा के अधिकार में है।"

भारतीयों के मन में सन्तानोत्पत्ति की उत्कृष्ट विचारधारा के कारण ही यहाँ हरिश्चन्द्र, दधीचि, दयानन्द, शङ्कराचार्य, बुद्ध, नारद और गान्धी जैसे महापुरुष उत्पन्न हुये हैं। अभिमन्यु के गर्भावस्था में ही चक्रव्यूह में प्रवेश करने की विद्या सीखने और प्रह्लाद का दैत्य माता पिता का पुत्र होने पर भी गर्भावस्था में नारद जी का उपदेश सुनने से भगवद्भक्त होने आदि के अनेकों सत्य उदाहरण मिलते हैं जिनसे स्पष्ट है कि गर्भकाल में माता की जिस प्रकार की गतिविधियाँ,

कार्य प्रणाली और विचारधारा रहती है, उसी तरह का बालक उत्पन्न होता है। इसीलिये जिस स्त्री के गर्भ हो, उसके रहन-सहन, खान पान, पूजा उपासना, अध्ययन, मनन चिंतन की विशेष व्यवस्था होनी चाहिये ताकि भावी शिशु शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक हर दृष्टि से स्वस्थ, पुष्ट व शक्तिशाली हो और उसके माता पिता को उस पर गर्व हो।

गर्भ स्थापना, गर्भ रक्षा और गर्भ के समुचित विकास के लिये जहाँ और साधनों का उपयोग किया जाता है, वहाँ गर्भ सूक्त की साधना शक्तिशाली व प्रभावशाली सिद्ध होती है। गर्भवती स्त्री को इस सूक्त का कम से कम एक पाठ नित्यप्रति प्रातःकाल स्नान आदि से निवृत होकर करना चाहिये। सुविधा हो तो ३, ५, ७, ९, ११ पाठ भी किए जा सकते हैं। नित्य इन १४ मन्त्रों से हवन भी करना चाहिये। पाठ और हवन करते हुये यह भावना करनी चाहिये कि गर्भस्थ शिशु स्वस्थ, पुष्ट, बिचारशील व सद्‌गुणों से ओत-प्रोत होता जा रहा है। यह पुष्ट भावना शिशु को हर प्रकार से पुष्ट बनाती है। गर्भ सूक्त के मन्त्र इस प्रकार हैं:—

गर्भोऽअस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम्। गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भोऽअपामसि ।।१

गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजनाम्। सं देवो देवेन सवित्रा गत सँ् सूर्य्येण रोचते ।।२

चोदयित्री सुनृतानां चेन्तती सुमतीनाम्। यज्ञ दधे सरस्वती ।।३

तेहि पुत्रासोऽअदितेः प्रजीवसे मर्त्याय। ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ।।४

याः फलिनीर्याऽअफलाऽअपुष्पायाश्चपुष्पिणीः। बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वँ् हसः ।।५

ॐ गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्व-रूपः। नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नाक्स्य पृथिवो उत द्यौः ॥६

ॐ गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा। शतं मा पुर आयसीरक्षन्नधश्येनो जवसा निरदीयम् ॥७

ॐ गर्भेमपातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे। सीदन्नृतस्य योनिमा ॥८

ॐ गर्भे योषामदधुर्वत्समासन्यपीच्येन मनसोत जिह्वया। स विश्वाहा सुमना योग्या अभि सिषासनिर्वनतेकार इज्जितिम् ॥ ९

गर्भेनु नौ जनिता दम्पत कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः। नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उतः द्यौः ॥१०

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम्। गर्भो विश्वस्य भूतस्य सो अग्ने गर्भमेहधाः ॥११

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो हिमवतामुत। गर्भो विश्वस्य भूतस्येमं मे अगदं कृधि ॥१२

गर्भंते मित्रावरुणो गर्भं देवो बृहस्पतिः। गर्भं त इन्द्रश्चा-ग्निश्च गर्भं धाता दधाते त ॥१३

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति। गर्भं ते अश्वि-नोभा धत्तां पुष्करस्रजा ॥१४

नमः सूक्त

नमः सूक्त से अदम्य शक्तियों की प्रसन्नता अभीष्ट है। ईश्वर को बार-बार नमस्कार किया गया है और आशीर्वाद की याचना की गई है। ईश्वर की महानता का गुणगान करते हुए नम्रता का आवा-हन किया गया है। अपनी भौतिक शक्तियों का गर्व तभी धूमिल हो

सकता है जब साधक अनन्त की शक्तियों की अनुभूति करता है। यह अनुभूति सहज में ही नहीं हो जाती। इसके लिए दीर्घकाल तक अध्ययन व साधना अपेक्षित है।

उस अनन्त का आज तक कोई पार नहीं पा सका। सृष्टि के विस्तार की कल्पना भी असम्भव है। परन्तु कुछ सापेक्षतावादी वैज्ञानिकों ने ब्रह्माण्ड को सान्त घोषित करने का दुःसाहस किया है और विश्व का व्यास १४० करोड़ प्रकाश वर्ष बताया है। इस सिद्धांत के मानने वाले वैज्ञानिकों के अनुसार प्रकाश की एक रश्मि एक जगह से चल कर ब्रह्माण्ड का चक्कर लगाती हुई अपने मूल स्थान पर वापिस आ जाती है। ब्रह्माण्ड को सान्त घोषित करने वालों को अपनी कल्पना पर पूरा विश्वास नहीं है। सापेक्षतावादी गुट के एक वैज्ञानिक एडिंगटन ने अपनी पुस्तक "एक्सपेंडिंग यूनिवर्स" में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि नक्षत्रों और नीहारिकाओं की निरन्तर प्रगति हो रही है और विश्व का पोला पेट गुब्बारे की तरह फूल कर लगातार बढ़ रहा है। उन्होंने अनुमान लगाया है कि १०० करोड़ प्रकाश वर्ष के समय में इस ब्रह्माण्ड का व्यास दुगना हो जायेगा। इसलिए उन्होंने अपने पूर्व के विश्वास का स्वयं खण्डन किया है। जेम्स जीन्स ने अनंत के रूपक को ठीक ढङ्ग से समझाया है। उन्होंने अपनी पुस्तक " इओस " जिसमें ब्रह्माण्ड विज्ञान का प्रतिपादन किया है, लिखा है कि—"जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं, वह सारे विश्व की तुलना में इतनी है जितनी कि एटलांटिक महासागर में भरे रेत के कणों में से केवल एक कण।" एक मुट्ठी में भरे रेत के कणों को गिनना भी सम्भव नहीं होता है फिर एक महासागर के कणों का गिनना सर्वथा असम्भव है। यही अनन्त है।

सृष्टि के विस्तार का जहाँ तक पता लग सका है, उस से भी इस ब्रह्म विस्तार की कल्पना नहीं की जा सकती। रात्रि में आकाश

में जो अगणित तारागणों का समूह दिखाई देता है, उनमें से एक तो चमकने वाले होते हैं और दूसरे प्रकार के चमकते भी हैं और टिमटिमाते भी हैं। चमकने वाले तो हमारी पृथ्वी के बराबर हैं और सूर्य की परिक्रमा में रत्त हैं। जो चमकते भी हैं और टिमटिमाते भी हैं, वह सभी सूर्य हैं। वह संख्या में एक अरब पचास करोड़ से भी अधिक हैं। उनसे सम्बन्धित गृह उनकी परिक्रमा कर रहे हैं। ज्योतिष शास्त्र के तत्ववेत्ताओं का विश्वास है कि द्यौलोक में ऐसे अरबों ही सूर्यों का निवास है। उनमें से प्रत्येक सूर्य का अपना सौर मण्डल है और हमारे सौरमण्डल की तरह उनसे ग्रह और उपग्रह सम्बन्धित हैं जो उनकी निश्चित परिक्रमा कर रहे हैं। इन सूर्यों से निकलने वाले प्रकाश की गति एक सैकण्ड में एक लाख ८६ हजार मील है और कई नक्षत्र इतनी दूरी पर स्थित हैं कि जब से सृष्टि की रचना हुई है, दो अरब वर्षों से अभी तक उनका प्रकाश यहाँ तक नहीं पहुँच पाया है जब कि सूर्य का प्रकाश तृथ्वी पर केवल ८ मिनट में ही आ जाता है। फिर जितने सौरमण्डल हैं, वह सब एक महा सूर्य के चारों ओर परिक्रमा कर रहे हैं।

वृहस्पति सौर-परिवार का सबसे बड़ा सदस्य है। यह हमारी पृथ्वी से १३५० गुना बड़ा है। इसका व्यास लगभग १४२ हजार कि० मी० है। इसका व्यास पृथिवी के व्यास से दस गुना अधिक है। यह ४१३२ दिनों में सूर्य की परिक्रमा पूरी करता है। इसके अपने भी उपग्रह अर्थात् चन्द्रमा हैं। यह सूर्य से ७७ करोड़ ७१ लाख कि० मी० दूर है।

बुध पृथ्वी से ७ करोड़ ७२ लाख ६४ हजार कि० मी और सूर्य से ५ करोड़ ७८ लाख कि० मी० की दूरी पर है। इसमें पहाड़ और पहाड़ियों के भी होने का अनुमान है। शुक्र ग्रह पृथ्वी से ३ करोड़ ८१ लाख ३५ हजार कि० मी० और सूर्य से दस करोड़ ७८ लाख कि०मी०

दूर है। यह सूर्य की परिक्रमा २२५ दिन में समाप्त करता है। अपने अक्ष पर यह तेईस घन्टे इक्कीस मिनट में एक परिक्रमा पूरी करता है। इस ग्रह में काफी चमक है। इस पर सघन वायुमण्डल होने का अनुमान है। इस पर जीवधारियों के होने का भी सन्देह है। मङ्गल का व्यास ६७५७ किलोमीटर है। यह पृथ्वी से ५ करोड़ ४५ लाख ७१ हजार किलो-मीटर की दूरी पर है। सूर्य से २२ करोड़ ६८ लाख किलो-मीटर दूर है। इस पर २४।। घण्टे के दिन रात रहते हैं। इसके अपने दो उपग्रह हैं। शनि पृथ्वी से बड़ा और बृहस्पति से छोटा है। इसका व्यास पृथ्वी के व्यास से साढ़े नौ गुना है। यह सूर्य से १३८ करोड़ ५३ लाख किलोमीटर की दूरी पर है। इसके चारों ओर एक कुण्डली है। इस कुण्डली और शनिग्रह की दूरी ११८७१ किलो-मीटर है। अरुण ग्रह सूर्य से ४४६ करोड़ ७ लाख किलो-मीटर दूर है। इसके अपने चार उपग्रह हैं। यम सबसे छोटा ग्रह है। इसका व्यास ५८७३ किलो-मीटर है। सूर्य से यह ५६५ करोड़ ३४ लाख किलोमीटर दूरी पर है। यह अन्य ग्रहों की अपेक्षा सब से दूर है। कल्पना कीजिये इतने बड़े ग्रहों का निर्माण क्या कोई भौतिक शक्ति कर सकती है। उत्तर नकारात्मक में ही मिलता है।

आकाश गङ्गा में लाखों करोड़ों तारागण हैं। इन तारों की अपार संख्या को गिनना असम्भव है। इनकी पृथ्वी से बहुत दूरी है। इसलिए यह पास-पास दिखाई देते हैं। इस प्रकाशित श्वेत धारा का भी बृहद् विस्तार है। इसके विस्तार की गणना ही असम्भव प्रतीत होती है। यह जानने के लिए इस आकाश गङ्गा का व्यास कितने किलोमीटर है, २८२० के आगे १६ बिन्दु लगाने पड़ेंगे।

सौर मण्डल में नौ ग्रहों और उनके २६ उपग्रहों के अतिरिक्त बहुत से लघु पिण्ड भी स्थित हैं जिन्हें ग्रहिकायें या "अवान्तर ग्रह" कहते हैं। उनका स्थान मङ्गल और बृहस्पति के बीच है और यह भी

सूर्य की परिक्रमा करती रहती हैं। आकाश में तीन करोड़ निहारिकाऐं हैं जिन्हें चमकीली गैस राशियां कहा जाता है। यह पृथ्वी से इतनी दूरी पर हैं कि इनका पृथ्वी पर प्रकाश पहुँचने में लगभग एक लाख वर्ष लग जाते हैं।

सृष्टि के विस्तार का गम्भीर अध्ययन हमें अपनी सीमित और क्षुद्र शक्तियों की याद दिलाता है। थोड़े से सामाजिक साधन जुटाकर मानव फूला नहीं समाता और गर्व से उस विश्व नियंता को भूल जाता है। अनंत का ध्यान करते हैं तो अपने अहं का विस्तार हवा में उड़ जाता है क्योंकि अपनी वास्तविकता का उचित अनुमान लग जाता है। पाश्चात्य विचारक विलियम काण्ट ने भी कुछ ऐसी ही कल्पना की है, वह अपनी एक पुस्तक के उपसंहार में लिखते हैं कि जब मैं रात्रि को तारागणों से भरे आकाश की ओर देखता हूँ तो मुझे भय लगने लगता है कि इस कल्पनातीत सृष्टि की रचना करने वाली कोई महानतम शक्ति ही हो सकती है। जब एक ओर उस महानतम शक्ति का ध्यान करता हूँ और दूसरी ओर अपने सीमित साधनों का अनुमान लगाता हूँ तो उस शक्ति में और अपने में बहुत व्यवधान पाता हूँ।

इससे स्पष्ट है कि अपना आत्म निरीक्षण करने वाला और सृष्टि की रचना की आधारभूत चैतन्य सत्ता के दर्शन करने वाला अपनी भौतिक शक्तियों पर गर्व नहीं कर सकता।

नमः सूक्त का पाठ व हवन साधना से ईश्वर की महानतम व अपनी अल्प शक्तियों की अनुभूति होकर नम्रता के भावों की मनः क्षेत्र में स्थापना होती है। अहंकार की निवृत्ति स्वयं में एक बहुत बड़ी साधना है। इस सफलता से साधक के आत्म दर्शन का मार्ग-प्रशस्त हो जाता है।

नमः सूक्त के मन्त्र इस प्रकार है :—

नमोहिरण्यबाहवे । सेनान्येदिशाञ्चपतयेनमोनमोवृक्षेभ्यो-हरिकेशेभ्यः पशूनाम्पतयेनमोनमो शष्पिञ्जरायत्विषीमतेपथीनाम्पतये नमोनमोहरिकेशायोपवीतिनेपुष्टानाम्पतये नमोनमोबभ्लुशाय ।।१।। नमोबभ्लुशाय । व्याधिने नानाम्पतयेनमोनमो भवस्यहेत्यैजगताम्पतयेनमोनमोरुद्रायात ।यिनेक्षेत्राणाम्पतयेनमोनमः सूतायाह न्त्यैवनानाम्पतयेनमोनमोरोहिताय ।।२।। नमोरोहितायस्तमपतयेवृक्षाणाम्पतयेनमोनमो भुवन्तयेवारिवस्कृतायौषधीनाम्पतयेनमोनमोमन्त्रिणेवाणिजायकक्षाणाम्पतयेनमोनमऽउच्चैर्घो षायाक्रन्दयतेपत्तीनाम्पतयेनमोनमः कृत्स्नायुतया ।।३।। नमः कृत्स्नायुतया । धावतेसत्वनाम्पतयेनमोनमः सहमानायनिव्याधिनऽआव्याधिनीनाम्पतये नमोनमोनिषङ्गिणेककुभायस्तेनानाम्पतये नमोनमोनिचेरवपरिचरायारण्यानाम्पतये नमोनमोवञ्चते ।।४।। नमोवञ्चतेपरिवञ्चतेस्ता यूनाम्पतये नमोनमोनिषङ्गिण इषुधिमतेतस्करा णाम्पतयेनमोनमः सृकायिभ्योजिघा ᳪ सद्भ्योमु ष्णताम्पतये नमोनमोसिमद्भ्योनक्तञ्चरद्भ्योविकृन्तानाम्पतयेनमः ।।५।। नमऽउष्णीषिणे । गिरिचरायकुलुञ्चानाम्पतये नमोनमऽइषुमद्भ्यो धन्वायिभ्य श्चवोनमोनमऽआतन्वानेभ्यः प्रति दधानेभ्य श्चवोनमोनमऽआयच्छद्भ्योस्यद्भ्य श्चवोनमोनमोविसृजद्भ्यः ।।६।। नमोविसृजद्भ्योविद्ध्यद्भ्यश्चवोनमोनमः स्वपद्भ्योजाग्रद्भ्यश्चवोनमोनमः शयानेभ्यऽआसीनेभ्य श्चवो नमोनमस्तिष्ठद्भ्योधावद्भ्यश्चवोनमोनमः सभाभ्यः ।।७।। नमः सभाभ्यः सभापतिभ्य श्च वोनमोनमोश्वेभ्यो श्वपतिभ्यश्चवोनमोनमऽआव्याधिनीभ्योविविद्ध्यन्तीभ्यश्चवो नमोनमऽउगणाभ्यस्तृ ᳪ हतीभ्यश्चवोनमोनमोगणेभ्यः ।।८।। नमोगणेभ्यो । गणपतिभ्यश्चवोनमो नमोव्रातेभ्यव्रातपतिभ्यश्चवोनमोनमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्चवोनमोनमो विरूपे-

भ्योविश्वरूपोभ्यश्चवो नमोनमः सेनाभ्यः ॥९॥ नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्चवोनमोनमो रथिभ्योऽअरथेभ्यश्च वोनमोनमः क्षत्तृ-भ्यः सङ्ग्रहीतृभ्यश्चवोनमोनमो महद्भ्योऽअर्भकेभ्य श्चवोनमः ॥१०॥ नमस्तक्षभ्यो । रथकारेभ्यश्चवोनमोनमः कुलालेभ्यः कर्म्मारेभ्यश्चवोनमोनमोनिषादेभ्य- पुञ्जिष्ठेभ्य श्चवोनमोनमः श्वनिभ्योमृगयुभ्यश्चवोनमोनमः श्वभ्यः ॥११॥ नमः श्वभ्यः । श्वपतिभ्यश्च वोनमोनमो भवायचरुद्रायचनमः शर्व्वायचपशु पतयेचनमोनीलग्रीवायचशितिकण्ठायचनमः कपर्द्दिने ॥१२॥ नमः कपर्द्दिने । चव्युप्तकेशा यचनमः सहस्राक्षायचशतधन्वनेच-नमोगिरिशया यचशिपिविष्टायचनमा मीढुष्टमायचेषुमतेच नमोह्रस्वाय ॥१३॥ नमोह्रस्वाय । चवामाना यचनमोबृहतेचव-र्षीयसेच नमोवृद्धायचसवृधेच नमोग्रयायचप्रथमाय चनमऽआशवे ॥१४॥ नमऽआशवे । चाजिरायचनमः शीघ्यायच शीभ्यायच नम ऽऊर्म्यायचावस्वन्यायच नमोनादे यायचद्वीप्यायच ॥१५॥ नमो-ज्येष्ठाय । च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजायचापरजायचनमो मद्धयमायचापगल्भाय चनमोजघन्यायचबध्न्या चनमः सोभ्याय ॥१६॥ नमः सोभ्याय । च प्रतिसर्य्यायचनमोयाम्यायचक्षेम्याय-चनमः श्लोक्यायचावसान्याय चनमऽउर्वर्यायचखल्यायच नमो-वन्याय ॥१७॥ नमोवन्याय । चकक्ष्यायचनमः श्रवायचप्रतिश्र-वाय च नमऽआशुषेणा यचाशुरथायचनमः शूरायचावभेदिने चनमोबिल्मिने ॥१८॥ नमोबिल्मिने । चकवचिने चनमोवर्मिणे-चवरूथिनेचनमः श्रुतायचश्रुतसेनाय चनमोदुन्दुभ्यायचाहन-न्याय चनमोधृष्णवे ॥१९॥ नमोधृष्णवे । चप्रमृशायचनमो निष-ङ्गिणेचेषुधिमते चनमस्तीक्ष्णेषवेचायुधि नेच नमः स्वायुधायच-सुधन्वनेच ॥२०॥ नमः स्रुत्याय । चपथ्यायचनमः काट्यायच-नीप्यायचनमः कूल्याय चसरस्यायचनमोनादेयायचवैशन्तायनमः

कूप्याय ।।२१।। नमः कूप्याय । चावट्ठ्याय च नमोवीद्ध्रयाय च तप्याय च नमोमेघ्ययाचव्विद्युत्याय चनमोवर्ष्याय व वर्ष्याय च-नमोवात्याय ।।२२।। नमोवात्याय चरेष्म्याय चनमोवास्त व्याय-चवास्तुपायचनमः सोमायचरुद्द्रायचनमस्ताम्रायचारुणायच-नमः शङ्गवे ।।२३।। नमः शङ्ग वे चपशुपतयेचनमऽउग्ग्रायचभी-मायचनमोग्रे वधायचदूरेवधाय च नमोहन्त्रेचहनीयसे च नमो वृक्षेभ्योहरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ।।२४।। नमः शम्भवाय चमयो-भवाय च नमः शङ्करायचमयस्कराय च नमः शिवाय च शिव-तरायच ।।२५।। नमः पार्याय चावर्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तर-णाय च नमस्तीर्त्थ्यायचकूल्याय च नमः शष्प्यायचफेन्याय च नमः सिकत्याय ।।२६।। नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः कि ꣳ शिलायचक्षयणाय च नमः कपर्द्दिनेचपुलस्तये च नमऽइरिण्या-यचप्रपत्थ्याय च नमोव्व्रज्याय ।।२७।। नमोव्व्रज्याय चगोष्ठ्याय च नस्मत ल्प्यायच गह्यायचनमोहृदयायचनिवेष्यायचनमः काठ्ठ्या-यचगह्वरेष्ठ्ठाय च नमः शुष्क्याय ।।२८।। नमः शुष्क्याय चह-रित्याय नमः पा ꣳ सव्यायचरजस्यायचनमो लोप्यायचोलप्याय-चनमऽ उर्व्यायचसूर्व्यायचनमः पर्ण्णाय ।।२९।। नमः पर्ण्णाय चपर्ण्णशदाय च नमऽउदगुरमाणा यचाभिघ्नते च नमऽआखिदते-च प्रखिदते च नमऽइषुकृद्भ्योधनुष्कृद्भ्यश्चवोनमनमोवः कि रिकेभ्योदेवाना ꣳ हृदयेभ्योनमोव्विचिन्वत्केभ्यो नमोव्विक्षिण-त्केभ्योनमऽआनिर्हतेभ्यः ।।३०।।

भू सूक्त

भारतीय धर्म शास्त्रकारों का आदेश है कि प्रातःकाल उठते ही पृथ्वी माता को प्रणाम करना चाहिए ।

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तन मण्डले ।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्श क्षमस्वमे ।।

यजुर्वेद के एक मन्त्र में आया है:—नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्यै (९ । २२) अर्थात् पृथ्वी माता को बार-बार प्रणाम है। अथर्ववेद के द्वादश काण्ड के प्रथम सूक्त के ६३ मन्त्रों में मातृ-भूमि के प्रति इतनी उत्कट श्रद्धा का प्रकाशन विश्व साहित्य में कहीं नहीं हुआ है।

भारतीय साहित्य में जननी और जन्मभूमि को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ बताया गया है—"जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।" इसीलिए सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में मातृ–भूमि का यशोगान अङ्कित है।

बात यह है कि हम भारतीय पृथ्वी को निर्जीव मूर्तिपिण्ड नहीं मानते। हम उसे चैतन्यमयी स्वीकार करते हैं। जिस प्रकार से हमारे शरीर में प्राणों की गति है, उसी प्रकार मातृ भूमि के कण कण में प्राण संचरित होते हैं। वह जड़ नहीं, परमचेतना सम्पन्न महादेवी है। वह हम सब का भरण-पोषण करती है, उसके ऊपर खेलते-खेलते हम बड़े होते हैं, उसकी सरिताएं हमें मीठा और निर्मल जल प्रदान करती हैं, उसके वन-उपवन वृष्टि में सहायक बनते हैं और मानव-जीवन को नाना प्रकार से सुख-सुविधाएं प्रदान करते हैं, उसकी फसलें हमारी भूख मिटाती हैं और उसकी गोद में ही हम अन्तकाल में विश्राम करते हैं। वह वात्सल्यमयी जननी है। माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या (१२।१।१२) हम पृथ्वी—पुत्र है।

मातृ भूमि के अणु-अणु में प्यार का सागर तरङ्गित होता है। मातृ भूमि प्रभु की साकार प्रतिमा है। नित्य-निरन्तर सबका सम्वर्धन करना और मुक्तहस्त से अपनी वैभूतियाँ बिना भेद-भाव के सबको लुटाना उसका स्वभाव है। वह करुणा और वात्सल्य की प्रति-मूर्ति है। उसके अङ्ग-अङ्ग से ममता टपकती है। पुत्रों को सुखी बनाने

की कामना से वह फल-फूल आदि उत्पन्न करती है। उतका हृदय बहुत उदार है। जब उसके ऊपर कष्ट आता है तो जगत्पति को अवतार लेना पड़ता है।

मातृ भूमि का कण-कण दैवी सन्देशों से परिपूर्ण है। उसके पर्वत मनुष्य मात्र को पर्वत जैसी दृढ़ सङ्कल्प शक्ति और अचलता सिखाते हैं। उसकी नदियाँ निरन्तर कर्मनिष्ठ रहने का सन्देश देती हैं। उसके सागर मर्यादा में रहना सिखाते हैं। उसकी वायु दूसरों के कष्ट हरने की शिक्षा देती है। उसकी गोदी में खिले फुल यह संदेश देते हैं कि भयकर विपत्तियों में भी मनुष्य को मुस्कराते रहना चाहिये। और काँटों से घिरे रह कर भी सुगन्धि फैलानी चाहिए और ध्येय देवता के चरणों में स्वयं को समर्पित कर देना चाहिये। उसके वृक्ष परोपकार के लिये आत्मबलिदान करने की सुनहरी सीख देते हैं, हमें विनम्रता और निरभिमानता सिखाते हैं।

अविराम कर्म करने का सन्देश देने के कारण हम नदियों को देवी मानकर पूजते हैं और उनमें स्नान कर शारीरिक आरोग्य के साथ आध्यात्मिक विकास भी करते हैं। निरन्तर प्रगति पथ पर बढ़ने का सन्देश प्रदान करने के कारण हम वृक्षों की पूजा करते हैं, उनकी निरभिमानता हमें उनके चरणों में झुका देती है। वायु सबको प्राण देने के कारण हमारा देवता है। माँ का प्रत्येक कण जीव-मात्र के लिए नव-जीवन का सन्देश देने के लिए तत्पर है।

भू-सूक्त हमारा राष्ट्रीय गीत है। इससे राष्ट्रीय भावनायें उद्दीप्त व तरङ्गित होती हैं। यह मातृभूमि को उत्तम श्रद्धाञ्जलि है। हर भारतीय को इसका नित्य पाठ करना चाहिये ताकि राष्ट्र के उत्थान में हम निरन्तर सकलपरत रहें। भू-सूक्त का पाठ इस प्रकार है:—

भूमि भूं म्ना द्यौवरिणान्तरिक्षं महित्वा ।
उपस्थे ते देव्यदितेऽग्निमन्नादमन्नाद्याया दधे ।।१
आयंगौः पृश्निरक्रमी दसनन्मातरं पुनः ।
पितरञ्च प्रियन्त्सुवः ।।२
त्रिंशद्धामविराजति वाक्पतङ्गाय शिश्रये ।
प्रत्यस्य वहद्युभिः ।।३
अस्य प्राणादपानन्त्यन्तश्चरति रोचना ।
व्यख्यन्महिषः सुवः ।।४
तत्त्वाक्रुद्ध परोवप मन्युना यदवत्या ।
सुकल्पमग्नेतत्तव पुनस्त्वो द्दीपयामसि ।।५
यत्ते मन्युपशेरप्तस्य पृथिवी मनुदध्वसे ।
आदित्या विश्वे तद्देवा वसवञ्वसमाभरन् ।।६
मेदिनी देवी वसुन्धरा स्याद्वसुधा देवी वासवी ।
ब्रह्मवर्चसः पितृणां श्रोत्रं चक्षुर्मनः ।।७
देवीहिरण्यगर्भिणी, देवी प्रसूवरी, रसनेसत्याद्येनसीद ।।८
समुद्रवती सावित्रीहनो देवी मत्द्यवी महो ।
धरणिमहोव्याधिष्ठाश्शृङ्गेयेज्ञेविभीषिणी ।।९
इन्द्र पत्नी व्यापिनी सुरसरीरिह वायुमती जलशयनी ।
श्रियंधाराजासत्यन्धोपरिमेदिनीश्वोपरिधत्तगायत्री ।।१०
विष्णु पत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम् ।
लक्ष्मीप्रियसखीं देवीं नमाम्यच्युतवल्लभाम् ।।११
ॐ धनुधरायै विद्महे सर्वसिद्धयै च धीमहि ।
तन्नोधरा प्रचोदयात् ।।१२

गौ सूक्त

गौ को भारत की आत्मा स्वीकार किया गया है । भारत के जीवन में गौ का उतना ही महत्व है जितना शरीर में आत्मा का है ।

शरीर से आत्मा के अलग हो जाने पर शरीर व्यर्थ हो जाता है। गान्धी के अनुसार "भारतीय संस्कृति में से गौ को निकाल देने से उसका अस्तित्व भी नहीं रह सकता क्योंकि यह संस्कृति का मेरुदण्ड है।" महामना पं० मदन मोहन मालवीय तो गाय को अपना सर्वस्व ही समझते थे। वे कहते थे "मुझे ले लो। मेरे प्राण ले लो परन्तु गाय को छोड़ दो। गाय जैसा पवित्र पशु दूसरा नहीं है।" ला० लाजपत राय ने एक बार कहा था "दूध, घी पर ही भारत का जीवन निर्भर करता है। गाय न होंगी तो हमारे बच्चे कैसे जीवित रहेंगे।" गाय हमारे शरीर का पालन पोषण करती है। इस लिए उसे माता के पवित्र और उच्च पद से विभूषित किया गया है। धार्मिक दृष्टि से गाय को इतना अधिक सात्विकता प्रदान करने वाला माना गया है कि उसके शरीर में ३३ करोड़ देवताओं का निवास स्वीकार किया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि एक गौ के पूजन से ३३ करोड़ देवताओं के पूजन का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है। इतना उच्च सम्मान शायद ही किसी पशु को कभी दिया गया हो।

गाय का दूध, दही, मक्खन, घी आदि परम सात्विक, हल्के, पौष्टिक व सुपाच्य होते हैं। गुणों की दृष्टि से अन्य सभी पशुओं से अधिक महत्व दिया जाता है क्योंकि उपयोगिता की दृष्टि से यही सब से अधिक लाभदायक है। अतः इसका पालन, पोषण, सरक्षण व सम्बर्धन हर भारतीय का प्रथम कर्तव्य है। प्राचीन काल में इसका कितना मूल्यांकन किया जाता था, यह इसी तथ्य से ही स्पष्ट है कि दो चार-दस बीस ही नहीं, चालीस, साठ और अस्सी हजार गायों के गोकुल होते थे। तभी दिलीप जैसे चक्रवर्ती सम्राट गाय की रक्षा के लिये अपना जीवन तक समर्पित करने के लिये तैयार हो जाते थे।

गाय के गुण तो आज भी वैसे ही हैं। अतः उपयोगिता की दृष्टि से गो वंश का संरक्षण व सम्बर्धन आवश्यक है। इसके लिये

सङ्गठित रूप से प्रयत्न होने चाहिए। गौओं को निरोग व हृष्ट पुष्ट रखने के लिये, उनके दूध को बढ़ाने, अधिक सात्विक व पौष्टिक बनाने के लिये मन्त्र विद्या का सहयोग लिया जा सकता है। गौशालाओं व गो-गोष्ठों में गौ-सूक्त के पाठ व हवन सामूहिक रूप से होने चाहिए। कर्ण प्रिय ध्वनि से पशुओं में प्रसन्नता की लहरें उत्पन्न होती हैं, यह लहरें उनकी मानसिक ग्रन्थियों को गुदगुदाती हैं। परिणाम स्वरूप वे दूध अधिक देती हैं। साधारण शब्दों से वेद गान तो हजारों गुणा अधिक उपयोगी व शक्तिशाली सिद्ध होता है।

मन्त्र इस प्रकार हैं :—

ॐ गोमद्रूषुणा सत्याश्वावद्यात मश्विना। वर्त्तो रूद्रा नृपायम् ।।१

गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिस्रुता। कीलालमश्विभ्यां मधु दुहे धेनुः सरस्वती ।।२

गावो भगो गाव इन्द्रोम इच्छाद् गावः सोमस्य प्रथमस्य-भक्षः। इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामि हृदा मनसा चिदिन्द्रम् ।।३

गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनूवलम्। तत् सर्व मनु मन्यन्तां देवा ऋषभ दायिने ।।४

गोभिष्ट रेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधपुरुहूत विश्वो। वयं राजसु प्रथमाधनान्य रिष्टासो वृजनाभि जयेम ।।५

गोभिष्ट रेमामतिं दुरेवांयवेन क्षुधपुरुहूव विश्वाम्। वयं राजभिः प्रथमाधनान्यस्माकेन वजनेना जयेम ।।६

गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः। वायुष्ट्वा ब्रह्मणा पात्विन्द्रस्त्वापात्विन्द्रियैः ।।७

गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते। विजावति विते पाशांश्चृतामसि ।।८

गोसनिं वाचमुदेयं वर्चसा माभ्युदहि । आरुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातुमे ।।६

गोषु प्रशस्ति वनेषु धिषे भरन्त विश्वे वलिं स्वर्णः । व्रित्वा नरः पुरूत्रासपर्यन्पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त ।।१०

गो मातरो यच्छुभयन्ते अंजिभिस्तनूषु शुभ्रादधिरे विरूक्मतः । बाधन्ते विश्वमभिमाति नमप वर्त्मान्येषामनु रीयते धृतम् ।।११

गोमन्नः सोम वीरवदश्वावद्वाजवत्सुतः । पवस्वबृहतीरिषः ।।१२

गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्य विद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः । त्वं सुवीरो असि सोम विश्व वित्त त्वा विप्रा उप गिरेम आसते ।।१३

गावोयवं प्रयुता अर्यो अक्षन्ता अपश्यं सहगोपाश्चरन्तीः । हवा इदर्यो अभितः समायन्कियदासु स्वपतिश्छन्दयाते ।।१४

गोभिर्मिमिक्षं दधिरे सुपारमिन्द्र ज्यैष्ठचाय धाय से गृणानाः मन्दानः सोमं पपिवाँ ऋजीषिन्त्समस्मभ्यं पुरूधागा इषण्य ।।१५

वायु सूक्त

पृथ्वी पर निवास करने वाले जीवधारियों के अस्तित्व के लिये बायु आवश्यक है । यदि पृथ्वी के चारों ओर वायु न होती तो उस पर जीवधारियों और वनस्पतियों के जीवित रहने की सम्भावना नहीं थी, मनुष्य आदि सभी का जीवन खतरे में पड़ जाता । मानव जीवन की स्थिरता के लिये खाद्य अन्नों की अपेक्षा भी वायु का अधिक महत्व है । यह इस वैज्ञानिक अनुमान से प्रमाणित होता है कि सामान्य व्यक्ति को अनुमानतः ३५ पौण्ड वायु की आवश्यकता रहती है जो अन्न और जल की आवश्यकता से ६ गुना अधिक है ।

गन्दे, सड़े भोजन से शरीर में अनेकों प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। कभी २ मृत्यु भी हो जाती है। वायु प्रदूषण से कितनी हानि होती होगी, इसको कल्पना भी नहीं की जा सकती। मिलों व अन्य विषाक्त साधनों से होने वाली हानि से सभी बड़े-बड़े देश चिंतित हैं क्योंकि इन विषैले तत्वों से वायु इतनी विषाक्त होती जा रही है कि पृथ्वी के गर्म होकर जल जाने और धुयें से घुटकर नष्ट हो जाने का भय उत्पन्न होगया है।

वायु को विषैला करने वाली प्रथम गैस है--कार्बन मोनो आक्साइड। यह रक्त में मिल जाती है और सरदर्द व थकावट उत्पन्न करती है। यह अनीमिया, दमा व हृदय रोगियों को प्रभावित करके रोगों को बढ़ाती है। दूसरी गैस है—सल्फर आक्साइड जो फेफड़ों, गले, नाक व नेत्रों को प्रभावित करती है और वनस्पतियों व पेड़ों को भी नष्ट करती है। कल कारखानों से निकलने वाली फ्लुओराइड का विषैला प्रभाव वृक्षों को नष्ट कर देता है। नाइट्रोजन आक्साइड अत्यत घातक गैस है जिससे नेत्र रोग उत्पन्न होते हैं। उससे तत्काल मृत्यु तक भी हो सकती है। मोटरों, कारखानों और विभिन्न प्रकार के कूड़ों से उत्पन्न होने वाली हाइड्रो-कार्बन मनुष्य और पशु दोनों में कैंसर रोग का कारण बनती है।

वैज्ञानिक रूप से विकसित देशों को वायु में विषैले तत्वों की पूरी जानकारी है और सम्भव प्रयत्न कर भी रहे हैं परन्तु उनको पूर्ण सफलता नहीं मिल पा रही है। अकेला अमेरिका ही वायु शुद्धि के लिये आठ अरब चालीस करोड़ से अधिक रुपये खर्च करता है। इससे अनुमान लगाना सहज है कि वायु प्रदूषण किस सीमा तक पहुँच चुका है।

भारतीय ऋषियों ने इसकी सुव्यवस्था पहले से ही कर रखी है। वायु शुद्धि के लिये उन्होंने यज्ञ का आविष्कार किया था और इसे